रसेन्द्र पुराण – Pt. I – with the commentary in Hindi by वैद्यरत्न पं. रामप्रसाद (the rest part never published). वेंकटेश्वर प्रेस, मुम्बई, 1983 विक्रम era.

1437

60

Bill No. 3/07-08

169.

2008-0335

Gandhi National ... for the Arts

. 3,22,272.00.
. 8,057.00.
.08.2002.
atisfy the following pre-qualification condition.
ave satisfactorily completed at least two works
ork of the value of not less than Rs. 2.40 Lakhs
upto 31.03.2002 in the Central/State Govern-
Bodies and they should have valid ITCC and
ng with attested copies of documentary proof
completed two works and valid ITCC and STCC
in the Office of E.E.(E), ED-XV, CPWD, I.P.
davp 3480(947)2002

The tender documents can be obta...
all certificates and copy of registratio...
as per special conditions on any wor...
20.8.02 Tender will be opened on 2...

Sl. No.	Name of work.	P.A.C.	Earne... mone...
1)	Construction of road in/c medium bridges and culverts on Kopra to Gamhari road.	29612700	2221...

...CATION OF CONTRACTORS FOR PUMPING STATION FOR SEWAGE ...LANT IN SECTOR ...

...r prequalification are... HUDA Division No. I... ...elopment Authority fro... in construction of... other related and spec... ...stered with MES/CPV... ...s et. having adequat... ...ith proven track reco... ...have experienced an... ...ted and commissioned... ...d 1 No. MPS of 10 M... ...ily need apply. The ca... MGD located at sec... ...on shall be 12 month... all the following fu... ..., commissioning etc. c... ... Screening Chambe... ...e gallary. ... pannel room operatio... ...mission room.

...ORATE GEN... SHI... TENDE...

...ders are invited for ... ...nufacturers/ their authorised distributors in two bid ... the period from 01 Sept. 2002 to 31 March 2003. Rates ...uld be FOR No. 1 Maintenance Group, Assam Rifles, ...agaland) - 1 MT, No. 2 Maintenance Group, Assam Rifles, ...sam) - 0.3 MT and No. 3 Maintenance Group, Assam ...t (Assam) - 0.7 MT and should be inclusive of all taxes. ...item shall conform to ISI/APO and FPO Specification. ...ould furnish earnest money of Rs. 8,000/- (Rupees Eight ...only pledged in favour of Director General, Assam Rifles ...ationalised/ Scheduled Bank in form of Deposit at Call ...ed Deposit Receipt with his tender.
... be received up to 1200 hours on 07 Aug. 2002 at ...neral Assam Rifles, Shillong - 793 011 and the technical ...pened on the same day i.e. 07 Aug. 02 at 1400 hours. ...les of the each item duly packed shall be provided with ...ler form may be obtained from DGAR on production of ... depositing Rs. 100/- (Rupees One Hundred) only at ...of India under Head "00500800" Police (Central) Assam ...r Fee - Misc. The cost of bid of the successful bidders ...ed on 22 Aug., 2002.
... The detailed information is given in the tender notice which can be

...10 MT Fruit... original manufacturers/ their authorised distribu... system for the period from 01 Sept. 2002 to 31 M... quoted should be FOR No. 1 Maintenance Grou... Dimapur (Nagaland) - 5 MT, No. 2 Maintenance Gro... Silchar (Assam) - 1.6 MT and No. 3 Maintenanc... Rifles, Jorhat (Assam) - 3.4 MT and should be incl... The tinned item shall conform to ISI/APO and FI... Tenderer should furnish earnest money of Rs. ... Thirty Thousand) only pledged in favour of Direct... Rifles from any Nationalised/ Scheduled Bank in ... Call Receipt/ Fixed Deposit Receipt with his tend...

		No. 1 MGAR	No. 2 MGA...
(a)	Mango tinned	1.5 MT	0.5 MT
(b)	Pineaple tinned	1.5 MT	0.5 MT
(c)	Guava tinned	1 MT	0.3 MT
(d)	Cocktail tinned	1 MT	0.3 MT
	Total	5 MT	1.6 MT

2. Tenders will be received up to 1200 hours o... Director General Assam Rifles, Shillong - 793 01... bid will be opened on the same day i.e. 07 Aug...

श्रीधन्वन्तरये नमः।

DATA ENTERED

पटियालाराज्यान्तर्गत-टकसालनिवासी पटि-
यालाके राज्यवैद्य वैद्यरत्न पं. रामप्रसाद
वैद्योपाध्याय प्रणीत-

रसेन्द्रपुराण।

भाषाटीकासहित।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

इसको

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदासने
अपने " लक्ष्मीवेङ्कटेश्वर " छापेखानेमें
छापकर प्रसिद्ध किया।

संवत् १९८३, शके १८४८.

1437

कल्याण-मुंबई.

सब हक्क यन्त्रालयाधिकारीने स्वाधीन रक्खा है.

DATA ENTERED
Date 24/06/08

615.536
RAM

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

KALANIDHI
Rare Book Collection
IGNCA
ACC No.: R-335
Date: 25.3.08

SANS
615.536
RAM

भूमिका।

यह रसेन्द्रपुराण तीन भागोंमें सम्पूर्ण होगा जिसका यह प्रथम भाग छपकर तैयार है यद्यपि रसग्रथोंकी भाषा बनानेमें भाव स्पष्ट करनेमें प्रायः यथेष्ट प्रयत्न कियाजाता है तथापि यह विद्या प्रायः गुरुद्वारा सीखनेसेही ठीक आसकती है। इसप्रथम भागमें रस उपरस धातु उपधातुओंका शोधन मारण तथा यंत्रादिविधान और पारदके विशेष संस्कार उचित रूपसे लिखे गये हैं। दूसरे भागमें रसोंके ज्वरादि रोगोंपर क्रमानुसार सिद्ध योग लिखे गये हैं जो प्रतिरोगपर क्रमानुसार प्रयोग करनेसे शीघ्र फलप्रद होंगे। यह भागभी शीघ्रही तैयार होकर छपनेवाला है।

विनीत-

रामप्रसाद.

Indira Gandhi National Centre for the Arts



॥ श्री ॥

रसेंद्रपुराण-विषयानुक्रमणिका ।

चतुर्थ अध्याय.

त्रयोदश अध्यायः ।

चतुर्दश अध्याय ।

षड्विंश अध्याय ।

सप्तविंश अध्याय ।

अष्टाविंश अध्याय ।

ऊनत्रिंश अध्याय ।

इति अनुक्रमणिका समाप्ता।

॥ श्रीधन्वन्तरये नमः ॥

श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः ।

पं० रामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीत-

रसेन्द्रपुराणम् ।

भाषाटीकासहितम् ।

नमस्तस्मै महेशाय कृपया यस्य लेखनी ।
अज्ञस्य हस्तमागत्य विद्वद्भिरपि पूज्यते ॥ १ ॥
प्रसादाद्यस्य देवस्य आयुर्वेदमहोदधौ ।
प्रवृत्तिर्मम वैचित्र्यान्नमस्तस्मै पिनाकिने ॥ २ ॥
नमः शिवाय साम्बाय सगणाय ससूनवे ।
भस्मोद्धूलितदेहाय सर्वशक्तिमयाय च ॥ ३ ॥

जिसकी कृपासे मूर्खके भी हाथमें आई हुई लेखनी विद्वानोंके पूजने योग्य बनजाती है उस जगदीश्वर महादेवको प्रणाम करता हूं। जिस पिनाकधारी, सर्व शक्तिमान् भस्मसे धूसर हुई देहवाले देवताकी कृपासे आयुर्वेद रूपी महासागरमें मेरी विचित्रतासे प्रवृत्ति है। उस देवता श्रीगणेशजी और पार्वतीजी तथा नन्दी वीरभद्रादि गणोंसे शोभायमान महादेवको प्रणाम है ॥ १-३ ॥

वैद्यो रामप्रसादोऽहं ध्यात्वा चित्ते महेश्वरम् ।
निबध्नामि रसेन्द्रादिपुराणं रससम्मितम् ॥ ४ ॥

श्रीमहेश्वर महादेवका अन्तःकरणसे ध्यान करके रामप्रसाद नामक वैद्य मैं रसयुक्त रसेंद्रपुराण नामके ग्रंथको निबन्धन करता हूँ। अर्थात्-ग्रन्थ रूपसे लिखता हूँ ॥ ४ ॥

एकदा पर्वते जातः संवादो गुरुशिष्ययोः ।
नानावृक्षसमाकीर्णे शोभिते वनदारुभिः ॥ ५ ॥
पद्मकाष्ठादि संयुक्ते वनपुष्पैरलंकृते ।
लताप्रतानैर्गुल्मैश्च नानौषधिसमन्विते ॥ ६ ॥

यस्मिन्कन्दादयः सर्वे सुलभा हि भिषग्वरैः ।
मण्डूकपर्णीमुत्पाट्य कन्दादीनौषधीस्तथा ॥ ७ ॥
छायायां समुपाविष्टं समीपे निर्झरस्य वै ।
गुरुं विनीतभावेन भक्तियुक्तेन चेतसा ॥ ८ ॥
प्रणम्य चोपसंविश्य भूमौ संस्थाप्य चौषधीः ।
पृष्टवान् रसधातूनां क्रियां शीघ्रफलप्रदाम् ॥ ९ ॥

एक समय पहाडके ऊपर रसक्रिया और धातुक्रियाके सम्बन्धमें गुरु शिष्योंका जो संवाद हुआ वह इस रसेन्द्रपुराणमें लिखते हैं । जिस पर्वतपर यह प्रश्नोत्तर हुए वह अनेक प्रकारके सुन्दर वृक्ष और वनस्पतियोंसे शोभायमान था । पद्म, काष्ठ, वनपुष्प आदिसे अलंकृत था । तथा अनेक लता, प्रतान औषधियें, सब प्रकारके कन्द आदि वनौषधियें इस स्थानमें वैद्योंके लिये सुलभ थीं । इस मनोहर स्थानमें एक सुयोग्य शिष्य ब्राह्मी और अनेक कन्दादि लेकर जलके झरनेके किनारे छायामें सुखपूर्वक बैठे हुए गुरुके पास पहुंच भक्तियुक्त चित्तसे प्रणाम कर और औषधियोंको पृथिवी पर स्थापन कर विनीत भावसे बैठ गया । फिर हाथ जोडकर शीघ्र फलके देनेवाली रस धातुक्रियाके सम्बन्धमें इस प्रकार पूछने लगा ॥ ५-९ ॥

शिष्य उवाच ।

भगवन् रसधात्वादिसाधकस्य मया श्रुतम् ।
सिद्धिः संजायते शीघ्रं न तथा वनदारुभिः ॥ १० ॥
चरके सुश्रुते नैव न वै वाग्भट्टनिर्मिते ।
हारीतसंहितायां न क्वचिद्दृष्टा रसक्रिया ॥ ११ ॥
केन कस्मै प्रदिष्टेऽयं केन वै निर्मिता पुरा ।
तदहं श्रोतुमिच्छामि हृद्या वै रसवैद्यके ॥ १२ ॥

हे भगवन् ! रस और धातु आदि सिद्ध करके चिकित्सा करनेवाले वैद्योंकी जिस प्रकार शीघ्र सिद्धि होती है उस प्रकार काष्ठादि वनौषधियोंसे शीघ्र सिद्धि प्राप्त नहीं होती । इसलिये रसवैद्योंको शीघ्र यश प्राप्त होता है ऐसा सुना है । परन्तु यह रसक्रिया न तो चरकमें ही देखी है और न सुश्रुत और वाग्भट्टमें

इसका वर्णन है एवं हारीत संहितामें भी नहीं है। यह रसक्रिया किसने किसके प्रति उपदेश की है और किसने निर्माण की है यह सुननेकी मेरी बडी इच्छा है। अतः कृपाकर वह रसक्रिया आज इस रस वैद्यकमें वर्णन कीजिये ॥ १०-१२ ॥

एवं शिष्यमुखाच्छ्रुत्वा प्रश्नं वै रससंयुतम् ।
उवाच कृपया तत्र रसग्रन्थविचक्षणः ॥ १३ ॥
ब्रह्मणा हि यथा प्रोक्तं आयुर्वेदं प्रजापतिः ।
जग्राह निखिलेनादावश्विनौ तु पुनस्ततः ॥ १४ ॥

इस प्रकार शिष्यके मुखसे रससम्बन्धि प्रश्न सुनकर रसके ग्रन्थोंको जाननेमें सुयोग्य गुरु इस प्रकार कृपापूर्वक कहने लगे कि जिस प्रकार ब्रह्माने आदि कालमें आयुर्वेदको कथन किया वह सम्पूर्ण सांगोपांग दक्षप्रजापतिने ग्रहण किया, फिर प्रजापतिसे अश्विनीकुमारने सांगोपांग ग्रहण किया ॥ १३ ॥१४ ॥

देवासुररणे देवा दैत्यैर्ये सक्षताः कृताः ।
अक्षतास्ते कृताः सद्यो ह्यश्विभ्यामद्भुतं महत् ॥ १५ ॥
वज्रिणोऽभूद्भुजस्तम्भः स चाश्विभ्यां चिकित्सितः ।
सोमान्निपतितश्चन्द्रस्ताभ्यामेव सुखीकृतः ॥ १६ ॥
भार्गवश्च्यवनः कामी वृद्धः सन्विकृतिं गतः ।
वीर्यवर्णस्वरोपेतः कृतोऽश्विभ्यां पुनर्युवा ॥ १७ ॥
एतैश्चान्यैश्च बहुभिः कर्मभिर्भिषजां वरौ ।
बभूवतुर्भृशं पूज्याविन्द्रादीनां दिवौकसाम् ॥ १८ ॥
दृष्ट्वा नासत्ययोर्लोके प्रतिष्ठां महतीं तदा ।
हरस्याज्ञां समागृह्य वीरभद्रो मुदान्वितः ॥ १९ ॥
प्रययाचे च ब्रह्माणमायुर्वेदस्य पारगम् ॥
अध्यापयायुर्वेदं मां यशस्यं रोगनाशकम् ॥ २० ॥
तमुवाच ततो ब्रह्मा वीरभद्रं गणोत्तमम् ॥

न योग्योऽस्ति भवान्वीर चंचलत्वाद्धि साधने ॥ २१ ॥
सत्त्वप्रधानैः साध्योऽयमथ दत्तंप्रजापतिम् ॥ २२ ॥

एक समय देवासुर संग्राममें जिन जिन देवताओंको दैत्योंने घायल कर दिया उन सबको अश्विनीकुमारने आरोग्य और व्रणरहित कर दिया । वह इनका विचित्र चमत्कार देख सबको बडा आश्चर्य हुआ । इसी प्रकार इन्द्रकी स्तम्भित भुजाओंको इन्होंने चिकित्सा कर आरोग्य किया । तथा अमृतसे रहित हुए और राजयक्ष्मासे पीडित दुःखित चन्द्रमाको आरोग्य कर दिया । ऐसे ही भृगुवंशोत्पन्न कामकी इच्छावाले महावृद्ध च्यवनऋषिको जिसके बुढापेके कारण सब अंग गलित हो चुके थे अश्विनीकुमारने इस वृद्धको बल, वीर्य, वर्ण और स्वरयुक्त कर फिर युवा बनादिया ॥ ऐसे ऐसे अनेक कर्मोंके प्रभावसे यह वैद्योंमें इन्द्रादिक देवताओंके निरन्तर पूज्य हुए और इनका यश त्रिलोकीमें फैल गया । इस प्रकार सब संसारमें इनकी अधिक प्रशंसा और प्रतिष्ठा देख वीरभद्रकोभी आयुर्वेद जाननेकी उत्कट इच्छा प्रकट हुई । फिर महादेवजीकी आज्ञा लेकर प्रसन्न होता हुआ वीरभद्र आयुर्वेदके पारदर्शी ब्रह्माजीके पास पहुंचा और विनयपूर्वक प्रार्थना करने लगा कि हे ब्रह्मन् ! यशदायक और रोगोंको नष्ट करनेवाले आयुर्वेदका मुझे भी अध्ययन कराइये । यह सुनकर ब्रह्माजीने कहा हे वीर ! तुम आयुर्वेद अध्ययन करनेके योग्य नहीं हो तुममें अधिक चंचलता है इस लिये तुम आयुर्वेदका साधन नहीं कर सकोगे । आयुर्वेद तो सत्त्वप्रधान दयालु पुरुषोंके लिये है और दूसरी बात यह है कि मैं आयुर्वेद दक्षप्रजापतिको दे चुका हूं इस लिये तुमको नहीं पढा सकता ॥ १९–२२ ॥

विधिप्रोक्तं वचः श्रुत्वा स्वापमानं च चिंतयन् ।
संभग्नाशो निरुत्साहः क्रुद्धः प्रस्फुरिताधरः ॥ २३ ॥
दुरात्मन् यत्कृतं चाद्य ह्यपमानो ममेदृशः ।
गृहाण तत्फलं ब्रह्मन्नित्युक्त्वा बलसन्निभः ॥ २४ ॥
छेदयामास शूलेन चतुराननमस्तकम् ।
दक्षस्यापि सभां प्राप्य कृतवाञ्छेदनादिकम् ॥ २५ ॥
एवं कृत्वा गतो वीरो ह्यपमानप्रतिक्रियाम् ।
अश्विभ्यां तत्र चागत्य विधातुर्मस्तकादयः ॥ २६ ॥

कृताः शालाक्यशल्यादिक्रियाभिः पूर्ववत्कृशम् ।
तच्छ्रुत्वा वीरभद्रोऽसौ लज्जितः शिवसन्निधौ ॥ २७ ॥
आगत्य निजवृत्तांतं सर्वं तत्र न्यवेदयत् ।
भस्मीभूतो भविष्यामि कृत्वा काष्ठमयीं चिताम् ॥ २८ ॥
कृपया ब्रूहि वो नाथ रोगानीकहरीं क्रियाम् ।
सर्वं श्रुत्वा ततो देवो भूतनाथो महेश्वरः ॥ २९ ॥
शीघ्रफलप्रदां श्रेष्ठां रसधातुमयीं क्रियाम् ।
वीरभद्राय शिष्याय क्रमशः पर्यपाठयत् ॥ ३० ॥

ऐसे ब्रह्माके वाक्यको सुनकर अपने अपमानकी चिन्ता करता हुआ वीरभद्र क्रोधसे भर गया उत्साह और आशा जाती रही होठ मारे क्रोधके फरकने लगे फिर बोला हे दुरात्मन् ! हे ब्रह्मन् ! जैसा तैंने आज इस प्रकार मेरा अपमान किया है उसके फलको ग्रहण कर यह कहकर अग्निके समान संतप्त वीरभद्र (भैरवने) त्रिशूलसे ब्रह्माका मस्तक काट डाला दक्षकी सभामें जाकर भी बहुतसा छिन्न भिन्न किया इस प्रकार अपने अपमानकी प्रतिक्रिया करके वीरभद्र चल पडे इतनेमें अश्विनीकुमारोंने शल्य शालाक्यक्रियासे ब्रह्माका मस्तक जोडदिया दक्षकी सभामें जा चिकित्सा कर सब पूर्ववत् आरोग्य कर दिये इस खबरको वीरभद्र सुनकर बडा लज्जित हुआ और शिवजीके पास जा सब वृत्तान्त सुनाकर कहने लगा कि हे नाथ ! अब मैं लकडियोंको इकट्ठा करके चिता बनाकर जलजाऊंगा नहीं तो सब रोगोंके समूहको शीघ्र नष्ट करनेवाली क्रियाका कथन करो। भूतनाथ महादेवने इस संपूर्ण वृत्तान्तको सुनकर कृपा करके वीरभद्ररूपी शिष्यके पास रस और धातुओंका (विधिपूर्वक) कथन किया ॥ २३–३० ॥

भूतानुकंपः प्रवणो महेशः कैलासवासी जगदादिनाथः ।
स्ववीर्ययुक्तागदयोगरत्नैः कीर्णानि तंत्राणि बहूनि चक्रे ॥ ३१ ॥

संपूर्ण प्राणियोंपर कृपाकी इच्छावाले कैलासवासी जगत्के आदिदेव महादेवने रससंबधी अनेक अगद और रसके योगोंसे अनेक ग्रंथ रोगोंको नष्ट करनेके लिये बनाये (अर्थात् वीरभद्रके पास कथन किये) ॥ ३१ ॥

रसविद्या पराविद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा ।
भुक्तिमुक्तिकरी यस्मात्तस्माज्ज्ञेया गुणान्वितैः ॥ ३२ ॥

रसविद्या सब विद्याओंमें परम श्रेष्ठ है और परम दुर्लभ है संसारके सब सुखोंको और मोक्षके देनेवाली है इसलिये सर्वगुणसंपन्न विद्वानोंको अवश्य सीखनी चाहिये ॥ ३२ ॥

प्रशंसां रसविद्यायाः श्रुत्वा गुरुमुखात्ततः ॥ ३३ ॥
उवाच ब्रूहि मे पुण्यं रसस्याद्भुतकर्मणः ।
उत्पत्तिं संस्कृतिं चैव क्रमेण भिषजां वर ॥ ३४ ॥

इस प्रकार रसविद्याकी प्रशंसा गुरुमुखसे सुनकर शिष्य कहने लगा हे श्रेष्ठ वैद्य ! इस अद्भुत कामके करनेवाले रस (पारद) की उत्पत्ति और संस्कार आदि पुण्यकथा क्रमपूर्वक मुझको सुनाइये मुझे इसके सुननेकी बडी उत्कंठा है॥३३॥३४॥

पारदप्रशंसा ।

हरति सकलरोगान्मूर्च्छितो यो नराणां
वितरति किल बद्धः खेचरत्वं जवेन ।
सकलसुरमुनीन्द्रैर्वन्दितः शम्भुबीजं
स जयति भवसिन्धोः पारदः पारदोऽयम् ॥ ३५ ॥

जो पारा मूर्च्छित होनेसे मनुष्योंके सभी रोगोंका हरण करता है तथा बद्ध हुआ वेगसे आकाशमें विचरनेकी शक्ति देता है। तथा सकल सुर मुनियों-करके पूजित शिवबीज संसारसागरसे पार करनेवाला ऐसा यह पारा है ॥ ३५ ॥

श्रीमान्सूतनृपो ददाति विलसल्लक्ष्मीं वपुः शाश्वतं
स्वानां प्रीतिकरीमचंचलमनो मातेव पुंसां यथा ॥
ह्यन्यो नास्ति शरीरनाशकगदप्रध्वंसकारी ततः
कार्यं नित्यमहोत्सवैः प्रथमतः सूताद्वपुःसाधनम् ॥ ३६ ॥

श्रीमान् सूतराज (पारा) शरीरको सुन्दर स्थिर कान्तियुक्त और अविनाशी देह बना देता है। माताकी समान रक्षा करता है, शरीरको नष्ट करनेवाले रोगोंका नाश करनेवाला ऐसा दूसरा औषध नहीं है, इससे नित्य प्रति प्रातःकाल बडे उत्साहके साथ पारेके सेवनसे शरीरका साधन करना चाहिये ॥ ३६ ॥

साक्षादक्षयदायको भुवि नृणां पञ्चत्वमुच्चैः कुतो
मूर्च्छां मूर्च्छितविग्रहो गदवतां हन्त्युच्चकैः प्राणिनाम् ॥
चन्द्रं प्राप्य सुरासुरेन्द्रचरितां तां तां गतिं प्रापयेत्
सोऽयं पातु परोपकारचतुरः श्रीसूतराजो जगत् ॥ ३७ ॥

पारद–मनुष्यके शरीरको अमर बना सकता है, अकाल मृत्युको जीत ले तो बातही क्या है । मूर्च्छित पारद मूर्च्छा और संपूर्ण रोगोंको दूर करता है । यदी ठीक स्वर्णभक्षी बनकर चंद्रोदय बन जावे या जलौका बद्ध हो जाय तो सुर और असुरोंकीसी आकाश गमनादिकी गतिको देताहै । ऐसा यह सूतराज संसारके ऊपर उपकार करनेमें चतुर जगत्की रक्षा करे ॥ ३७ ॥

यो न वेत्ति कृपाराशिं रसं हरिहरात्मकम् ।
वृथा चिकित्सां कुरुते स वैद्यो हास्यतां व्रजेत् ॥ ३८ ॥
शुष्केन्धनमहाराशिं यथा दहति पावकः ।
तद्वद्दहति सूतोऽयं रोगान्दोषत्रयोद्भवान् ॥ ३९ ॥

विष्णु और शिव स्वरूप दयालु पारेको जो नहीं जानता वह व्यर्थ चिकित्सा करता है और उसकी हँसी होती है । जैसे–सूखी लकडियोंके समूहको अग्नि भस्म करती है उसी प्रकार तीनों दोषोंसे होनेवाले रोगोंको यह पारा जलाता है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

मोहयेद्यः परान्बद्धो जीवयेच्च मृतः परान् ।
मर्च्छितो बोधयेदन्यांस्तं सूतं को न सेवते ॥ ४० ॥

स्वयं बँध कर जो औरोंको मोहवश करे और मरकर दूसरोंको जिलावे तथा स्वयं मूर्च्छित होकर औरोंको जगाता है ऐसे पारेको कौन नहीं सेवन करता है ॥ ४० ॥

आयुर्द्रविणमारोग्यं वह्निर्मेधा महद्बलम् ।
रूपयौवनलावण्यं रसोपासनया भवेत् ॥ ४१ ॥

पारेके सेवनसे आयु, द्रव्य, आरोग्यता, जठराग्नि, बुद्धि, अतिशय बल, तथा रूप यौवन और लावण्यता होते हैं ॥ ४१ ॥

मारयेज्जारितं सूतं गंधकेनैव मूर्च्छयेत् ।
बद्धः स्याद्द्रुतिसत्त्वाभ्यां रसस्यैवं त्रिधा गतिः ॥ ४२ ॥

प्रथम कंचुकी रहित शुद्धपारदको गंधक जारणविधिसे जारण करे जारित पारदको मारण करना चाहिये । गंधक द्वाराही पारेको मूर्च्छित करे । द्रुति और सत्त्वसे पारेको बद्ध करना चाहिये इस प्रकार पारेकी तीन प्रकारकी गति कही है ॥ ४२ ॥

रसकी प्रधानता ।

अल्पमात्रोपयोगित्वादरुचेरप्रसंगतः ।
क्षिप्रमारोग्यदायित्वादौषधेभ्योऽधिको रसः ॥ ४३ ॥

थोडीसी ही मात्रा (खुराक) होनेसे इसको खानेमें अरुचि न होनेसे और शीघ्र आरोग्यदाई होनेसे सम्पूर्ण औषधियोंसे रसकी श्रेष्ठता है (क्योंकि इसके सेवनसे योगसिद्धि और मोक्ष तक होसकता है) ॥ ४३ ॥

अचिराज्जायते पुत्र शरीरमजरामरम् ।
मनसश्च समाधानं रसयोगादवाप्यते ॥ ४४ ॥
सत्त्वं च लभते सद्यो विज्ञानं ज्ञानपूर्वकम् ।
सत्त्वं मंत्राश्च सिद्ध्यन्ति योऽश्नाति मृतसूतकम् ॥ ४५ ॥
यावन्न शक्तिपातस्तु न यावत्पाशकृन्तनम् ।
तावत्तस्य कुतो बुद्धिर्जायते भस्मसूतके ॥ ४६ ॥
यावन्न हरबीजं तु भक्षयेत्पारदं रसम् ।
तावत्तस्य कुतो मुक्तिः कुतः पिंडस्य धारणम् ॥ ४७ ॥
स्वदेहे खेचरत्वं च शिवत्वं येन लक्ष्यते ॥ ४८ ॥

हे पुत्र ! इस पारदके सेवन करनेसे जल्दी देह अजर अमर होता है, तथा मनका समाधान होता है, सत्त्व और ज्ञान विज्ञानकी प्राप्ति होती है बल और मंत्रसिद्धि प्राप्त करता है । जबतक शक्तिपात और फांसोंका कटना नहीं होता तबतक इस प्राणीकी पारेके भस्मको खानेमें कब बुद्धि होती है । जबतक जन पारेको नहीं खाता तबतक इसकी रोगोंसे मुक्ति और देहका धारण कैसे होसकता है, जिस पारेको खानेसे यह प्राणी इस अपने देहसे ही आकाशमें गति तथा शिवत्वको प्राप्त होता है ॥ ४४–४८ ॥

दोषहीनो रसो ब्रह्मा मूर्च्छितस्तु जनार्दनः ।
मारितो रुद्ररूपी स्याद्बद्धः साक्षात्सदाशिवः ॥ ४९ ॥

निर्दोष पारा ब्रह्मा है, मूर्च्छित विष्णु और मारा पारा रुद्र है और जो पारा बद्ध है वह साक्षात् सदाशिवका स्वरूप है ॥ ४९ ॥

साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्त्ववेदिना ।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठ उच्यते ॥ ५० ॥
हतो हन्ति जराव्याधिं मूर्च्छितो व्याधिघातकः ।
बद्धः खेचरतां धत्ते कोऽन्यः सूतात्कृपाकरः ॥ ५१ ॥

प्रायः वैद्योंने साध्य रोगोंमें संपूर्ण औषधें कही हैं, असाध्य रोगोंमें कोई नहीं कही, परन्तु पारा असाध्यरोगोंमें देना कहा है इसीसे पारेकी श्रेष्ठता है । मरा हुआ पारा बुढापे और रोगोंको दूर करता है, मूर्च्छित पारा रोगोंको हरता और बद्ध पारा आकाशमें जानेकी शक्ति देता है; बताओ पारेको छोड कौन ऐसा दयालु है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

केदारादीनि लिंगानि पृथिव्यां यानि कानिचित् ।
तानि दृष्ट्वा तु यत्पुण्यं तत्पुण्यं रसदर्शनात् ॥ ५२॥

केदार इत्यादि जितने शिवलिङ्ग इस भूमिमें हैं उनके दर्शनसे जो पुण्य होता है वही पारदके दर्शनसे होता है ॥ ५२ ॥

विधाय रसलिंगं यो भक्तियुक्तः समर्चयेत् ।
जगत्रितयलिंगानां पूजाफलमवाप्नुयात् ॥ ५३ ॥

जो मनुष्य पारेका लिंग बनाकर पूजन करता है वह त्रिलोकीके महादेवोंकी मूर्त्तियोंके पूजाफलको प्राप्त होता है ॥ ५३ ॥

चन्दनाऽगुरुकर्पूरकुंकुमान्तर्गतो रसः ।
मूर्च्छितः शिवपूजा सा शिवसान्निध्यसिद्धये ॥ ५४ ॥
भक्षणाद्विधिपूर्वं हि हन्ति पापत्रयं रसः ।
दुर्लभं ब्रह्मविष्ण्वाद्यैः प्राप्यते परमं पदम् ॥ ५५ ॥

मूर्च्छित पारेको चन्दन, अगर, कपूर और केशरके भीतर स्थापन करना वही शिवपूजा कही जाती है यह शिवप्राप्तिका हेतु है विधिपूर्वक पारेका सेवन करना तीन जन्मोंके पापोंको नाश करता है । जो पद ब्रह्मा विष्णु और शिवको दुर्लभ है उस पदको पारदका सेवन करनेवाला पाता है, जो मनुष्य अपने

हृदयकमलमें स्थित पारदका ध्यान करताहै वह शीघ्र ही अनेक जन्मान्तरके उपार्जित पापोंसे छूट जाता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

स्वयम्भूलिङ्गसाहस्रैर्यत्फलं सम्यगर्चनात् ।
तत्फलं कोटिगुणितं रसलिङ्गार्चनाद्भवेत् ॥ ५६ ॥
रसविद्या परा विद्या त्रैलोक्येऽपि च दुर्लभा ॥
भुक्तिमुक्तिकरी यस्मात्तस्माद्यत्नेन गोपयेत् ॥ ५७ ॥

अपने आप उत्पन्न हुए हजारों शिवलिङ्गोंकी पूजासे जो पुण्य होता है उससे करोड गुना फल पारेके लिङ्गके पूजनसे होता है । रसविद्या श्रेष्ठविद्या कहलाती है और तीनों लोकोंमें दुर्लभ है यह भोग और मोक्षकी दाता है, इससे इसको यत्नसे रक्षा करे ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

शताश्वमेधेन कृतेन पुण्यं गोकोटिभिः स्वर्णसहस्रदानात् ।
नृणां भवेत्सूतकदर्शनेन यत्सर्वतीर्थेषु कृताभिषेकात् ॥ ५८ ॥

सौ अश्वमेध यज्ञ करनेसे जो पुण्य होता है, करोड गोदानोंसे जा पुण्य होताहै और हजार तोला सुवर्ण दान करनेसे जो पुण्य होताहै तथा सब तीर्थोंमें अभिषेक करनेसे जो पुण्य होताहै वह पुण्य पारदके दर्शनमात्रसे होताहै॥ ५८ ॥

सुरगुरुगोद्विजहिंसापापकलापोद्भवं किलासाध्यम् ।
चित्रं तदपि च शमयति तस्मात्कोन्यः शुचिः सूतात् ॥५९ ॥

देवता, गुरु, गौ, ब्राह्मणकी हत्या और अनेक पापोंके करनेसे हुए कुष्ठ भगंदर इत्यादि असाध्य रोगोंको यह पारा शान्त करता है, यह आश्चर्य है । विचारो इससे पवित्र और कौन होवेगा ॥ ५९ ॥

पारदकेनाम ।

रसेन्द्रः पारदः सूतः सूतराजश्च सूतकः ।
शिवतेजो रसः सप्त नामान्येवं रसस्य तु ॥ ६० ॥
शिवबीजो रसः सूतः पारदश्च रसेन्द्रकः ।
एतानि रसनामानि तथान्यानि यथा शिवे ॥ ६१ ॥

रसेन्द्र, पारद, सूत, सूतराज, सूतक, शिवतेज और रस ये सात नाम पारेके हैं । शिवबीज, रस, पारद, रसेन्द्रक इत्यादि पारेके नाम हैं और भी शिवसंबंधी नाम पारदके जानने, जैसे शिव, रुद्र, शंकर आदि ॥ ६० ॥ ६१ ॥

हिमालयवर्णनं तत्र महादेवनिवासः ।

अस्ति नीहारनिलयो महानुत्तरदिङ्मुखे ।
उत्तुंगशृंगसंघातलंघिताभ्रो महीधरः ॥ ६२ ॥
विश्रामाय वियन्मार्गविलंघनघनश्रमः ।
अवतीर्ण इव क्षोणीं शरदंबुमुचां गणः ॥ ६३ ॥
राशिराशीविषाधीशफणाफलकरोचिषाम् ।
भित्त्वा भुवमिवोत्तीर्णो यो विभाति भृशोन्नतः ॥ ६४ ॥
ज्वलदौषधयो यस्य नितंबमणिभूमयः ।
नक्तमुद्दामतडितामनुकुर्वन्ति वार्मुचाम् ॥ ६५ ॥
कटके संचरंतीनां यस्य किन्नरयोषिताम् ।
पादेषु धातुरागेण लाक्षाकृत्यमनुष्ठितम् ॥ ६६ ॥
अवतंसितशीतांशुराच्छादितदिगंबरः ।
यो गुहाधिगतो लोकैर्गिरीश इति गीयते ॥ ६७ ॥

बर्फसे भराहुआ होनेसे श्वेत और बहुत ऊंचा उत्तर दिशामें एक पर्वत है जिसके ऊंचे शिखर बादलोंको फाडकर आकाशमें पहुंचे हुए हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि मानो आकाशमें चलनेसे थका हुआ शरदतुके मेघोंका समूह इस पर्वतपर आराम करनेको आन ठहरा है । अथवा सर्पोंका आधिपति शेषनाग पृथ्वीको भेदन कर अपने तेज फणोंको उठाये खडा है । इस प्रकार यह उन्नत पहाड शोभा देरहा है । जिसमें अनेक दिव्य औषाधियोंकी चमक दमक ऐसी प्रतीत होती है मानो इस पर्वतने तेजयुक्त मणियोंकी मेखला धारण कीहै जिस प्रकार घनान्धकारमयी रात्रिमें बिजलीकी चमकसे मणियोंकी चकाचौंध होती है । उसी प्रकार दिव्य औषधियें उस पर्वतपर चमक रही हैं । उस पर्वत पर किन्नरोंकी स्त्रियोंके झुंड फिरते हुए शोभाको प्राप्त होरहे हैं और उनके चरणोंको उस पर्वतकी धातुओंने रंगकर लाखके रंगका रँग दिया है । उसी पर्वत पर चन्द्रमारूपी आभूषण मस्तक पर चढाये अपनी पवित्र किरणोंसे आकाशको आच्छादन करते हुए दिशारूपी वस्त्र पहने गुफामें महादेव विराजमान हैं जो संसारमें गिरीश (कैलासपति) नामसे गाये जाते हैं ॥६२--६७॥

महादेवस्थितिः ।

निमीलितदृशो नित्यं मुनयो यस्य सानुषु ।
प्रत्यक्षयंति गिरिशमवाङ्मनसगोचरम् ॥ ६८ ॥
शिलातलप्रतिहतैर्यस्य निर्झरसीकरैः ।
अहन्यपि निरीक्षंते यक्षास्तारांकितं नभः ॥ ६९ ॥
नीहारपवनोद्रेकनिःसहा यत्र पूरुषाः ।
निजस्त्रीणां निषेवंते कुचोष्माणं निरन्तरम् ॥ ७० ॥

जिसके समीपवर्त्ती शिखरोंकी कंदराओंमें नेत्र बंद किये समाधि लगाकर मुनिजन महादेवका प्रत्यक्ष दर्शन करते हैं । जिस महादेवकी महिमाको मन जान नहीं सकता और बाणी कह नहीं सकती । जिस पर्वतकी बडी २ शिलाओं पर ऊंचेसे गिरा हुआ बर्फ शिखरोंका पानी छिटककर आकाशमें विचरता दिनमें ही तारागणोंकी समान प्रतीत होताहै । उस बर्फवाली ठंढी पवनके लगनेको न सहन करते हुए किन्नर निरंतर अपनी स्त्रियोंके कुचोंकी उष्मा (गर्मी) का सेवन करते हैं ॥ ६८–७० ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

संचरन् कटके यस्य निदाघेऽपि दिवाकरः ।
उद्दामहिमरुद्धोष्मा न शीतांशोर्विभिद्यते ॥ ७१ ॥

जिस पर्वतके कोटरोंमें फिरता हुआ सूर्य बढी हुई बर्फकी शीततासे रुकगई है गर्मी जिसकी दुपहरके समय भी चन्द्रमासे भेदको प्राप्त नहीं होता अर्थात् सूर्य चन्द्रमा दोनों एकसे प्रतीत होते हैं ॥ ७१ ॥

पारदकी उत्पत्ति ।

शैलेस्मिञ्शिवयोः प्रीत्या परस्परजिगीषया ।
संप्रवृत्ते च संभोगे त्रिलोकीक्षोभकारिणि ॥ ७२ ॥
विनिवारयितुं वह्निः संभोगं प्रेषितः सुरैः ।
कांक्षमाणैस्तयोः पुत्रं तारकासुरमारकम् ॥ ७३ ॥
कपोतरूपिणं प्राप्तं हिमवत्कन्दरेऽनलम् ।
अपक्षिभावसंक्षुब्धं स्मरलीलावलोकिनम् ॥ ७४ ॥

तं दृष्ट्वा लज्जितः शम्भुर्विरतः सुरतात्तदा ।
प्रच्युतश्चरमो धातुर्गृहीतः शूलपाणिना ॥ ७५ ॥
प्रक्षिप्तो वदने वह्नेर्गंगायामपि सोऽपतत् ।
बहिः क्षिप्तस्तया सोऽपि परिदंदह्यमानया ॥ ७६ ॥
संजातास्तन्मलाधानाद्धातवः सिद्धिहेतवः ।
यावदग्निमुखाद्रेतो न्यपतद्भूरिसारतः ॥ ७७ ॥
शतयोजननिम्नांस्तान् कृत्वा कूपांस्तु पंच च ।
तदा प्रभृति कूपस्थं तद्रेतः पंचधाभवत् ॥ ७८ ॥

अब पारेकी उत्पत्ति कहते हैं किसी समय हिमालय पर्वतमें प्रेमपूर्वक एक दूसरेकी जीतनेकी इच्छासे तीनों लोकोंके क्षोभकारी संभोग करनेको जब श्रीशिवजी तथा पार्वती प्रवृत्त हुए तब उस संभोगको छुडाने और तारकासुरनाशक पुत्रके उत्पत्तिकी उनसे इच्छा करके देवताओंने अग्निदेवको भेजा वह अग्निदेव कबूतरका रूप धारण कर हिमालयकी गुहामें आया वहां बनावटी पक्षी होनेसे व्याकुल अग्निको देख लज्जित हुए शिव कामक्रीडासे निवृत्त होगये उस समय जो वीर्य स्खलित हुआ उसको लेकर शिवजीने अग्निके मुखमें डालदिया, उसको अग्निने गङ्गामें डाला जब गङ्गा उससे अत्यन्त जलने लगीं तब गङ्गाने उसे भूमिपर फेंक दिया उसी शिववीर्यके मलसे सिद्धिप्रद सुवर्णादि धातुएं उत्पन्न हुईं असह्य बोझके कारण जितना वीर्य अग्निके मुखसे गिरगया वही पारेके स्वरूपसे पृथ्वीमें विख्यात हुआ चार सौ कोसके गहरे पांच कुंए बनाकर उस शिववीर्यको रखते भये तभीसे वह कूओंमें रहा हुआ पारा पांच प्रकारका होगया ॥ ७२–७८ ॥

पंचविधपारद ।

रसो रसेन्द्रः सूतश्च पारदो मिश्रकस्तथा ।
इति पंचविधो जातः क्षेत्रभेदेन शम्भुजः ॥ ७९ ॥

रस, रसेन्द्र, सूत, पारद, तथा मिश्रक इस प्रकार क्षेत्रभेदसे पांच प्रकारका पारा उत्पन्न हुआ ॥ ७९ ॥

रससंज्ञकपारदके गुण ।

रसो रक्तो विनिर्मुक्तः सर्वदोषै रसायनः ।
संजातास्त्रिदशास्तेन नीरुजो निर्जरामराः ॥ ८० ॥

लालवर्णका पारद सर्वदोषरहित और रसायन है, इसके सेवनसे देवता रोग रहित अजर अमर हुए हैं ॥ ८० ॥

रसेन्द्रसंज्ञक पारदके लक्षण ।

रसेन्द्रो दोषनिर्मुक्तः श्यावो रूक्षोऽतिचंचलः ।
रसायनोऽभवंस्तेन नागा मृत्युजरोज्झिताः ॥ ८१ ॥
देवैर्नागैश्च तौ कूपौ पूरितौ मृद्भिरश्मभिः ।
तदा प्रभृति लोकानां तौ जातावतिदुर्लभौ ॥ ८२ ॥

रसेन्द्रनामक पारा धूसरवर्णका सूखा और अत्यन्त चंचल तथा दोषरहित और रसायन होताहै इसके सेवनसे नाग मृत्यु और बृद्धावस्थारहित होगये। इन पारोंके कुओंको देवता और नागोंने मिट्टी और पत्थरोंसे भर दियाहै, तभीसे रस और रसेन्द्र इन दोनों जातिके पारे इस मनुष्यलोकमें मनुष्योंको अतिदुर्लभ हुए हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

सूतसंज्ञक पारद ।

ईषत्पीतश्च रूक्षांगो दोषयुक्तश्च सूतकः ।
दशाष्टसंस्कृतैः सिद्धो देहं लोहं करोति सः ॥ ८३ ॥

सूतनामवाला पारा कुछ पीला, रूखा दोषवाला होताहै यह अठारह संस्कारोंसे सिद्ध किया हुआ सेवन करनेवाले मनुष्यके देहको लोहसा दृढ करता है ॥ ८३ ॥

पारदसंज्ञक ।

अथान्यकूपजः कोऽपि सचलः श्वेतवर्णवान् ।
पारदो विविधैर्योगैः सर्वरोगहरः स हि ॥ ८४ ॥

चौथे कुएका पारदसंज्ञक पारा सफेद और चंचल है। यह (पारा) अनेक प्रकारके योगोंसे सब रोगोंको हरता है ॥ ८४ ॥

मिश्रकपारद ।

मयूरचन्द्रिकाछायः सरसो मिश्रको मतः ।
सोऽप्यष्टादशसंस्कारयुक्तश्चातीव सिद्धिदः ॥ ८५ ॥

मोरके परके चांदोंके समान विचित्र वर्णवाला और सरस पारेको मिश्रक पारा कहते हैं यह भी अठारह संस्कार करनेसे अत्यन्त सिद्धिको देताहै ॥ ८५ ॥

त्रयः सूतादयः सूताः सर्वसिद्धिकरा अपि।
निजकर्मविनिर्माणैः शक्तिमन्तोऽतिमात्रया ॥ ८६ ॥
एतां रससमुत्पत्तिं यो जानाति स धार्मिकः।
आयुरारोग्यसंतानं रससिद्धिं च विन्दति ॥ ८७ ॥

उक्त पांच प्रकारके पारोंमें सूतक पारद और मिश्रक ये तीन प्रकारके पारे यद्यपि संपूर्ण सिद्धि करनेवाले हैं तथापि अपने २ कर्मोंद्वारा बनाये जांय तो अत्यन्त शक्तिसंपन्न जानने इस प्रकार पारेकी उत्पत्तिको जो जाने वह धार्मिक है तथा आयु, आरोग्य, संतान और रससिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

एतां रससमुत्पत्तिं यो जानाति स धार्मिकः ॥
आयुरारोग्यसंतानरस सिद्धिं च विंदति ॥ ८८ ॥

इस रसकी उत्पत्तिको जो धार्मिक मनुष्य जानता है वह दीर्घायु होता है और नीरोग रहकर अच्छी सन्तानवाला होता है, तथा सिद्धिको प्राप्त होता है ॥ ८८ ॥

रसादिशब्दोंकी निरुक्ति।

रसनात्सर्वधातूनां रस इत्यभिधीयते।
जरारुङ्मृत्युनाशाय रस्यत वा रसो मतः ॥ ८९ ॥
रसोपरसराजत्वाद्रसेन्द्र इति कीर्तितः।
देहलोहमयीं सिद्धिं सूते सूतस्ततः स्मृतः ॥ ९० ॥
रोगपंकाब्धिमग्नानां पारदानाच्च पारदः।
सर्वधातुगतं तेजो मिश्रितं यत्र तिष्ठति ॥ ९१ ॥
तस्मात्स मिश्रकः प्रोक्तो नानारूपफलप्रदः ॥ ९२ ॥

यहां रसादि शब्दोंकी निरुक्ति कहते हैं, सब धातुओंके भक्षण करनेसे इस पारेको रस कहते हैं। अथवा वृद्धता, रोग और मृत्युके नाश करनेसे इसको भक्षण करते हैं इस कारण इसको रस कहते हैं। तथा रस और उपरसोंका राजा होनेसे इसको रसेन्द्र कहते हैं और देहको लोहेके समान उत्पन्न करता है इससे इसको सूत कहते हैं। रोगरूप कीचडके समुद्रमें डूबे हुए मनुष्योंको पार लगानेसे इसको पारद कहते हैं, और समस्त धातुओंका मिश्रित तेज इस पारेमें रहता है इस कारण इसको मिश्रक कहते हैं। यह अनेक प्रकारके फल देता है ॥८९-९२॥

एवंभूतस्य सूतस्य मर्त्यमृत्युगदच्छिदः ।
प्रभावान्मानुषा जाता देवतुल्यबलायुषः ॥ ९३ ॥
तान्दृष्ट्वाऽभ्यर्थितो रुद्रः शक्रेण तदनन्तरम् ।
दोषैश्च कंचुकाभिश्च रसराजो नियोजितः ॥ ९४ ॥
तदा प्रभृति सूतोऽसौ नैव सिद्धयत्यसंस्कृतः ॥ ९५ ॥

इस प्रकार मनुष्यकी मृत्यु और रोगोंके नाश करनेवाले पारेके प्रभावसे मनुष्य देवताओंके समान बलवान् और दीर्घायुवाले होगये, ऐसे मनुष्योंको देख इन्द्रने प्रार्थना करी कि हे नाथ ! इस पारेके प्रभावसे सब पुरुष देवताओंके तुल्य होजांयगे फिर देवताओंमें क्या फर्क रहा । ऐसा कथन सुन श्रीशिवजीने उस पारेको दोषयुक्त और कांचलीयुक्त करदिया । तभीसे यह पारा विना संस्कारके सिद्ध नहीं होता इससे पारेकी शास्त्रोक्त शुद्धि अवश्य करना चाहिये ॥९३-९५॥

प्रत्यक्षेण प्रमाणेन यो न जानाति सूतकम् ।
अदृष्टविग्रहं देवं कथं ज्ञास्यति चिन्मयम् ॥ ९६ ॥

जो मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमाण करके पारेको नहीं जाने वह अदृष्ट शरीर परमात्मा चैतन्य मयको कैसे जानेगा ? अर्थात् जो पारेको जानता है वही परब्रह्मको जानेगा ॥ ९६ ॥

रससंख्या ।

एक एव रसो ज्ञेयो बहुधोपरसाः स्मृताः ॥ ९७ ॥

रस केवल एक (पारद) ही है परंतु उपरस बहुत प्रकारके कहे हैं ॥ ९७ ॥

पारदकी श्रेष्ठता ।

काष्ठौषध्यो नागे नागो वंगेऽथ वंगमपि शुल्बे ।
शुल्बं तारे तारं कनके कनकं च लीयते सूते ॥ ९८ ॥
अमृतत्वं हि भजंते हरमूर्त्तौ योगिनो यथा लीनाः ।
तद्वत्कवलितगगने रसराजे हेमलोहाद्याः ॥ ९९ ॥
परमात्मनीव सततं भवति लयो यत्र सर्वसत्त्वानाम् ।
एकोऽसौ रसराजः शरीरमजरामरं कुरुते ॥ १०० ॥

स्थिरदेहाभ्यासवशात्प्राप्य ज्ञानं गुणाष्टकोपेतम् ।
प्राप्नोति ब्रह्मपदं न पुनर्वनवासदुःखेन ॥ १०१ ॥

काष्ठौषधि शीशेमें मिल जाती हैं, शीशा वंगमें, वंग तांबेमें, तांबा चांदीमें, चांदी सोनेमें तथा सोना पारेमें मिलजाता है जिस प्रकार योगी श्रीशिवजीकी मूर्त्तिमें मोक्षके समय लीन होते हैं उसी प्रकार अभ्रकको भक्षण करनेवाले पारेमें लौहादि धातु मिल जाती हैं अथवा जैसे परमात्मामें सर्वप्राणी लीन होते हैं उसी प्रकार पारेमें सब धातुओंका लय होताहै यह एकही रसराज (पारा) देहको अजर अमर करता है । देह स्थिर होनेपर अभ्यास करते २ अष्टसिद्धिसंपन्न ज्ञानकी प्राप्ति होती है, उससे मनुष्य ब्रह्मपदको प्राप्त होता है परंतु वनवासके कष्टसे ब्रह्मपदकी प्राप्ति नहीं होसकती ॥ ९८–१०१ ॥

पारदाद्ब्रह्मप्राप्तिः ।

एकांशेन जगद्युगपदवष्टभ्य स्थितं परं ज्योतिः ।
पादैस्त्रिभिस्तदमृतं सुलभं न विरक्तिमात्रेण ॥ १०२ ॥
नहि देहेन कथं चिद्व्याधिजरामरणदुःखविधुरेण ।
क्षणभंगुरेण सूक्ष्मं तद्ब्रह्मोपासितुं शक्यम् ॥ १०३ ॥
नामापि देहसिद्धेः को गृह्णीयाद्विना शरीरेण ।
तद्योगगम्यममलं मनसोपि न गोचरं तत्त्वम् ॥ १०४ ॥
यज्ज्ञानात्तपसो वेदाध्ययनाद्दमात्सदाचारात् ।
अत्यन्तभूयसी किलयोगवशादात्मसंवित्तिः ॥ १०५ ॥

जो परब्रह्म ज्योति एक कलासे जगत्को धारण कर एक कालमेंही सत्त्व रज तम इन तीन गुणोंसे जगत्में व्यापक है । वह ब्रह्म केवल वैराग्यमात्रसेही प्राप्त नहीं होसकता । अनेक व्याधि बुढापा मरण आदि दुःखोंसे दुःखित क्षण-भंगुर शरीरसे उस सूक्ष्म ज्योतिकी उपासना नहीं होसकती और स्थूल शरीरके विना सूक्ष्मभी साधनमें असमर्थ है क्योंकि योग विना शरीरके नहीं हो सकता और योगके विना वह तत्त्व मनसेभी नहीं जाना जाता यज्ञ, ज्ञान, तप, वेदाध्ययन, दम, सदाचार आदिसे श्रेष्ठ जो आत्मदर्शन है वह योगसेही प्राप्त होसकता है, सो योग विना पारद भक्षणके नहीं होसकता ॥ १०२–१०५ ॥

भ्रूमध्यगतं यच्छिखिविद्युत्सूर्येन्दुवज्जगद्भाति ॥
केषांचित्पुण्यदृशामुन्मीलति चिन्मयं परं ज्योतिः ॥ १०६ ॥
परमानंदैकरसं परमं ज्योतिः स्वभावमविकल्पम् ।
विगलितसकलक्लेशं ज्ञेय शांतं स्वसंवेद्यम् ॥ १०७ ॥
तस्मिन्नाधाय मनः स्फुरदखिलं चिन्मयं जगत्पश्यन् ।
उत्सन्नकर्मबंधो ब्रह्मत्वमिहैव चाप्नोति ॥ १०८॥
रागद्वेषविमुक्ताः सत्याचारा मृषारहिताः ।
सर्वत्र निर्विशेषा भवंति चिद्ब्रह्मसंस्पर्शात् ॥ १०९ ॥
तिष्ठंत्यणिमादियुता विलसद्देहाः सदोदितानंदाः ।
ब्रह्मस्वभावममृतं संप्राप्ताश्चैव कृतकृत्याः ॥ ११० ॥

भ्रुकुटियुग्मके मध्यमें अग्नि बिजली सूर्य चन्द्रमाकी समान प्रकाशमय ज्योति जो जगत्को प्रकाश कररही है वह चिन्मय ज्योति किसी पुण्यात्मा पुरुषको ही प्रत्यक्ष होती है परमानन्दमय संपूर्ण चराचरमें व्यापक परम ज्योति कल्पनामें न आनेवाला सब क्लेशोंसे रहित जाननेयोग्य शान्त जो आत्मज्ञान द्वारा जाना जाय उसमें मन लगाकर संपूण चतन्यमय जगत्को देखता हुआ कर्मोंके बंधनको काटकर ब्रह्मको प्राप्त होताहै, फिर ब्रह्मस्पर्शसे रागद्वेषरहित हो सत्य और सदाचारयुक्त मिथ्यारहित संपूर्ण प्राणियोंपर एक दृष्टि होजाती है अणिमादि सिद्धियोंसे प्रकाशित शरीरवाले होते हैं, आनन्दका प्रकाश होताहै ब्रह्ममय हो, अमृत ब्रह्मको प्राप्त होते हैं संपूर्णतासे कृतकृत्य होजाते हैं ॥ १०६-११० ॥

आयतनं विद्यानां मूल धर्मार्थकाममोक्षाणाम् ।
श्रेयःपरं किमन्यच्छरीरमजरामरं विहायैकम् ॥ १११ ॥
प्रत्यक्षेण प्रमाणेन यो न जानाति सूतकम् ।
अदृष्टविग्रह देवं कथं ज्ञास्यति चिन्मयम् ॥ ११२ ॥
यज्जरया जर्जरितं कासश्वासादिदुःखविवशं च ।
योग्यं तन्न समाधौ प्रतिहतबुद्धीन्द्रियग्रामम् ॥ ११३ ॥
बालः षोडशवर्षो विषयरसास्वादलंपटः परतः ।

यातविवेको वृद्धो मर्त्यः कथमाप्नुयान्मुक्तिम् ॥ ११४ ॥
अस्मिन्नेव शरीरे येषां परमात्मनो न संवेदः ।
देहत्यागादूर्ध्वं तेषां तद्ब्रह्म दूरतरम् ॥ ११५ ॥
ब्रह्मादयो यतंते तस्मिन्दिव्यां तनुं प्राप्य ।
जीवन्मुक्ताश्चान्ये कल्पान्तस्थायिनो मुनयः ॥ ११६ ॥
तस्माद्ब्रह्मप्राप्तिं समीहमानेन योगिना प्रथमम् ।
दिव्या तनुर्विधेया हरगौरीसृष्टिसंयोगात् ॥ ११७ ॥

संपूर्ण विद्याओंका स्थान धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनका मूलकारण शरीरको अजर और अमर करनेवाला कल्याणकारी रसको छोडकर और क्या पदार्थ है ? अर्थात् कोई नहीं । जो मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमाणसे अजरामर कर्त्ता पारदको नहीं जानसकता वह चिन्मय अदृष्ट ब्रह्मको कैसे जानसकता है । जिस शरीरमें बुढापा आयगयाहो कास श्वासादि रोगोंसे व्याकुल हो इन्द्रियां शिथिल होगईहों वह समाधिके योग्य नहीं । पहले मनुष्य १६ वर्षकी अवस्था तक तो बालक ही रहताहै । फिर विषयोंके स्वाद लेनेमें लंपट रहताहै । जब कुछ बिबेक उत्पन्न हुआ तब वृद्धावस्थाने आ घेरा, फिर मनुष्य मुक्तिका साधन कैसे कर-सकताहै । जिनको इसी शरीरमें परमात्माका दर्शन न हुआ मरनेके अनंतर उन विचारोंको कहां प्राप्त होसकता है । ब्रह्मादिक देवता दिव्य शरीरको प्राप्त होकरभी जिसके लिय यत्न करते हैं और कल्पोंतक रहनेवाले जीवन्मुक्त मुनि भी यत्न करते हैं इसलिये ब्रह्मप्राप्तिकी इच्छावाले योगीको पारद, गंधक, अभ्रक इनके संयोगसे पहले दिव्य शरीर बनालेना चाहिये ॥ १११–११७ ॥

मूर्च्छित्वा हरति रुजं बंधनमनुभूय मुक्तिदो भवति ।
अमरीकरोति हि मृतः कोऽन्यः करुणाकरः सूतात् ॥ ११८ ॥

मूर्छित हुआ पारा संपूर्ण रोगोंको हरताहै । बँधा पारद मुक्ति देता है । मराहुआ पारद अमर करदेता है । इस पारेके समान और करुणा करनेवाला कौन है ? अर्थात् कोई नहीं ॥ ११८ ॥

पारदग्रहणोपायः ।

कन्यां सुरूपां प्रथमर्तुयुक्तां स्नातां सुवस्त्राभरणादिजुष्टाम् ।
जवाश्वरूढां सुनिरीक्षमाणां दृष्ट्वा रसः कूपगतोऽतिशीघ्रम् ॥ ११९ ॥

प्रयात्यधस्तादुपरि प्रचंडकामीव कान्ताकरकर्षणार्थम् ।
धावत्यसौ पृष्ठगतो हि तस्याः पूरो हि नद्या इव योजनैकम् ॥ १२० ॥
प्रत्यायाति ततः कूपं वेगतः शिवसंभवः ।
मार्गनिर्मितगर्तेषु स्थितं गृह्णन्ति पारदम् ॥ १२१ ॥

पहिले ऋतुस्नानवाली स्वरूपवती कन्या वस्त्र और आभूषणोंसे शृंगार कर वेगवान् घोडेपर बैठकर पारेके कुँएके ऊपर खडी होती है उस कन्याको देख पारा कुंएमेंसे उमग अति शीघ्रतासे उस कन्याके आलिंगन करनेको दौडता है। जैसे प्रचंड कामी पुरुष अपनी प्यारी स्त्रीके पकडनेको चलता है उस समय वह कन्या घोडेको दौडाती है उसके पीछे चार कोसतक वह पारा दौडता है जैसे नदीका वेग दौडता है जब वह कन्या उसकी सीमा बाहर निकल जाती है तब पारा फिर उसी वेगसे कुंएमें चला जाता है उस समय रास्तामें खोदेहुए गढोंमें जो पारा रहजाता है उसको वहांके मनुष्य इकट्ठा कर लेते हैं । परंतु यह पारद आजकल नहीं आता ॥११९-१२१ ॥

कूपादन्यस्थानेऽपि पारदस्योत्पत्तिः ।

पतितो दरदे देशे गौरवाद्वह्निवक्त्रतः ।
सरसो भूतले लीनस्तत्तद्देशनिवासिनः ॥ १२२ ॥
तं मृदं पातनायंत्रे क्षिप्त्वा सूतं हरंति च ॥ १२३ ॥

जब अग्निदेव कैलाशसे पारदको लाये तब वह भारी होनेसे दरद देश (रूम आदि स्थानों) में गिरकर मृत्तिकामें मिलगया सो उन २ देशोंके रहनेवाले लोग ऊर्ध्वपातनयंत्र द्वारा उडाकर पारदको निकाल लेते हैं (प्रायः आजकल ऐसेही बहुत देशोंमें निकलता है) ॥ १२२ ॥ १२३ ॥

यावत्सूतं न शुद्धं नच मृतमथ नो मूर्च्छितं गन्धबद्धं
नो वज्रं मारितं स्यान्न च गगनवधो नोपधातुश्च शुद्धः ।
स्वर्णाद्यं सर्वलोहं विषमपि न मृतं तैलपाको न जात-
स्तावद्वैद्यः कसिद्धो भवति वसुभुजां मंडले श्लाघ्ययोगः ॥ १२४ ॥

जबतक वैद्यसे पारा शुद्ध न हो, न मरे, तथा विषसे मूर्च्छित और गंधकसे बद्ध न हो । तथा जबतक हीरेकी भस्म न करे तैसे ही अभ्रक जारण नहीं करे, तथा उपधातुओंकी शुद्धि न हो और उससे स्वर्णादि अष्टलोह और विष नहीं मरें

तथा तैलपाक न हो तबतक वैद्य कहां सिद्ध होता है ? और राजाके देशमें किस प्रकार प्रशंसायोग्य होता है ? कभी नहीं होता । अर्थात् जो उक्त कर्मोंको जानता है वही प्रशंसाके योग्य है ॥ १२४ ॥

शोधनादिक्रिया सर्वा मारणादिक्रिया तथा ।
सर्वासां रसधातुनां ग्रंथेऽस्मिन् वक्ष्यते ह्यतः ॥ १२५ ॥

इसलिये संपूर्ण रस, उपरस और धातु आदिकोंके शोधन और मारणकी क्रियायें इस ग्रंथमें हम कहेंगे ॥ १२५ ॥

अध्यायका उपसंहार ।

एवं हि ते रसोत्पत्तिः पुण्यं वै दर्शनादिभिः ।
यथाश्रुतं स्वया बुद्धया चाध्यायेऽस्मिन्प्रकीर्तितम् ॥ १२६ ॥

इस प्रकार रसकी उत्पत्ति और उसके दर्शनादिसे पुण्य जैसा गुरुमुखसे सुना और किया , था जितनी अपनी बुद्धि है उसके अनुसार इस प्रथमाध्यायमें कथन कर दिया है ॥ १२६ ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्याय-
प्रणीते रसेन्द्रपुराणे प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

श्रीः ॥

अथातो नानार्थविवेचनीनाम द्वितीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम नानार्थ विवेचन नामक अध्यायका कथन करते हैं ॥

शिष्य उवाच ।

रसोत्पत्तिं च पुण्यं च श्रुत्वा श्रद्धाधिकायते ।
अतस्तच्छोधनोपायः कथ्यतां क्रमशः प्रभो ॥ १ ॥

शिष्य कहनेलगा–हे प्रभो ! रसोंकी उत्पत्ति और पुण्यको सुनकर मेरी श्रद्धा इस विषयमें अधिक होती जाती है इसलिये कृपा करके अब इसके शोधनके उपाय क्रमसे कथन कीजिये ॥ १ ॥

एवं पृष्टस्ततो विद्वाञ्शिष्यबुद्धिं प्रशंस्य वै ।
उवाच रससंबंधे श्रूयतां शिष्यसत्तम ॥ २ ॥

इस प्रकार पूछे हुए विद्वान् गुरु शिष्यकी बुद्धिकी प्रशंसा करता हुआ रसरसंबंधमें बोला हे श्रेष्ठशिष्य ! सुनो ॥ २ ॥

गुरुसेवां विना कर्मनिषेधः ।

गुरुसेवां विना कर्म यः कुर्यान्मूढचेतनः ।
तद्याति निष्फलत्वं हि स्वप्नलब्धं यथा धनम् ॥ ३ ॥
विद्यां ग्रहीतुमिच्छान्ति चौर्यच्छद्मबलादिना ।
न तेषां सिद्धयते किंचिन्मणिमंत्रौषधादिकम् ॥ ४ ॥

गुरुकी सेवा विना जो मन्दबुद्धि पुरुष रस तैलादि बनाना आदि कर्म करता है वह स्वप्नप्राप्त धनके समान निष्फल होजाता है जो पुरुष चोरी, छल, अथवा बलात्कार आदि कर्मोंसे विद्या पढनेकी इच्छा करता है उसको या तौ विद्या आवैगी नहीं यदि आभी गई तो मणि मंत्र और औषधादि कर्म कोई उसको सिद्ध नहीं होंगे ॥ ३ ॥ ४ ॥

विद्याप्राप्तौ त्रीणि कारणानि ।

गुरुशुश्रूषया विद्या पुष्कलेन धनेन वा ॥
अथवा विद्यया विद्या चतुर्थं नैव कारणम् ॥ ५ ॥

विद्या आनेके तीन कारण हैं पहिला तो गुरुकी सेवा करना, दूसरा खूब धन देना, तीसरा कोई विद्या स्वयं उसको पढाकर उसके पलटेमें स्वयं पढना इसको छोड चौथा कारण अथवा उपाय नहीं है ॥ ५ ॥

सद्गुरुलक्षणानि ।

मंत्रसिद्धो महावीरो निश्चलः शिववत्सलः ।
देवीभक्तः सदा धीरो देवतायागतत्परः ॥ ६ ॥
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञः कुशलो रसकर्मणि ।
एतल्लक्षणसंयुक्तो रसविद्यागुरुर्भवेत् ॥ ७ ॥

जो पुरुष पुरश्चरणादिसे जिसको मंत्र सिद्ध हो, महावीर (पराक्रमी) निश्चल, शिवप्रिय, देवीका भक्त और सर्वदा धीर देवताके पूजनमें तत्पर सब शास्त्रोंके अर्थ और भावको जाननेवाला और पारेके मारणादि कर्मोंमें चतुर हो इतने लक्षणोंसे संपन्न रसविद्या पढानेका आचार्य होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

उत्तमाशिष्यलक्षणानि।

शिष्यो निजगुरोर्भक्तः सत्यवक्ता बहुश्रुतः।
निरालस्यः स्वधर्मज्ञो देव्याराधनतत्परः ॥ ८ ॥

अपने गुरुका भक्त, सत्य बोलनेवाला, बहुश्रुत, आलस्यरहित, अपने धर्मका ज्ञाता तथा देवीके आराधनमें तत्पर ऐसा शिष्य होवै ॥ ८ ॥

ज्ञातव्यं रससंस्कारात्पूर्वं यंत्रादिसाधनम्।
विषाम्लादेश्च वर्गादि तत्तत्वं चाधुना शृणु ॥ ९ ॥

हे शिष्य! रसके संस्कारोंके जाननेसे पहले यंत्रोंके निर्माणका प्रकार और मूषा आदि बनानेकी क्रिया जानना चाहिये और विषवर्ग तथा अम्लवर्ग आदि जो रसादि संस्कारमें काम आता है उनको जानना चाहिये विना उनके ज्ञानके रसके संस्कार नहीं होसकते सो तुम पहले अब उनको सुनो (चकारसे लोहाष्टक, षट्लवण, क्षार त्रयादिका वर्णन समझना) ॥ ९ ॥

लोहाष्टकम्।

सुवर्णं रजतं ताम्रं त्रपु शीशकमायसम्।
षडेतानि च लोहानि कृत्रिमौ कांस्यपित्तलौ॥ १० ॥

सोना, चांदी, तांबा, रांगा, सीसा, और लोहा ये छः लोह हैं और कांसी, पीतल ये दो कृत्रिम अर्थात् बनावटी लोहे हैं ॥ १० ॥

षड् लवणानि।

लवणानि षडुच्यन्ते सामुद्रं सैंधवं विडम् ॥
सौवर्चलं रोमकं च चूलिकालवणं तथा ॥ ११ ॥

सामुद्र, सेंधा, विड, काला, रोमक और चूलिका यह छः प्रकारके नमक कहे गये हैं ॥ ११ ॥

क्षारत्रयम्।

क्षारत्रयं समाख्यातं यवस्वर्जिकटंकणम्।

जवाखार, सज्जीखार और सुहागा ये तीनों क्षारत्रय कहाते हैं ॥

मधुरत्रयम्।

घृतं गुडो माक्षिकं च विज्ञेयं मधुरत्रयम् ॥ १२ ॥

घृत, गुड, तथा सहद इन तीनोंको मधुरत्रय कहते हैं ॥ १२ ॥

वसावर्गः ।

मण्डकजंबूकवसा वसा कच्छपसंभवा ।
कर्कोटी शिशुमारी च गोशूकरनरोद्भवा ॥ १३ ॥
अजोष्ट्रखरमेषाणां माहिषस्य तथा वसा ।
वसावर्गः समाख्यातः पूर्वाचार्यैः समासतः ॥ १४ ॥

मेंडक, स्यार, कछुवा, केंकडा, सूस, गौ, सुअर, मनुष्य, बकरा, ऊंट, गधा, मेंढा तथा भैंसा इन तेरहोंकी वसाको पूर्वाचार्योंने वसावर्ग कहा है ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूत्रवर्गः ।

मूत्राणि हस्तिकरभमाहिषीखरवाजिनाम् ।
गोजावीनां स्त्रियाः पुंसां पुष्पं बीजं तु योजयेत् ॥ १५ ॥

हाथी, ऊंट, भैंसा, गधा, घोडा, गौ, बकरी, मेंढा और स्त्रीपुरुषोंका मूत्र मूत्रवर्ग कहलाताहै कहीं २ स्त्रियोंका रज और पुरुषोंका वीर्यभी प्रयोग किया जाता है ॥ १५ ॥

माहिषपंचकम् ।

महिषांबु दधि क्षीरं साभिसारं शकृद्रसः ।
तत्पंच माहिषं ज्ञेयं तद्वच्छागलपंचकम् ॥ १६ ॥

भैंसका मूत्र, दही, दूध, घृत और गोबरका रस ये माहिषपंचक कहाता है इसी प्रकार बकरीका छागलपंचक होता है ॥ १६ ॥

अम्लवर्गः ।

अम्लवेतसजंबीरनिंबुकं बीजपूरकम् ।
चांगेरी चणकाम्लं च अम्लीकं कोलदाडिमम् ॥ १७ ॥
अंबष्ठा तिंतिडीकं च नारंगं रसपत्रिका ।
करमर्द तथा चान्यदम्लवर्गः प्रकीर्त्तितः ॥ १८ ॥

अम्लवेत, जंबीरीनींबू, बिजौरा, लोनिया, चनाखार, इमली, बेर, अनार दाना, चूका, तिंतिडीक, नारंगी, रसपात्रिका तथा करोंदा इत्यादि औरभी खट्टी वस्तु अम्लवर्ग कहलाती हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

चणकाम्लश्च सर्वेषामेक एव प्रशस्यते ।
अम्लवेतसमेकं वा सर्वेषामुत्तमोत्तमम् ॥
रसादीनां विशुद्ध्यर्थं द्रावणो जारणे हितम् ॥ १९ ॥

चनोंकी खटाई सब खटाइयोंमें उत्तम है अम्लवेतकी तो अत्युत्तम है यह पारे आदिके शोधन द्रावण और जारणमें उपयोगी है ॥ १९ ॥

SANS.
615.536
RAN

अम्लपंचकम् ।

कोलदाडिमवृक्षाम्लचुल्लिका चिक्किका रसम् ।
पंचाम्लकं समुद्दिष्टं तच्चोक्तं चाम्लपंचकम् ॥ २० ॥

बेर, अनार दाना, तिंतिडीक, लोनियां और चूका ये पंचाम्ल तथा अम्लपंचक कहाते हैं ॥ २० ॥

पंचमृत्तिकाः ।

इष्टिका गैरिका लोणं भस्म वल्मीकमृत्तिका ।
रसप्रयोगकुशलैः कीर्त्तिताः पंचमृत्तिकाः ॥ २१ ॥

ईंट, गेरू, नमक, राख और बांबीकी मिट्टी ये रसके जाननेवालोंने पांच मिट्टी कही हैं ॥ २१ ॥

Indira Gandhi National
Centre for the Arts

विषवर्गः ।

शृंगिकं कालकूटं च वत्सनाभं सकृत्रिमम् ॥
पित्तं च विषवर्गोऽयं सवरः परिकीर्त्तितः ॥ २२ ॥
रसकर्मणि शस्तोऽयं तद्भेदो नवधापि च ।
अयुक्त्या सेवितश्चायं मारयत्येव निश्चितम् ॥ २३ ॥

सिंगिया, कालकूट, वत्सनाभ, बनावटी विष और पित्त यह विषवर्ग कहा है । यह रसकर्ममें श्रेष्ठ है विषोंके नौ भेद हैं विषको अयुक्तिपूर्वक खानेसे वह मृत्युको करता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

उपविषाणि ।

लांगली विषमुष्टिश्च करवीरं जया तथा ।
तिल्वकः कनकोर्कश्च वर्गो ह्युपविषात्मकः ॥ २४ ॥

कालिहारी, कुचला, कनेर, भांग, हिंगोट, धतूरा तथा आक यह उपविषवर्ग कहलाता है ॥ २४ ॥

IGNCA RAR
ACC No. R-335

दुग्धवर्गः ।

हस्त्यश्ववनिता धेनुर्गर्द्दभी छागिकाऽविका ।
उष्ट्रक्ष्युंदुबराश्वत्थभानुन्यग्रोधतिल्वकम् ॥ २५ ॥
दुग्धिकास्नुग्गणं चैतत्तथैवोत्तमकंठिका ।
एषां दुग्धैर्विनिर्दिष्टो दुग्धवर्गो रसादिषु ॥ २६ ॥

हथिनी, घोडी, गौ, गधी, बकरी, भेंडी, ऊंटिनी, गूलर, पीपल, आँक, बड, हिंगोट, दुद्धी, थूहर तथा दूधली यह रसादिकोंमें दुग्ध वर्ग कहा है ॥२५॥२६ ॥

विट्वर्गः ।

पारावतस्य चाषस्य कपोतस्य कलापिनः ।
गृध्रस्य कुक्कुटस्यापि विनिर्दिष्टो हि विट्गणः ।
शोधनं सर्वलोहानां पुटनाल्लेखनात्खलु ॥ २७ ॥

कबूतर, नीलकंठ, जंगली कबूतर, मोर, गीध और मुरगेकी बीठको विड्वर्ग कहते हैं । इनमें रगडनेसे और पुट देनेसे सब प्रकारके लोह शुद्ध होजाते हैं॥२७॥

रक्तवर्गः ।

कुसुभं खदिरो लाक्षा मंजिष्ठा रक्तचन्दनम् ॥ २८ ॥
आक्षीवं बंधुजीवश्च तथाक्का पूरगंधिनी ।
माक्षिकं चेति विज्ञेयो रक्तवर्गोतिरंजनः ॥ २९ ॥

कुसुम्भा, खैर, लाख, मंजीठ, लाल चन्दन, सहँजना, दुपहरिया, दाह, अगर, कपूरकचरी, सोनामक्खी यह रक्तवर्ग कहा जाता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

पीतवर्गः ।

कर्णिकारः किंशुकश्च हरिद्राद्वितयं तथा ।
पीतवर्गोऽयमादिष्टो रसराजस्य कर्माणि ॥ ३० ॥

कनेर, ढाक, दोनों हलदी यह पीतवर्ग पारेके कामोंमें कहाहै ॥ ३० ॥

श्वेतवर्गः ।

तगरः कुटजः कुंदो गुंजा जीवंतिका तथा ।
सिताम्भोरुहकंदश्च श्वेतवर्ग उदाहृतः ॥ ३१ ॥

तगर, कूडा, कुंद, घुंघची, बंदा तथा सफेद कमलका कंद यह श्वेतवर्ग कहाता है ॥ ३१ ॥

कृष्णवर्गः ।

कारवल्ली च कदली त्रिफला नीलिकानलः ।
पंकः कासीसबालाम्रौ कृष्णवर्ग उदाहृतः ॥ ३२ ॥

करेला, केला, त्रिफला, नील, चीता, कीच, कासीस, जिसमें गुठली न पडी हो ऐसा कच्चा आम यह कृष्णवर्ग कहाजाता है ॥ ३२ ॥

रक्तवर्गादिवर्गैश्च द्रव्यं तज्जारणात्मकम् ।
भावनीयं प्रयत्नेन तादृग्रागाप्तये खलु ॥ ३३ ॥

ऊपर कहे हुए रक्तादिवर्गोंसे जिन द्रव्योंको जारण करना हो उनको रंगनेके लिये यत्नपूर्वक भावना देना चाहिये ॥ ३३ ॥

काचटङ्कणलिप्तादिः शोधनीयो गणो मतः ।
सत्त्वानां बद्धसूतस्य लोहानां मलनाशनः ॥ ३४ ॥

कांच, सुहागा और नौसादरका शोधनीयगण कहते हैं । यह सत्त्वबँधा पारा और सुवर्णादि अष्टलोहोंका मल दूर करते हैं ॥ ३४ ॥

माहिषो मेढ्रोऽडगर्भः कालिंगो धवबीजयुक ।
शशास्थीनि च वर्गोऽयं लोहकाठिन्यनाशनः ॥ ३५ ॥

भैंसेका लिङ्ग, अंडेकी पिलाई, इन्द्रजव धववृक्षके बीज और खरगोशकी हड्डी यह लोहोंकी कठिनताका नाशक वर्ग है ॥ ३५ ॥

द्रावणगणः ।

गुडगुग्गुलुगुंजाज्यसारवैष्टंकणान्वितैः ।
दुर्द्रावाखिललोहादेर्द्रावणाय गणो मतः ॥ ३६ ॥

गुड, गूगल, घुंघची, घी, सहद, नौसादर, सुहागा यह कठिन धातुओंके द्राव करनेको द्रावणगण कहागया है ॥ ३६ ॥

क्षाराः सर्वे मलं हन्युरम्लाः शोधनजारणम् ।
मांद्यं विषाश्च निघ्नंति स्निग्ध्यं स्नेहाः प्रकुर्वते ॥ ३७ ॥

सभी क्षारोंकी भावना देनेसे पारा आदि धातुओंका मैल दूर हो जाता है, अम्लवर्गकी भावना शोधन और जारणमें दी जाती है, विषवर्ग धातुओंकी मंदता दूर करता है घृत तैलादि स्नेहवर्ग धातुओंमें चिकनाई करताहै ॥ ३७ ॥

रसानां तौल्यम् ।

त्रुटिः स्यादणुभिः षड्भिस्तैर्लिक्षा षड्भिरीरिता ।
ताभिः षड्भिर्भवेद्यूकः षड् यूकास्तु रजः स्मृतः ॥ ३८ ॥
षड्रजः सर्षपः प्रोक्तस्तैः षड्भिर्यव ईरितः ।
एका गुंजा यवैः षड्भिर्निष्पावस्तु द्विगुंजकः ॥ ३९ ॥
स्याद्गुंजात्रितयं वल्लो द्वौ वल्लौ माष उच्यते ।
षड्भिरेव तु गुंजाभिर्माष एकः प्रकीर्त्तितः ।
माषाद्द्वादश तालः स्यादष्टौ ताला पलं भवेत् ॥ ४० ॥

छः अणुकी १ त्रुटि छः त्रुटिका १ लिक्षा छः लिक्षाकी १ यूक छः यूकका १ रज छः रजकी १ सरसों छः सरसोंका १ यव छः जौकी १ रत्ती २ रत्तीकी १ मटर तीन रत्तीका १ वल्ल दो वल्ल (छः रत्ती) का १ मासा होता है । बारह मासोंका १ तोला और आठ तोलोंका १ पल होता है ॥ ३८–४० ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

माषैश्चतुर्भिश्शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते ।
टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं काल उच्यते ॥ ४१ ॥
क्षुद्रः कोलवटश्चैव द्रंक्षणस्स निगद्यते ।
कोलद्वयं च कर्षः स्यात् स प्रोक्ता पाणिमाणिका ॥ ४२ ॥
अक्षं पिचुः पाणितलं किंचित्पाणिश्च तिंदुकम् ।
विडालपदकं चैव तथा षोडशिका मता ॥ ४३ ॥
करमध्यो हंसपदं सुवर्णं कवलग्रहः ।
उदुंबरश्च पर्यायैः कर्ष एव निगद्यते ॥ ४४ ॥
स्यात् कर्षाभ्यामर्द्धपलं शुक्तिरष्टमिकास्तथा ।
शुक्तिभ्यां च पलं ज्ञेयं मुष्टिराम्रं चतुर्थका ॥ ४५ ॥
प्रकुंचः षोडशी विल्वं पलमेवात्र कीर्त्यते ॥ ४६ ॥

चार मासेका शाण होताहै उसको धरण टंक भी कहते हैं (जहां २ मासा आवे वहां २ छः रत्तीका मासा समझना चाहिये) दो शाणका कोल होता है क्षुद्र कोल बटक भी इसको कहते हैं दो कोलका कर्ष होता है उसको पाणिमाणिका,

अक्षपिचु, पाणितल, किंचित्पाणि, तिंदुक, बिडालपदक, षोडशिका, करमध्य, हंसपदक, सुवर्ण, कवलग्रह तथा उदुंबर भी कहते हैं दो कर्षका अर्द्धपल होता है उसीको शुक्ति अष्टमिका कहते हैं। दो शुक्तिका पल होताहै उसको मुष्टि, आम्र, चतुर्थिका, प्रकुंच, षोडशी तथा बिल्व भी कहते हैं ॥ ४१-४६ ॥

पलद्वयं तु प्रसृतं तद्द्वय कुडवोंजलिः।
कुडवौ मानिका तौ स्यात् प्रस्थं द्वे माणिके स्मृते ॥ ४७ ॥
तैश्चतुर्भिर्घटो माणिर्नल्वनर्मणशूर्पकाः।
द्रोणश्च शब्दाः पर्यायाः पलानां शतकं तुला।
चत्वारिंशत्पलशतं तुलाभारः प्रकीर्त्तितः ॥ ४८ ॥

दो पलका १ प्रसृत, दो प्रसृतका १ कुडव, इसको अंजली भी कहते हैं। दो कुडवकी १ माणिक, दो माणिककी १ प्रस्थ, दो प्रस्थोंका १ पात्रक, दो पात्रकोंका १ आढक, चार आढकोंका एक वट होता है। इसको माणि नल्वण उर्मण शूर्पक तथा द्रोण भी कहते हैं। सौ पलोंकी एक तुला होताहै। चार हजार पलका भार होता है। परंतु शार्ङ्गधरके मतसे २ हजार पलका भार होताहै सो यह ठीक है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

टंकः कर्षं पलं चापि कुडवं प्रस्थमाढकम्।
द्रोणो द्रोणी खारिकेति क्रमादेते चतुर्गुणाः ॥ ४९ ॥
रसशास्त्राणि बहुशो विचार्य किल सारवत्।
रसोपयोगि यत्किंचिद्दिङ्मात्रं तत्प्रदाशतम् ॥ ५० ॥

टंक, कर्ष, पल, कुडव, प्रस्थ, आढक, द्रोण, द्रोणी और खारी ये प्रत्येक क्रमसे एकसे दूसरी चौगुनी कही है। प्रयोजन यह कि टंकसे चौगुना कर्ष और कर्षसे चौगुना पल इत्यादि इसी क्रमसे जानो। मैंने रसोंके शास्त्रोंको विचार कर उसका जो कुछ सार था सो हे शिष्य उसका संक्षेप दिखला दिया है ॥४९॥५०॥

अधुना पुटसंज्ञां च विधानं चापि श्रूयताम्।

अब तुम पुटोंकी संज्ञा और विधिका श्रवण करो ॥

पुटसंज्ञाविधिश्च ।

महापुटम् ।

घने वेदास्रके गर्त्ते हस्तद्वितयमात्रके ।
करीषैरर्द्धपूर्णे च मुद्रितं च शरावकम् ॥
संस्थाप्य चान्यकारीषैः पूरिते शुभगर्त्तके ॥ ५१ ॥
अग्निं प्रज्वाल्य शीते च गृह्णीयात्तु शरावकम् ।
एतन्महापुटं चोक्तं कृतिभिः पूर्वसूरिभिः ॥ ५२ ॥

स्वच्छ करडी पृथ्वीमें एक चौकोना दो हाथका गहरा और चौडा गर्त्त बनावे उसको आधा आरने उपलों (जंगली कंडों) से भरे पीछे औषधियुक्त शराब पर कपर मिट्टी करके सुखावे पीछे गढेके बीचमें रक्खे बाकी गढेको आरने उपलोंसे भरकर बंद कर दे फिर आग लगादे स्वांगशीतल होनेपर शरावको निकाले इसको प्राचीन वैद्योंने महापुट कहाहै ॥ ५१॥५२ ॥

गजपुटलक्षणम् ।

घने वेदास्रके सार्द्धहस्ते चैव तु गर्त्तके ।
पूर्ववद्दीयते चाग्निस्तत्पुटं गजसंज्ञितम् ॥
माहिषं वेति संज्ञेयं सूरिभिः समुदाहृता॥ ५३ ॥

चौकोन घन डेढ हाथ गहरे चाड गढेमें आधे भाग तक उपले भरदे, बीचमें शरावका संपुट रखके ऊपरसे और आधा उपले भरकर अग्नि दे इसको गजपुट अथवा माहिषपुट कहते हैं ॥ ५३ ॥

वाराहपुटलक्षणम् ।

अरत्निमात्रे गर्त्ते यद्दीयते पूर्ववत्पुटम् ।
करीषाग्नौ तु तत्प्रोक्तं पुटं वाराहसंज्ञितम् ॥ ५४ ॥

हाथभरके गढेमें पूर्वोक्त रीतिसे आरने उपलोंकी अग्नि दे इसको वाराह पुट कहते हैं ॥ ५४ ॥

कुक्कुटपुटलक्षणम् ।

वितस्तिमात्रगर्त्ते यत्पुटयेत्तत्तु कौक्कुटम् ॥ ५५ ॥

बालिस्तभर चौडे और लंबे गढेमें उक्त विधिसे अग्नि देनेको कुक्कुटपुट कहते हैं ॥ ५५ ॥

कपोतपुटलक्षणम् ।

वितस्तिमात्रके गर्त्ते सप्तभिर्वाथ चाष्टभिः ।
वन्योपलैः पुट दत्त तत्तु कापोतसंज्ञितम् ॥ ५६ ॥

बालिस्तभरके गढेमें सात अथवा आठ उपलोंकी अग्नि दीजाय तो उसे कपोत-पुट कहते हैं ॥ ५६ ॥

गोवरपुटलक्षणम् ।

चूर्णीकृतकरीषाग्नौ भूमावेव तु यत्पुटम् ।
दीयते तत्तु कृतिभिर्गोवरं समुदाहृतम् ॥ ५७ ॥

पृथ्वी पर उपलोंका महीन चूरा करके उस पर औषधियोंको रखे और उसको उपलोंके चूरेसे बंद कर अग्नि देवे यह गोवरपुट कहाताहै ॥ ५७ ॥

कुंभपुटलक्षणम् ।

मृद्घटे बहुरन्ध्राणि कृत्वांगुलिसमानि वै ।
चत्वारिंशत्ततस्तस्मिच्छीतमुल्मुकचूर्णकम् ॥ ५८ ॥
अर्द्धमापुरयित्वा च मुखे दद्याच्छरावकम् ।
कर्पटेन मृदालिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत् ॥ ५९ ॥
तस्मिन्नंगारकान्क्षिप्त्वा छायाशुष्कं च कारयेत् ।
निधाय त्रिदिनाच्छीतं गृहीत्वौषधिमाहरेत् ॥
एतत्कुंभपुटं ज्ञेयं कथितं शास्त्रदर्शिभिः ॥ ६० ॥

मिट्टीके घडेमें अंगुलीके बराबर चालीस छेद कर उस आधीमें कोयलोंका चूरा भरै, पीछे औषधि रखके उसका मुख शरावसे बंद करदे ऊपरसे कपडामिट्टी कर छायामें सुखावे आगके अंगारे डाल चूल्हे वा ईंटोंपर रख अग्नि देवे पीछे उतार कर तीन दिन शीतल होनेदे जब शीतल होजाय तब औषधियोंको निकाले इसे कुंभ पुट कहते हैं ॥ ५८-६० ॥

भांडपुटलक्षणम् ।

स्थूलभांडे तुषापूर्णे मध्ये मूषासमन्वितम् ।
वह्निना विहिते पाके तद्भांडपुटमुच्यते ॥ ६१ ॥

धानके तुषोंसे भरे बडे घडेके बीचमें मूषाको रक्खे पीछे अग्निसे यथा योग्य पाक करे । इसको भांडपुट कहते हैं ॥ ६१ ॥

वालुकापुटलक्षणम् ।

अधस्तादुपरिष्टाच्चचक्रिकाछाद्यते खलु ।
वालुकाभिः प्रतप्ताभिर्यत्रतद्वालुकापुटम् ॥ ६२ ॥

ऊपर और नीचे वालूसे भर मूषामें औषधियाँ पकाई जावें तो उसे वालुकापुट कहते हैं ॥ ६२ ॥

भूधरपुटलक्षणम् ।

वह्निमित्राल्क्षितौ सम्यक् निखनेद् द्व्यंगुलादधः ।
उपरिष्टात्पुटं यत्र पुटं तद्भूधराह्वयम् ॥ ६३ ॥

भूमिको दो अंगुल या चार अंगुल खोदके उस पर संपुट रखै ऊपरसे पुट देकर आग सुलगावै इसे भूधर पुट कहते हैं । कोई एक हाथभर गहरा चौडा गढा खोदकर [illegible] स्वच्छ करके उस गढेके मध्यमें एक और दो अंगुल या चार, छः अंगुलका गढा खोद उस छोटेसे गढेमें संपुट रख मिट्टीसे दबादे ऊपरसे जंगली उपले भर अग्नी देवे । शीतल होनपर निकाल ले इसे भूधर पुट कहते हैं ॥ ६३ ॥

लावकपुटलक्षणम् ।

ऊर्ध्वं षोडशिकासूत्रैस्तुषैर्वा गोवरैः पुटम् ।
यत्र तल्लावकाख्यं स्यात्सुमृदुद्रव्यसाधने ॥ ६४ ॥

मूसाके ऊपर आठ तोले कोयलेका चूर्ण अथवा तुष या उपलोंका पुट दिया जाय तो उसे लावकपुट कहते हैं यह पुट नरम वस्तु बनानेको उत्तम है॥ ६४ ॥

अनुक्तपुटमाने तु साध्यद्रव्यबलाबलात् ।
पुटं विज्ञाय दातव्यमूहापोहविचक्षणैः ॥ ६५ ॥

पुट देनेका प्रमाण और पुटका नाम जिस जगह नहीं लिखा उस जगह जिस द्रव्यमें पुट देनाहो उसके बलाबलका विचार करके पुट देवे, अर्थात् यदि नरम चीज होय तो कुक्कटादि पुट दे, और कठिन द्रव्यमें गजपुट महापुट आदि देने चाहिये ॥ ६५ ॥

उपलपर्यायाः ॥

पिष्टके छगणं छाणमुत्पलं चोपलं तथा ।
गिरिंडोपलसाठी च वराटी छगणाभिधाः ॥ ६६ ॥

उपल, पिष्टक, छगण, छाण, उत्पल, उपल, गिरिंड, उपलसाठी, तथा वराटी ये सब उपलोंके नाम कहे हैं ॥ ६६ ॥

अथ यंत्राध्यायः ।

अथ यंत्राणि वक्ष्यंते रसतंत्राण्यशेषतः ।
समालोक्य समासेन सोमदेवेन साम्प्रतम् ॥ ६७ ॥

इसके अनन्तर संपूर्ण रसग्रंथोंको देखकर सोमदेवजी संक्षेपसे यंत्रोंकी विधि कहते हैं ॥ ६७ ॥

यंत्रशब्दनिरुक्तिः ।

स्वेदादिकर्म निर्मातुं वार्त्तिकेन्द्रैः प्रयत्नतः ।
युज्यते पारदो यस्मात्तस्माद्यंत्रमिति स्मृतम् ॥ ६८ ॥

पारके स्वेदन आदि संस्कार करनके लिये जो मुनियोंसे बनाये गये हैं उन्हें यंत्र कहते हैं ॥ ६८ ॥

कवचीयंत्रम् ।

नातिह्रस्वां काचकूपीं न चातिमहतीं दृढाम् ।
वाससा कर्दमाक्तेन परिवृत्य समंततः ॥ ६९ ॥
संलिप्य मृदुमृत्स्नाभिः शोषयेद्रविरश्मिभिः ।
निधाय भेषजं तत्र मुखमाच्छादयेत्ततः ॥ ७० ॥
कठिन्या दृढया वापि पचेद्यत्तु विधानतः ।
कवचीयंत्रमेतद्धि रसादिपचने मतम् ॥ ७१ ॥

कांचकी शीशी मध्यम प्रमाणकी जो दृढ हो उसपर मुल्तानी मिट्टीसे कपड मिट्टी करके धूपमें सुखावे पीछे उसमें औषधियोंको भर उसका मुह बंद कर दे फिर वालुका यत्रादिम रखकर विधिपूर्वक पकावे, इस प्रकार कपडा चढीहुई शीशीको कवचीयंत्र कहते हैं । इससे पारद आदि पकाये जाते हैं गंधक जारणके समय गंधकका धूम निकलजानेपर मुख बंद करे पहलेही मुख बंद करनेसे शीशी फूट जाती है ॥ ६९–७१ ॥

दोलायंत्रम् ।

निबद्धं त्वौषधैः सूतं भूर्जे तु त्रिगुणाम्बरे ।
रसपोटलिकां काष्ठे दृढं बद्ध्वा गुणेन हि ॥ ७२ ॥
संधाय पूर्णकुंभांतः स्वावलंबनसंस्थिताम् ।
अधस्ताज्ज्वालयेद्वह्निं तत्तदुक्तक्रमेण हि ॥
दोलायंत्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनाख्यं तदेव हि ॥ ७३ ॥

औषधियुक्त पारा लेकर भोजपत्रसे लपटे पीछे त्रिगुणित कपडेकी पोटलीमें बांधे फिर एक या डेढ बालिस्तके छोटे काष्ठसे बांधकर घडेमें लटकादे और आधा घडा जल भरदे, फिर उस पोटलीको उसके भीतर इस प्रकार लटकावे कि उसका पेंदा पेंदीसे न मिले पीछे उस घडेको चूल्हे पर चढाकर उचित प्रमाणकी अग्नि दे इसको दोलायंत्र अथवा स्वेदनयंत्र कहते हैं ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

साम्बुस्थालीमुखे बद्धवस्त्रे स्वेद्यं निधाय च ।
विधाय पच्यते यंत्रे स्वेदनं तद्यथास्मृतम् ॥ ७४ ॥

अथवा पानी भरे पात्रके मुखपर कपडा बांधकर उसमें भाफ देने योग्य चीजको रख भाफ दे इसको स्वेदनयंत्र कहते हैं ॥ ७४ ॥

गर्भयंत्रम् ।

स्थलभांडस्य गर्भे तु इष्टिकां स्थापयेत्ततः ॥ ७५ ॥
पात्रं स्थाप्यं वेष्टिकोर्ध्वं द्रव्यं स्थूले च भांडके ।
पश्चान्मुखे चान्यभांडं घटिकासदृशं ददेत् ॥ ७६ ॥
साधु लेपं ततः कृत्वा जलं दत्त्वोर्ध्वपात्रके ।
अग्निं प्रज्वालयेन्मंदं तत्तन्नीरं पुनस्त्यजेत् ॥ ७७ ॥
पुनः शीतजलं दत्त्वा तप्तं चेत्तत्त्यजेत्पुनः ।
एवं कृते चोर्ध्वभांडे लग्नं तैलादिकं स्रवेत् ॥ ७८ ॥
अंतःस्थे सूक्ष्मपात्रे च तच्च ग्राह्यं प्रयत्नतः ।
गर्भयंत्रमिदं ख्यातं सुगंध्यर्कादिसाधने ॥ ७९ ॥

किसी बडे घडेकी पेंदीमें ईंट रख चूल्हेपर चढावे उसके ऊपर दूसरा पात्र रक्खे, इसके चारों ओर औषधि भरदे, पीछे घडेके मुखपर घडियाके समान पात्र रखके संधि बंद करे घडेके तले मंद २ आग जलावे मुखके ढक्कनमें जल भरदेवे जब वह जल गरम होजाय तब दूसरा शीतल जल भरदेवे इस तरह बार बार गरम पानी निकाल २ कर ठंढा पानी भरता रहे इस तरह करनेसे ऊपरके पात्रकी पेंदीमें भाफ जमती है वही ठंढा पानी ऊपर रहनेके कारण टपक २ कर भीतरके पात्रमें गिरती रहती है उसको सावधानीसे निकाल लेवे, इसको गर्भयंत्र कहते हैं इसके द्वारा सुगन्धित अर्क साधन करते हैं ॥ ७५–७९ ॥

प्रकारान्तरम् ।

गर्भयंत्रं प्रवक्ष्यामि पिष्टिकाभस्मकारकम् ।
चतुरंगुलदीर्घां तु त्र्यंगुलोन्मितविस्तराम् ॥ ८० ॥
मृन्मयीं तु दृढां मूषां वर्तुलं कारयेन्मुखम् ।
लवणं विंशतिभागो भाग एकस्तु गुग्गुलोः ॥ ८१ ॥
सुश्लक्ष्णं पेषयित्वा तु वारं वारं पुनः पुनः ।
मूषालेपं दृढं कृत्वा लवणाद्यं मृदादिभिः ॥ ८२ ॥
करीषतुषाग्निनाभूमौ स्वेदयेन्मृदु मानवित् ।
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा रसेन्द्रो भस्मतां व्रजेत् ॥ ८३ ॥

जिससे पारेकी पिष्टिका भस्म किया जाता है उस गर्भयंत्रको वर्णन करताहूं । चार अंगुल लंबी और तीन अंगुल चौडी मिट्टीकी मजबूत मूषा बनावे उसका मुख गोल हो तदनंतर बीस भाग नमक और एक भाग गुग्गुलको महीन पीसकर मूषापर पक्का लेप करे अर्थात् लवणादि युक्त मिट्टीमें पारेकी पिट्ठी रखकर मूषामें रक्खे फिर मूषाका मुख बंद कर लेप करदे पीछे भूमिमें गड्ढा खोदकर कंडे और भूसेकी आँचसे धीरे २ एक अथवा तीन दिन रात स्वेदन करे तो पारा भस्म हो जावे ॥ ८०–८३ ॥

हंसपाकयंत्रम् ।

खर्परं सिकतापूर्णं तत्कृतस्योपरि न्यसेत् ।
अपरं खर्परं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ८४ ॥
पंचक्षारैस्तथा मूत्रैर्लवणं च विडं ततः ।
हंसपाकाख्यमाख्यातं यंत्रं तद्वार्तिकोत्तमैः ॥ ८५ ॥

बालूसे भराहुआ एक बडा खपरा ले उसमें औषधियोंको रक्खै, ऊपरसे दूसरे खपरेसे मुखमें मुख मिलाकर खूब बंद करदे इस प्रकार पांचों क्षारोंमें मूत्रोंमें नमकोंमें तथा विडोंमें धीमी आगसे पकावे इस यंत्रको हंसपाक कहते हैं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

विद्याधरयंत्रम् ।

अधः स्थाल्यां रसं क्षिप्त्वा विदध्यात्तन्मुखोपरि ।
स्थालीमूर्ध्वमुखीं सम्यङ्निरुध्य मृदुमृत्स्नया ॥ ८६ ॥

ऊर्ध्वस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा चुल्ल्यामारोप्य यत्नतः ।
अधस्ताज्ज्वालयेद्वह्निं यावत्प्रहरपंचकम् ॥ ८७ ॥
स्वांगशीतात्ततो यंत्राद् गृह्णीयाद्रसमुत्तमम् ।
विद्याधराभिधं यंत्रमेतत्तज्ज्ञैरुदाहृतम् ॥ ८८ ॥

मिट्टीकी दो हंडियां ऐसी ले कि जो भीतरसे चिकनी हों एकमें घुटाहुआ डलीका सिंगरफ या घुटा हुआ पारा छोडकर दूसरी हांडीके मुखसे पेंदी मिलाकर बंद करदेवे और दोनोंका जोड मुलतानी मिट्टी और कपडेसे बंद करे और ऊपरकी हांडीमें पानी भर दे जब पानी गरम होजाय तब उसे निकाल कर दूसरा ठंढा पानी भर दे उन दोनोंको चूल्हे पर चढा नीचे अग्नि जला दे इस प्रकार पांच प्रहर अग्नि देवे फिर स्वांगशीतल होनेपर ऊपरकी हांडीमें लगा पारा यत्नसे निकाल लेवे यंत्रोंके जाननेवाले पुरुषोंने इसको विद्याधर यंत्र कहा है ॥ ८६–८८ ॥

लवणयंत्रम् ।

काचपात्रे वह्निसहे रसराजं निधाय वै ।
लवणापूरितेऽन्यस्मिन्पात्रे तद्वै विनिक्षिपेत् ॥ ८९ ॥
कठिन्या सन्धिमापूर्य दृढं वस्त्रेण वेष्टयेत् ।
एवं लवणनिक्षेपात्प्रोक्तं लवणयन्त्रकम् ॥ ९० ॥
अन्तःकृतरसालेपं ताम्रपात्रमधोमुखम् ।
लिप्त्वा मृल्लवणेनैव सन्धिं भाण्डतलस्य च ॥ ९१ ॥
तद्भाण्डं पूर्ववत्क्षारैरापूर्य विधिवत्पचेत् ।
एवं लवणयंत्रं स्याद्रसकर्मणि शस्यते ॥ ९२ ॥

किसी आतशी शीशीमें पारा रख कपडमिट्टी कर सुखाले फिर दूसरे बडे पात्रमें नमक भरदे । फिर कपड मिट्टीसे उस पात्रकी सन्धियोंको बन्द कर अच्छीतरह बांधदेवे इस प्रकार लवणको डालनेसे इसका नाम लवणयंत्र पडा है अथवा एक ताम्बेके पात्रमें पारेकी पीठी बना लेप करदे इस पात्रको अधोमुख कर किसी बडे ताम्रपात्रके बीचमें रख लवण और मिट्टीसे संधीलेप करदे फिर इस पात्रको नमकसे भरदे अथवा पारदयुक्त संपुटको लवणसे या किसी क्षारसे भरे पात्रके मध्यमें रख चूल्हेपर चढावे नीचे अग्नि जलावे इसको लवणयंत्र कहते हैं ॥ ८९–९२ ॥

डमरूयंत्रम् ।

यंत्रस्थाल्युपरि स्थालीं न्युब्जां दत्त्वा निरुध्यते।
यंत्रं डमरुकाख्यं तद्रसभस्मकृते हितम् ॥ ९३ ॥

किसी हांडीके मुखपर वैसीही दूसरी हांडीका मुख जोडदे जोडको मुल्तानी मिट्टीसे बंद करे इसको डमरूयंत्र कहते हैं। यह (यंत्र) पारेकी भस्म उडाने या सिंगरफसे पारा निकालनेके लिये श्रेष्ठ है ॥ ९३ ॥

सोमानलयंत्रम् ।

ऊर्ध्वं वह्निरधश्चापो मध्ये तु रससंग्रहः।
सोमानलमिदं प्रोक्तं जारयेद्गगनादिकम् ॥ ९४ ॥

जिसके ऊपर अग्नि नीचे जल और बीचमें रस इत्यादि रक्खे जावें वह सोमानल यंत्र कहाता है इसके द्वारा पारदमें अभ्रकादि जारण किये जाते हैं ॥ ९४ ॥

ऊर्ध्वनलिकायंत्रम् ।

भांडकंठादधश्छिद्रे वेणुनालं विनिःक्षिपेत् ।
समानकरकां वापि भांडवक्त्रे निवेशयेत् ॥ ९५ ॥
संधिं लिप्त्वा च नालाग्रे काचभांडं निधापयेत्।
अधस्तात्प्रस्वेद्धारि टंकयंत्रमिति स्मृतम् ॥ ९६ ॥

कोई पक्का घडा लेकर उसके गलेमें छेद करके उस छेदमें बांस या नरसलकी सीधी पोली नली लगादे और मुखपर उतनाही बडा ढकना रखकर लेप करदे नलीके मुखके नीचे काँचका बर्त्तन रक्खे फिर उस घडेको भट्टीपर रख नीचे अग्नि जलावे तो अग्निके ऊपरवाले बरतनसे औषधियोंका अर्क खिंच खिंचकर दूसरे पानीवाले बरतनमें आवेगा उसको टंकयंत्र कहते हैं इस यंत्रसे नाना प्रकारके अर्क खींचे जासकते हैं ॥ ९५ ॥ ९६ ॥

वालुकायंत्रम् ।

भांडे वितस्तिगंभीरे मध्ये निहितकूपिके ।
कूपिकाकंठपर्यंतं वालुकाभिश्च पूरिते ॥ ९७ ॥
भेषजं कूपिकासंस्थं वह्निना यत्र पाच्यते ।
वालुकायंत्रमेतद्धि यंत्रविद्भिः प्रकीर्त्तितम् ॥ ९८ ॥

एक बालिस्तभर गहरा; जिसका मध्यभाग हो ऐसी एक बडी हांडी लेकर उसके तलेमें एक छिद्र कर उसपर ठीकरी रक्खे जिसके दोनों तर्फ छेद रहे उसमें कपडमिट्टी की हुई आतशी शीशी रख उस पात्रमें बालू भरकर चूल्हेपर चढावे थोडी आंच लगने उपरान्त जब गंधक उडले तब शीशीका मुख बंद कर नीचे अग्नि जलावे इसको यंत्रवेत्ता पुरुष बालुकायंत्र कहते हैं कोई हांडीमें विना छिद्र कियेही शीशी रख हांडीको बालुसे भरना ठीक समझते हैं ॥९७॥९८॥

भूधरयंत्रम् ।

बालुकासु समस्तांगं गते मूषारसान्विता ।
दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यंत्रं भूधरनामकम् ॥ ९९ ॥

मूषामें पारा भरके बंद करे उसको बालूमें दबाकर बालूके ऊपर जंगली कंडोंकी आग जलावे इसको भूधरयंत्र कहते हैं ॥ ९९ ॥

पातालयंत्रम् ।

हस्तप्रमाणं निम्नं च गर्त्तं कृत्वा प्रयत्नतः ।
तस्मिन्भांडं च संस्थाप्य तथान्यत्पात्रमाहरेत् ॥ १०० ॥
तस्मिन्नोषधवर्गं च दत्त्वाऽन्यच्च शरावकम् ।
मुखे संस्थाप्य छिद्राणि कृत्वा चैव शरावके ॥ १०१ ॥
शरावसहितं पात्रं गर्त्तस्थं भाजने न्यसेत् ।
संधिलेपं ततः कृत्वा गर्त्तमापूर्य मृत्स्नया ॥ १०२ ॥
पश्चादग्निं च प्रज्वाल्य स्वांगशीतं समुद्धरेत् ।
पश्चात्तत्पात्रमध्यस्थं पात्रं युक्त्वा समाहरेत् ॥ १०३ ॥
तदंतःस्थं च तत्तैलं गृह्णीयाद्विधिपूर्वकम् ।
पातालाख्यमिदं यंत्रं भाषितं शंभुना स्वयम् ॥ १०४ ॥

हाथभर गढा खोदे उसमें बडे मुंहका बरतन रक्खे फिर दूसरे बरतनमें औषधि रख ऊपर छेदवाला शराव ढकदे फिर उस शराव समेत गढेवाले पात्रके ऊपर उलटा रक्खे जिससे दोनोंका मुख मिलजावे फिर जोडको लीपकर उस गढेको मिट्टीसे भरकर ऊपर अग्नि जलादेवे तो शरावके छेदसे तेल या अर्क खिंचकर नीचेके पात्रमें गिरेगा पीछे स्वांगशीतल होनेपर तेल वा अर्कके पात्रको युक्तिसे निकाल लेवे शिवजीने यह पातालयंत्र कहा है ॥ १००-१०४ ॥

दीपिकायंत्रम् ।

कच्छपयंत्रान्तर्गतमृन्मयपीठस्थदीपिकासंस्थः ।
तस्मिन्निपतितसूतः प्रोक्तं तद्दीपिकायंत्रम् ॥ १०५ ॥

दीपिका (दीवट) यंत्र यह कच्छप यंत्रकाही एक भेद है, इसके बनानेकी विधि यह है मिट्टीकी चौकीपर दीवट रख उसपर युक्तिपूर्वक यंत्रको रक्खे तौ नीचेसे दीपाग्नि और ऊपरसे साक्षात् अग्नि जलावे तो बीचमें जलमें रहे हुए पारेक संस्कार होगा यह दीपिकायंत्र कहाता है ॥ १०५ ॥

तेजोयंत्रम् ।

भांडे चार्द्धप्रमाणेन द्रव्यं स्थाप्य प्रयत्नतः ।
तन्मुखे द्विनलीयंत्रं संस्थाप्य च निरोधयेत् ॥ १०६ ॥
पश्चान्मंदाग्निमुज्ज्वाल्य जलं दत्त्वोर्द्धपात्रके ।
तत्तप्तनलिकाद्वारा निःसार्य च पुनः पुनः ॥ १०७ ॥
नीचस्थनालिका वक्त्रे भांडं स्थाप्यं द्वितीयकम् ।
तस्मिन्नर्क च पतितं गृह्णीयात्तु विशेषतः ॥ १०८ ॥
तेजोयंत्रमिति ख्यातं तथान्यैर्लवकं मतम् ॥ १०९ ॥

जिस चीजका अर्क निकालना हो उसको किसी बडे बरतनमें रखकर उसको आधा उस चीजसे भर उसके ऊपर दो नलीका यंत्र रक्खे और जोड बंद कर नीचे धीमी आँच जलावे और ऊपरके पात्रमें पानी भरदे जब पानी गरम होजाय तब उसे नलीद्वारा निकाल डाले इसा प्रकार जब २ पानी गरम हो तब २ निकालता रहे नलीके मुखनीचे एक बरतन रखदे उसमें सब अर्क खिंचकर इकट्ठा होजायगा। इसका नाम तेजोयंत्र है और कोई इसको लवकयंत्र भी कहते हैं ॥ १०६--१०९ ॥

कच्छपयत्रम् ।

खर्परं पृथुकं सम्यग् विस्तारं तस्य मध्यतः ।
आलवालं पुटे कृत्वा तन्मध्ये पारदं क्षिपेत् ॥ ११० ॥
ऊर्द्धाधस्तु विडं दत्त्वा मल्लेनारुध्य यत्नतः ।
ऊर्ध्वं देयं पुटं तस्य यंत्रं कच्छपसंज्ञकम् ॥ १११ ॥
जारणार्थं रसस्योक्तं गंधादीनां विशेषतः ॥ ११२ ॥

जिसका दल मोटा हो और मध्यसे खुला विस्तार हो ऐसे बडे खपरे या तौलेके मध्यमें आलवालसा बनाकर उसमें पारद भरदेवे, पारदके ऊपर नीचे विडं रक्खै पश्चात् मल्ल (ढकने) से ढककर बंद करे उसके ऊपर अग्निका पुटदे, पारेमें गंधक तथा अभ्रकसत्त्वादि जारण करनेके लिये कच्छपयंत्र कहा है॥११०–११२॥

जारणयंत्रम् ।

लोहमूषाद्वयं कृत्वा द्वादशांगुलमानतः ।
ईषच्छिद्रान्वितामेकां तत्र गंधकसंयुताम् ॥ ११३ ॥
मूषायां रसयुक्तायमान्यस्यां तां प्रवेशयेत् ।
तोयं स्यात्सूतकस्याध ऊर्ध्वाधो वह्निदीपनम् ॥ ११४ ॥
रसोनकरसं भद्रे यत्नतो वस्त्रगालतम् ।
दापयेत् प्रचुरं यत्नादाप्लाव्य रसगंधकौ ॥ ११५ ॥
स्थालकायां पिधायोर्ध्वं स्थालीमन्यां दृढां कुरु ।
संधिं विलेपयेयत्नान्मृदा वस्त्रेण चैव हि ॥ ११६ ॥
स्थाल्यन्तरे कपोताख्यं पुटं कर्षाग्निना सदा ।
यंत्रस्याधः करीषाग्निं दद्यात्तीव्राग्निमेव वा ॥ ११७ ॥
एवं तु त्रिदिनं कुर्यात्ततो यंत्रं विमोचयेत् ।
ततोदके तप्तचुल्ल्यां न कुर्याच्छीतले क्रियाम् ॥ ११८ ॥
न तत्र क्षीयते सूतो न च गच्छात कत्रचित् ।
अनेन च क्रमेणव कुर्याद्गंधकजारणम् ॥ ११९ ॥

लोहेके दो मूषा बारह २ अंगुलके बना, एकमें थोडा छेद कर उसमें गंधक भरदे, फिर दूसरे मूषामें पारद रखके गंधकवाली मूषामें प्रवेश करदेवे, पारदके नीचे जल रक्खे फिर एक बडी हांडी लेकर उसके भीतर पारे गंधकवाली मूषा-ओंको रखके कपडेसे छाने हुए लहसनके रससे पारे और गंधकको अच्छी तरह डुबा देवे ऊपर दूसरी हांडीसे हांडीका मुख बंद करदे, दोनों हांडियोंके मुखमें कपडमिट्टी लगाकर संधिको मजबूतीसे बंद करे फिर एक और बडे पात्रमें जंगली उपले डाल अग्नि देकर उस उपलोंकी अग्निवाल पात्रमें उपरोक्त संपुट रख भीतर कपोतपुटकी विधिसे आँच दे, अथवा उस हाँडीके नीचे जंगली कंडोंकी तेज आँच दे

अथवा लकडीकी तेज अग्नि देवे। इस रीतिसे तीन दिन करके चौथे दिन हंडी शीतल हो जानेपर यंत्रको खोले इस क्रियासे पारा कम नहीं होता और उडकर बाहर भी नहीं जाताहै इसी रीतिसे पारेमें गंधकका जारण करना चाहिये ॥ ११३-११९ ॥

तुलायन्त्रम् ।

वृन्ताकारमूषे द्वे तयाः कुर्यादधः खलु ।
प्रादेशमात्रां नलिकां मृदा लिप्त्वा सुगंधिकाम् ॥ १२० ॥
तत्रैकस्यां क्षिपेत्सूतमन्यस्यां गंधचूर्णकम् ।
निरुद्धय मषयोर्वक्त्रं वालुकायंत्रके क्षिपेत् ॥ १२१ ॥
गंधाधोज्वालयेदग्निं तुलायंत्रसुदाहृतम् ।
तालगंधाश्मसाराणां जारणार्थमुदाहृतम् ॥ १२२ ॥

बैंगनके स्वरूपके दो मूषे बनावे उनके नीचे अंगूठेसे लेकर तर्जनीतक लंबी नली बनावे उन दोनोंम अच्छी तरह मिट्टीका लेप करे फिर एक मूषामें पारद दूसरीमें गंधकका चूण भरकर दोनोंका मुख जोडकर मिट्टास संधि बंद करके वालुकायंत्रमें रखके गंधकके मूषाक नीचे अग्नि जलावे इसको तुलायंत्र कहते हैं इससे हरिताल गंधक और लोहोंका पारदमें जारण होताहै ॥ १२०-१२२ ॥

जलयंत्रम् ।

उपर्यधस्तले तापो मध्ये च रसगंधकौ ।
जलयंत्रमिदं गोप्यं श्रेष्ठं यंत्रं समीरितम् ॥ १२३ ॥
अस्मिन् स्वर्णादिभूसत्त्वं गंधकादिं च जारयत् ।
कृत्वा लोहमयीं पात्रीमधोमुखसमन्विताम् ॥ १२४ ॥
मुखमध्य क्षिपेद्द्रव्यं पात्रवक्त्रं निरोधयेत् ।
लोहचाक्रिकया रुद्धा तत्संधिं साधु लेपयेत् ॥ १२५ ॥
तस्मिन् कोष्टेक्षिपेदस्त्रं छागं लोहरजोन्वितम् ।
पुनः पुनश्च संशुष्के पुनरेभिश्च लेपयेत् ॥ १२६ ॥
लोहवत्तच्च बब्बूलक्वाथन परिमर्दितम् ।
जीर्णेष्टिकारजःसूक्ष्मगुडचूर्णसमन्वितम् ॥ १२७ ॥

लेपयेत्खलु तत्प्रोक्तं दुर्भेद्यं सलिलैः खलु ।
खटिकां पटुकिट्टैश्च महिषीदुग्धमर्दितैः ॥ १२८ ॥
यत्तया मृत्स्नया रुद्धो न गंतुं क्षमते रसः ।
विदग्धवनिताप्रौढप्रेम्णा बद्धः पुमानिव ॥ १२९ ॥
ततो जलं विनिक्षिप्य वह्निं प्रज्वालयेदधः ।
अथवा कारयेन्मूषां पात्रलग्नामधोमुखीम् ॥ १३० ॥
लोहानामनुरूपां च तन्मूषामुखरोधिनीम् ।
दत्त्वा चान्यां तयोः सधिं विलेप्याजासृगादिभिः ॥ १३१ ॥
जलमूर्ध्वं विनिक्षिप्य निस्संदेहं विपाचयेत् ।
जलयंत्रं तु बहुभिर्दिनैरेव हि जायते ॥ १३२ ॥

जिसके ऊपर जल नीचे अग्नि बीचमें पारा और गंधक रखकर पकाया जावे उसको जलयंत्र कहते हैं यह सबके पास प्रकाश करनेका नहीं है इससे सुवर्ण, अभ्रकका सत्त्व, गंधक, आदिकोंका जारण करे। इसके बनानेकी यह विधि है कि लोहेका एक बडा बरतन बनावे उसका मुख नीचेको रहे उसमें पारा आदि द्रव्य भरके उसका मुख लोहेकी टिकियासे ढकदे और उसके जोडोंको बंद कर संधियोंपर बकरेके रुधिरमें सानकर लोहेका चूर लगावे उसे बार २ सुखा २ कर लेप करे पश्चात् पुरानी ईंटका बारीक चूर्ण और गुडको बबूलके काढेमें घोटकर लेप करे इसको जल नहीं भेद सकता, और उसपर खडिया मिट्टी नमक और लोहेके चूरेको भैंसके दूधमें खरल कर लेप करे तो पारा इस मुद्राको नहीं छोडेगा जैसे चतुर युवतीके प्रेममें फँसा मनुष्य उसे छोडकर नहीं जासकता पीछे ऊपर जल भरकर नीचे अग्नि जलावे अथवा बरतनसे मिलीहुई नीचेको मुखवाली मूषा बनावे उसपर पत्र जमाकर उसका मुख बंद करे और ऊपर जल भरकर अग्निपर पकावे यह जलयंत्र बहुत दिनोंमें ठीक होताहै ॥ १२३–१३२ ॥

धूपयंत्रम् ।

विधायाष्टांगुलं पात्रं लौहमष्टांगुलोच्छ्रयम् ।
कंठाधो द्व्यंगुले देशे जलाधारं हि तत्र च ॥ १३३ ॥
तिर्यग्लोहशलाकाश्च तन्वीस्तिर्यग्विनिःक्षिपेत् ।

तनूनि स्वरपत्राणि तासामुपरि विन्यसेत् ॥ १३४ ॥
पात्राधो निक्षिपेद्धूमं वक्ष्यमाणमिहैव हि ।
तत्पात्रं न्युब्जपात्रेण च्छादयेदपरेण हि ॥ १३५ ॥
मृदा विलिप्य संधिं च वह्निं प्रज्वालयेदधः ।
तेन पत्राणि कृष्णानि हतान्युक्तविधानतः ॥ १३६ ॥
रसश्चरति वेगेन द्रुतं गर्भे द्रवंति च ।
गन्धालकशिलानां हि कज्जल्या वा मृताहिना ॥ १३७ ॥
धूपनं स्वर्णपत्राणां प्रथमं परिकीर्तितम् ।
तारार्थं तारपत्राणि मृतवंगेन धूपयेत् ॥ १३८ ॥
धूपयेच्च यथायोग्यैरन्यैरुपरसैरपि ।
धूपयंत्रमिदं प्रोक्तं जारणाद्रव्यसाधनम् ॥ १३९ ॥

जिसके गलेके दो अंगुल नीचे पानी रहे ऐसा आठ अंगुल लंबा और उतनाही चौडा लोहेका पात्र लेवे फिर एक पतली लोहेकी सलाई लेकर आडी डाल देवे उसके ऊपर महीन सोनेके वर्क रक्खे और उनके नीचे धूआं करे और एक औंधे पात्रसे उस पात्रको ढक कर कपडामिट्टीसे उनके जोड बंदर करदेवे और नीचे आग जलावे तौ उस आगसे धुआं उठकर उन सोनेके वर्कोंको काले बनावेगा और मारेगा इस क्रियासे पारद सोनेको खाय जाता है यह खाया हुआ सुवर्ण पारेमें तत्काल जाण होजाता है । अथवा गंधक हरताल मैनाशिलकी कज्जली और मारेहुए शीशेकी धूनी देवे यह सुवर्णके पत्रोंकी पहली धूनी कही है अगर चांदीके पत्रोंमें धूनी देनी होय तो मारे हुए बंगकी देवे इसी प्रकार दूसरे उपरसोंसे यथायोग्य धूनी देवे यह धूपयंत्र जारण द्रव्यके साधनके लिये कहाहै॥१३३–१३९॥

स्थालीयंत्रम् ।

स्थाल्यां ताम्रादिनिक्षिप्य मल्लेनाऽऽस्यं निरुध्य च ।
पच्यते स्थालिकाधस्थस्थालीयंत्रमितीरितम् ॥ १४० ॥

किसी स्थालीमें तांबा आदि द्रव्य डालके मल्लसे उसका मुख बंद करदे उसके नीचे अग्नि जलाकर पकावे इसको स्थाली यंत्र कहते हैं ॥ १४० ॥

गौरीयंत्रम् ।

गौरियंत्रं प्रवक्ष्यामि सुखदं जारणाविधौ ।
कृत्वा चाष्टांगुलोच्छ्रायां चतुरस्रां समेष्टिकाम् ॥ १४१ ॥
स तु नागात्समुत्कृत्य मध्ये चूर्णेन लेपयेत् ।
श्लक्ष्णां रसकृतां पिष्टिं कृत्वा प्राग्वद्धताभ्रजाम् ॥ १४२ ॥
रूप्यजां हेमजां वापि सत्त्वेनापि विनिर्मिताम् ।
निवेश्य तत्र चोर्ध्वाधो वलेश्चूर्णं पिधाय च ॥ १४३॥
तस्याःपिष्टयाश्चतुर्थांशं वारंवारं विशोषयेत् ।
वक्के खर्परचक्रीं तु दत्त्वा लिप्य विशोष्य च ॥ १४४ ॥
ऊर्ध्वं हयखुराकारं पुटं दद्याल्लघूपलैः ॥ १४५ ॥

जारण कर्ममें जिसका विशेष काम पडता है ऐसे सुख देनेवाले गौरीयंत्रको कहता हूं आठ अंगुल लंबी चौकोन ऊंची और सीधी ईट लेकर उसके बीचमें गड्ढा बनावे उसको कांचसे साफकर चूनेका लेप करे पीछे अभ्रकके सत्त्व अथवा सोने और चांदीके बर्फोंमें घोटी हुई पारेकी पिष्ठीको उक्त ईटके गढेमें भरकर ऊपर और नीचे गंधकका चूरा बिछावे, वह चूरा पारेका चतुर्थांस लेवे पीछे गढेके मुखपर खपरेकी ठीकरी रखके जोडोंको लप देवे और सुखावे उसके ऊपर घोडेके खुरके समान वनके उपलोंकी आंच देवेयह गौरीयंत्र कहाता है॥ १४१–१४५॥

कोष्ठीयंत्रम् ।

हस्तप्रमाणं दीर्घारमष्टसंख्यांगुलं तिर्यक् ।
समभूभागे घटितं वृत्तं मृत्कर्मसंपन्नम् ॥ १४६ ॥
वातायनद्विवृत्तं भस्त्रीमुखतुल्यधोभागे ।
प्रधमेत्शुवसानालैर्भस्त्राभिर्वाऽभ्रसत्त्वार्थम् ॥ १४७ ॥

एक हाथ लंबी चार अंगुल चौडी आठ अंगुल तिरछी एक लकडी लेवे वह ऊपरसे नमी हुई हो उसको सम भूमिपर रख भीगी हुई गाढी मिट्टी उसपर चढावे और सुन्दर गोल दो मुख बनावे उनमें नीचेका मुख छोटा बनावे पीछे सावधानीसे अचक लकडीको निकाल लेवे पीछे धूपमें सुखाकर मिट्टी व अँगीठीमें छेदकर उस कोष्ठिकाको अच्छे प्रकार रखदे और उसके पीछेके हिस्सेमें पशुके चर्म्मकी नाल

अथवा धोंकनी बांधकर मिट्टीमें कोयले डाले यह अभ्रकआदिके सत्त्व निकालने तथा धातुओंको तपाने व पिघलानेमें उपयोगी होती है कोयलेमें आग धरके खूब धोंके यह कोष्ठीयंत्र कहाता है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

द्वितीयकोष्ठीयंत्रम् ।

कृत्वा खल्वाकृतिं चुल्लीमङ्गारैः परिपूरिताम् ।
तस्यां निवेशितं खल्वं पार्श्वे भस्त्रिकया धमेत् ॥ १४८ ॥
रसेन मर्दिता पिष्टिः क्षारैरम्लैश्च संयुता ।
प्रद्रवत्यतिवेगेन स्वेदिता नात्र संशयः ॥ १४९ ॥
कृतः कांतायसासोऽयं भवेत्कोटिगुणो रसः ॥ १५० ॥

खरलके समान चूल्हा बनाकर उसको अंगारोंसे भर देवे उसके ऊपर खरल रख वगलकी तरफ धोंकनीसे धौंकनेसे रससे खरल की हुई पिट्ठी खार और खटाई सहित इस यंत्रकी आंचसे स्वेदन करनेसे तुरत पतली होजाती है जो इसे कान्त पाषाणका बनावे तो वह पारेको करोडों गुण देनेवाला बना देता है यह दूसरे प्रकारका कोष्ठीयंत्र है ॥ १४८–१५० ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

तृतीयं कोष्ठीयंत्रम् ।

षोडशांगुलविस्तीर्णा हस्तमात्रायता समा ।
धातुसत्त्वनिपातार्थं कोष्ठिका परिकीर्त्तिता ॥ १५१ ॥
वंशखादिरमाधूकबदरीदारुसंभवैः ।
परिपूर्णा दृढांगारैरधे वातेन कोष्ठके ॥ १५२ ॥
भस्त्रयारन्तमार्गेण ज्वालयेच्च हुताशनम् ॥ १५३ ॥

सोलह अंगुल बडा एक हाथ लंबा समान कोष्ठिकायंत्र कहाहै बांस खैर महुवा तथा बेरकी लकडीके कोयलोंसे उसको भरकर नीचेके मार्गमें धौंकनीके धमानेसे आग प्रज्वलित करे इसको कोष्ठिकायंत्र अर्थात् धौंकनी कहते हैं ॥ १५१–१५३ ॥

पुटयंत्रम् ।

शरावसंपुटान्तस्थं करीषेष्वाग्निमानवित् ।
पचेच्चुल्ल्यां द्वियामं वा रसं तत्पुटयंत्रकम् ॥ १५४ ॥

दोसकोरोंको लेवे एकमें रसको भरकर ऊपर दूसरा सकोरेको रखके शरावसंपुट करे तथा पांच अथवा सात कपडमिट्टी करे चूल्हेमें रखकर आरने उपलोंकी आग जलायकर दो प्रहर तक पकावे वैद्य आंचके प्रमाणको जाननेवाला होना चाहिये यह पुटयंत्र कहाताहै ॥ १५४ ॥

पालिकायंत्रम् ।

चषकं वर्त्तुलं लौहं विनताग्रोर्ध्वदंडकम् ।
एतद्धि पालिकायंत्रं वह्निजारणहेतवे ॥ १५५ ॥

लोहेका गोल प्यालासा जिसके ऊपर भागमें नमा हुवा दण्ड लगाहो बनावे जारणके लिये यह पालिकायंत्र कहाहै ॥ १५५ ॥

इष्टिकायन्त्रम् ।

मध्येगर्त्तसमायुक्ताभिष्टिकां कारयेद्भिषक् ।
गर्ते चैव समे श्लक्ष्णे तस्यां सूतादिक न्यसेत् ॥ १५६ ॥
दत्त्वोपरि शरावं च संधिं मृल्लवणैर्लिपेत् ।
तदूर्ध्वं सिकतां किंचिद्दद्याद्देयं पुटं लघु ॥ १५७ ॥
इष्टिकायंत्रमेतद्धि जारयेद्गंधकादिकम् ॥ १५८ ॥

जिसके बीचमें खढी बनाया हो ऐसी ईंटमें पारे आदिको भरकर उसका मुख शरावसे बंद करदेवे और उसके जोडोंको नमक और मिट्टीसे बंद कर पीछे एक गढा खोद उसमें ईंटको रख ऊपरसे चारों ओर थोडी वालु बुरकदे फिर ईंटपर किंचित् अग्निका पुट देवे गंधक आदिके जारण करनेके लिये यह इष्टिकायंत्र कहाता है ॥ १५६-१५८ ॥

बकयंत्रम् ।

दीर्घकंठ्यां काचकुप्यां गिलयेत्काचभांडकम् ।
तिर्यक् कृत्वा पचेच्चुल्ल्यां बकयंत्रमिदं स्मृतम् ॥ १५९ ॥

लंबी गलेवाली कांचकी शीशीमें एक दूसरी शीशीको डाले और तिरछी करके चूल्हेपर पकावे यह बकयंत्र कहाता है ॥ १५९ ॥

नाडिकायंत्रम् ।

विनिधाय घटे द्रव्यं कनीयांसमधोमुखम् ।
घटमन्यं मुखे तस्य स्थापयित्वा द्वयोर्मुखम् ॥ १६० ॥

मृदुमृद्भिः समालिप्य नाडिकां विनिवेशयेत् ।
यंत्रात्कुंडलितां भित्त्वा जलद्रोणीं महत्तमाम् ॥ १६१ ॥
आधारभांडपर्यंतं ततश्चुल्ल्यां विधारयेत् ।
अधस्ताज्ज्वालयेद्वह्निं यावद्बाष्पो विशेदधः ॥ १६२ ॥
गृह्णीयादाधारगतं निर्मलं रसमुत्तमम् ॥ १६३ ॥

किसी घडेमें पदार्थ भर, दूसरा छोटा पात्र आधा उसके मुखपर रखके दोनोंके मुख चिकनी मट्टीसे बंद करदे पीछे उस यंत्रमें एक नाल लगाकर दूसरे पात्रमें डालदे फिर उस पात्रको दूसरे जलयुक्त आधारपात्रमें रख पीछे पूर्वोक्त यंत्रको चूल्हेपर चढा नीचे अग्नि जलावे तौ अग्निके ऊपरवाले घडेका पदार्थ भाफरूप होकर नलके रस्ते दूसरे पात्रमें इकट्ठा होजायगा फिर शीतल हुए निर्मल अर्कको सावधानीसे निकाल लेवे इस यंत्रके द्वारा अर्क निकाले जाते हैं इसे नाडिकायंत्र कहते हैं ॥ १६०-१६३ ॥

वारुणीयंत्रम् ।

ऊर्ध्वतोयसमायुक्तं जलद्रोणीविवर्जितम् ।
तोयसंवेष्टिताधारमृजुनाडीसमन्वितम् ॥ १६४ ॥
यंत्रं तद्वारुणीसंज्ञं सुरासाधनकर्मणि ॥ १६५ ॥

नाडिका यंत्रमें टेढी नाल होती है और समीप जल द्रोणी रहती है परंतु जिसमें यह न हो केवल ऊपर रखा पात्रही रहे वह वारुणीयंत्र कहाता है इसका नल सीधा होता है आधारभूत पात्र रहता है इसके द्वारा शराब निकाली जाती है ॥ १६४ ॥ १६५ ॥

द्वितीयः प्रकारः ।

बीजद्रव्यं घटे दत्त्वा संछाद्यान्येन तन्मुखम् ।
मृदा मुखं विलिप्याथ नाडीं वंशादिसंभवाम् ॥ १६६ ॥
यंत्रादाधारगां कृत्वा स्रावयेद्विधिना रसम् ।
वारुणीयंत्रमेतद्धि सुरासंसाधने शुभम् ॥ १६७ ॥

दूसरा वारुणीयंत्र कहते हैं शराब निकालने योग्य एक घडा लेवे उसमें शराब निकालने योग्य द्रव्य डालके उसका मुख किसी छोटे पात्रके मुखसे मिलाकर

बंद करे जोडोंको मुल्तानी मिट्टीसे ल्हेसदे पीछे उसमें बांसकी नाल लगा आधार पात्रसे मिलादे उस आधार पात्रके नीचे ठंढा पानी भरा रक्खे इस प्रकार बना हुवा वारुणीयंत्र मद्य बनानेको शुभ है ॥ १६६ ॥ १६७ ॥

तिर्यक्पातनयंत्रम् ।

घटे रसं विनिक्षिप्य सजलं घटमन्यकम् ।
तिर्यङ्मुखं द्वयोः कृत्वा तन्मुखं रोधयेत्सुधीः ॥ १६८ ॥
रसाधो ज्वालयेदग्निं यावत्सूतो जलं विशेत् ।
तिर्यक्पातनमित्युक्तं सिद्धैर्नागार्जुनादिभिः ॥ १६९ ॥

किसी घडेमें पारा रखके दूसरा जलयुक्त घडा लेवे दोनोंको तिरछे रक्खे, उनके मुख मिला संधि भले प्रकार बंद करे पारेवाले घडेके तले अग्नि जलावे अग्निके प्रभावसे पारा उडकर जलवाले घडेमें प्रवेश करेगा, नागार्जुन आदि सिद्धोंने इसको तिर्यक्पातन यन्त्र कहा है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

नलिकायंत्रम् ।

Indira Gandhi National Centre for the Arts

लोहनालगतं सूतं भांडे लवणपूरिते ।
विरुद्धं विपचेत्प्राग्वन्नालिकायंत्रमीरितम् ॥ १७० ॥

किसी लोहेकी नलीमें पारा भरकर नमक भरे हुए दूसरे पात्रमें खडा कर बंद करदे और लवणयंत्रके समान पकावे यह नलिकायंत्र कहाता है ॥ १७० ॥

कंदुकयंत्रम् ।

स्थूलस्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा वासो वध्वामुखे दृढम् ।
तत्र स्वेद्यं विनिक्षिप्य तन्मुखं प्रणिधाय च ॥ १७१ ॥
अधस्ताज्ज्वालयेदग्निं प्रोक्तं कंदुकयंत्रकम् ।
स्वेदनीयंत्रमितिहि प्राहुरन्ये मनीषिणः ॥ १७२ ॥
यद्वा स्थाल्यां जलं क्षिप्त्वा तृणं तृणोपरि तथा ।
स्वेदद्रव्यं परिक्षिप्य पिधानं प्रविधाय च ॥ १७३ ॥
अधस्ताज्ज्वालयेद्वह्निं यंत्रं तत्कन्दुयंत्रकम् ॥ १७४ ॥

किसी बडी हांडीमें जल भरक उसके मुखको कपडेसे मजबूत बांध देवे उस

जलावे इसको कंदुकयंत्र कहते हैं और कोई पंडित इसको स्वेदनीयंत्र कहते हैं अथवा हांडीमें पानी भरके घास बिछावे उसपर स्वेदन द्रव्यको रख उसके मुखको ढकदेवे और उस यंत्रके नीचे अग्नि जलावे इसे कंदुकयंत्र कहते हैं ॥१७१-१७४॥

जलहारियंत्रम् ।

एतस्याज्जलहार्यंत्रं रसषाड्गुण्यकारणम् ।
सूक्ष्मकान्तमये पात्रे रसस्याद्गुणवत्तरः ॥ १७५ ॥

रसमें षड्गुण गंधक जारणके वास्ते कोष्ठीयंत्रका दूसरा भेद यह जलहारियंत्र है यह सूक्ष्म कान्तलोहका बनाना चाहिये, इसमें यदि पारदमें गंधक आदि जारण किये जाँय तो पारद विशेष गुणवाला होता है ॥ १७५ ॥

अर्द्धचन्द्रखरलम् ।

उत्सेधे सदशांगुलः खलु कला तुल्याङ्गुलायामवा-
न्विस्तारेण दशांगुलो सुनिमितैर्निम्नस्थितैर्वाऽगुलैः ।
पाल्या द्वयंगुलविस्तरश्च मसृणोऽतीवार्द्धचन्द्रोपमो
घर्षो द्वादशकांगुलश्च तदयं खल्वो मतः सिद्धये ॥ १७६ ॥
अस्मिन्पञ्चपलः सूतो मर्दनीयो विशुद्धये ।
तत्तदौचित्ययोगेन खल्वेष्वन्येषु योजयेत् ॥ १७७ ॥

दश अंगुल ऊंचा, सोलह अंगुल लंबा और दश अंगुल गहरा खरल हो, उसकी पाली दो अंगुल चौडी व चिकनी हो, आकार उसका आधे चन्द्रमाके समान हो और बारह अंगुल लंबी मूसली होनी चाहिये ऐसा खरल पारेकी सिद्धिके लिये कहा है ऐसे खरलमें पांच पल पारेका मर्दन उसकी शुद्धिके लिये करे इसी प्रकार जहां २ जैसा खरल लेना उचित होय वैद्यको वैसा लेना चाहिये॥ १७६॥१७७॥

वर्तुलखल्वम् ।

द्वादशांगुलनिम्नश्च मध्येतिमसृणीकृतः ।
मर्दकश्चिपिटोधस्तात्सुग्राहश्च शिखोपरि ।
अयं हि वर्तुलः खल्वो मर्दनेऽतिसुखप्रदः ॥ १७८ ॥

बारह अंगुल गहरा बीचमें चिकना खरल हो उसकी मूसली नीचेसे चपटी हो और ऊपरसे भलीभांति पकडा जासके तथा गोल हो तो मर्दनसंस्कारमें अति सुखदायक होताहै ॥ १७८ ॥

श्रेष्ठखल्वानि ।

खल्वो लोहमयः श्रेष्ठस्तस्माच्छ्रेष्ठश्च सारजः ॥ १७९ ॥

कान्तलोहमयस्तस्मान्मर्दकश्च तथाविधः ।
अभावे लोहखल्वस्य स्निग्धः पाषाणजः शुभः ॥ १८० ॥

रसके संस्कारोंमें लोहेका खरल अच्छा है, उससे भी अच्छा सार लोहेका है, और उससे भी अच्छा कान्त लोहेका है । घोटनेकी मूसली भी उसी लोहेकी होनी चाहिये जिसका खरल हो । यदि लोहेका खरल न मिलसके तौ चिकने पत्थरका भी खरल लेना, और वैसी ही चिकनी मूसली बनाना ॥ १७९॥१८० ॥

खल्वयोग्या शिला नीला श्यामा स्निग्धा दृढा गुरुः ।
षोडशाङ्गुलकोत्सेधा नवांगुलकविस्तरा ॥
चतुर्विंशांगुला दीर्घा घर्षणी द्वादशाङ्गुला ॥ १८१ ॥

खरलके योग्य स्याह मूसा पत्थर चिकना मजबूत और भारी लेना चाहिये वह सोला अंगुल ऊंचा नव अंगुल चौडा, चौबीस अंगुल लम्बा लेना चाहिये । उसकी मूसली भी बारह अंगुल लम्बी होनी चाहिये ॥ १८१ ॥

अथ मूषाप्रकारः ।

मषायोश्च प्रकारं वै श्रूयतां शिष्यसत्तम ।
मूषा हि क्रौंचिका प्रोक्ता कुमुदी करहाटिका ॥ १८२ ॥
पाचनी वह्निमित्रा च रसवेदिभिरुत्तमा ।
मुष्णाति दोषान्धाऽशेषान् सा मूषेति निगद्यते ॥ १८३ ॥
उपादानं भवेत्तस्या मृत्तिका लोहमेव च ।
मूषामुखविनिष्क्रान्ता वरमेकापि काकिनी ॥ १८४ ॥
दुर्जनप्रणिपातेन धिग्लक्षमपि मानिनाम् ॥ १८५ ॥

अब हे शिष्यसत्तम ! मूषाका विधान भी सुनो मूषा क्रौंचिक कुमुदी करहाटिका पाचनी वह्निमित्रा रसके वक्ताओंने यह छः मूषाके पर्यायवाचक शब्द कहे हैं, सब दोषोंको निकालकर नष्ट करे उसको मूषा कहते हैं मृत्तिका और लोहमूषाका उपादान कारण है अर्थात् मट्टी और लोहा आदिसे यह बनती है । जो मनुष्य वैद्यविद्याभिमानी है (अपनेको वैद्य मानेहुए हैं) वह मूषाके द्वारा प्राप्त एक काकिणीको भी धन्य समझते हैं परन्तु दुर्जनकी सेवासे लक्ष रुपये पर भी धिक्कार करते हैं ॥ १८२-१८५ ॥

संधिलेप ।

मूषापिधानयोर्बंधे बन्धनं सन्धिलेपनम् ।
अन्ध्रणं रन्ध्रणं चैव संश्लिष्टं संधिलेपनम् ॥ १८६ ॥
मृत्तिका पांडुरस्थूला शर्करा शोणपाण्डुरा ।
चिराध्मानसहा सा हि मूषार्थमतिशस्यते ॥ १८७ ॥
तदभावे च वाल्मीकी कौलाली वा समीर्यते ॥ १८८ ॥

दोनों मूषाके मुखोंको बांधनेके लिये जो बंधन लगाया जाताहै उसको बंध बंधन संधिलेपन अन्ध्रण रन्ध्रण संश्लिष्ट संधिलेपन इन नामोंसे उच्चारण किया जाताहै मृत्तिका जो मूषाके लिये ली जाती है वह बारीक होनी चाहिये पीली गाजनी अथवा लाल या लाल पीले रंगकी हो यह मृत्तिका ही देरतक आध्मायित अग्निको सहन कर सकेगी इसके अभावमें वल्मीक (बांबी) की मृत्तिका लेना चाहिये उसके अभावमें जिस जिस मृत्तिकाके कुम्हार वर्त्तन बनाता है वह लेना चाहिये ॥ १८६--१८८ ॥

मूषानिर्मापणद्रव्याणि ।

या मृत्तिका दग्धतुषैः शणेन शिखित्रिकैर्वा हयलद्दिना च ।
लौहेन दंडेन च कुट्टिता सा साधारणी स्यात्खलु मूषिकार्थे ॥ १८९
श्वेताश्मानस्तुषा दग्धाः शिखित्रा शणखर्परौ ।
लद्दिः किट्टं कृष्णमृत्स्ना संयोज्या मूषिकामृदि ॥ १९० ॥

तुषोंकी भस्म शणका कुतरा बालोंका कुतरा (कटाहुआ चूरा) घोडेकी लीद इन चीजोंको मूषाकी मृत्तिकामें मिलाकर लोहेके दंडसे खूब कूटे यह साधारण मूषाका क्रम है । सफेद पत्थरके रोडा, तुषोंकी राख, बाल, शण, खपरा, लीद, लोहेका किट्ट, काली मृत्तिका यह मूषा बनानेके लिये मृत्तिकामें मिलाये जाने चाहिये ॥ १८९ ॥ १९० ॥

वज्रमूषा १.

वर्त्तुला गोस्तनाकारा वज्रमूषा प्रकीर्त्तिता ।
द्वौ भागौ तुषदग्धस्य एको वल्मीकमृत्तिका ॥ १९१ ॥
लोहकिट्टस्य भागैकं श्वेतपाषाणभागकम् ।
नरकेशसमं किंचिच्छागीक्षीरेण पाचयेत् ॥ १९२ ॥

यामद्वयं दृढं मर्द्यं तेन मूषां च संपुटेत् ।
शोषयित्वा रसं क्षिप्त्वा तत्कल्कैः संधिलेपितम् ॥
वज्रमूषा भवेदेषा सम्यक् सूतस्य मारणे ॥ १९३ ॥

गोल गायके थनोंके आकारवाली वज्रमूषा कहाती है । तिनकोंकी राख दो भाग, एक भाग बांबीकी मिट्टी, एक भाग लोहकीच, एक भाग सफेद पत्थरका चूरा, और किंचित् मनुष्यके बाल डाले सबको मिलाकर बकरीके दूधमें औटाय दो प्रहर पर्यन्त अच्छी तरह घोटे पीछे उस मिट्टीकी गौके थनके समान गोल और लंबा सांचा बनावे, पीछे उसका ढकना बनायकर धूपमें सुखावे उसमें पारा भर ढकनेसे ढकदेवे और छेदोंको उसी मिट्टीसे बंद करे, पारदके मारणके लिये यह वज्रमूषा कही है ॥ १९१–१९३ ॥

योगमूषा २.

दग्धांगारतुषोपेता मृत्स्ना वल्मीकमृत्तिका ।
तद्वद्विड्समायुक्ता तद्वाद्विड्विलेपिता ॥ १९४॥
तया या विहिता मूषा योगमूषेति कथ्यते ।
अनया साधितः सूतो जायते गुणवत्तरः ॥ १९५ ॥

कोयले तुषोंकी राख, काली मृत्तिका, और वल्मीककी मृत्तिका क्षार, खटाई, पंचलवण, गंधक, इनसे खूब एक जीव कर मूषा बनावे और क्षार, खटाई, गंधक, पंचलवण गोमूत्र इनसे बंधन देवे, इसको योगमूषा कहते हैं इस योग-मूषासे सिद्ध किया पारद अधिक गुणकारी होता है ॥ १९४ ॥ १९५ ॥

वज्रद्रावणीमूषा ३.

गारभूनागधौताभ्यां शणैर्दग्धतुषैरपि ।
समैः समा च मूषा मृन्महिषीदुग्धमर्दिता ॥ १९६ ॥
क्रौंचिकायंत्रमात्रं हि बहुधा परिकीर्त्तिता ।
तया विरचिता मूषा वज्रद्रावणकेरिता ॥ १९७ ॥

चिकनी मृत्तिकाका गारा अलसीकी छाल लोहेका किट्ट शणका कुतरा तुषोंकी राख सबकी बराबर चिकनी मृत्तिका इन सबको भैंसीके दूधमें मर्दन कर क्रौंचिकायंत्रके समान मूषा बनावे इसको वज्रद्रावणीमूषा कहते हैं॥१९६॥१९७॥

गारमूषा ४.

दुग्धं षड्गुणगाराढ्यकिट्टांगारशणान्विता ।
कृष्णामृद्भिः कृता मूषा गारमूषेत्युदाहृता ॥
यामयुग्मपरिध्मानान्नासौ द्रवति वह्निना ॥ १९८ ॥

लोहेका किट्ट, कोयले, शण, कालीमृत्तिका छः गुना बालूरहित गारा इनको दूधमें मर्दन कर जो मूषा बनाई जावे उसको गारमूषा कहते हैं । यह मूषा दो पहर तीक्ष्ण अग्नि सह सक्ती है ॥ १९८ ॥

वरमूषा ५.

वज्रांगारतुषास्तुल्यास्तच्चतुर्गुणमृत्तिका ।
गारश्च मृत्तिकातुल्यः सर्वैरेतैर्विनिर्मिता ।
वरमूषेति निर्दिष्टा याममग्निं सहेत सा ॥ १९९ ॥

थोहरका कोयला, तुषोंकी राख, प्रत्येक आठ तोले, चिकनी मुलतानी मृत्तिका सोलह तोले चिकना गारा सोलह तोले इन सबको एक जीव कर बनाई हुई मूषा वरमूषा कही जाती है । यह एक प्रहरकी तीक्ष्णाग्नि सहन करती है ॥ १९९ ॥

वर्णमूषा ६.

पाषाणरहिता रक्ता रक्तवर्गाम्बुसाधिता ।
मृत्तया साधिता मूषा क्षितिखेचरलेपिता ॥
वर्णमूषेति सा प्रोक्ता वर्णोत्कर्षे नियुज्यते ॥ २०० ॥

पत्थर कंकररहित चिकनी लाल मृत्तिकाको कसुंभा, खैर, लाख, लालचंदन, गोदनी, गेरू, कपूर कचरी, मधु इन औषधियोंके क्वाथमें घोटकर मूषा बनावे और अलसीके कल्कसे पोतकर सुखावे यह सबमें उत्तम वर्णमूषा कही जाती है रस उपरसोंको रंगीन करनेमें यह परम उत्तम है ॥ २०० ॥

रूप्यमूषा ७.

पाषाणरहिता श्वेता श्वेतवर्गाम्बुसाधिता ।
मृत्तया साधिता मूषा क्षितिखेचरलेपिता ॥ २०१ ॥
रूप्यमूषेति सा प्रोक्ता श्वेतवर्णाय युज्यते ॥ २०२ ॥

पत्थर कंकरीरहित उत्तम सफेद मिट्टीको श्वेत वर्गके जलसे रगडकर मूषा बनावे और अलसीके कल्कसे लेपन कर सुखावे इसको रूप्यमूषा कहते हैं यह रस उपरसोंको श्वेत बनानेमें काम आती है ॥ २०१ ॥ २०२ ॥

बिडमूषा ८.

तत्तद्विडसमुद्भूता तत्तद्विडविलेपिता ।
देहलोहार्थयोगार्थं बिडमूषेत्युदाहृता ॥ २०३ ॥

भूमिमें जो गंधक क्षार आदि बिड अर्थात् मैल पैदा होते हैं उनकी मूषा बना उनको लेपकर जो मूषा होती है उसको बिडमूषा कहते हैं शरीरको लोहसदृश दृढ करनेवाली औषधें सिद्ध करनेके अर्थ यह मूषा कही गई है ॥ २०३ ॥

वज्रद्रावणमूषा ९.

गारभूनागधौताभ्यां तुषमष्टगुणेन च ।
समैः समा च मूषा मृन्महिषीदुग्धमर्दिता ॥ २०४ ॥
क्रौंचिका यंत्रमात्रा हि बहुधा परिकीर्त्तिता ।
तया विरचिता मूषा लिप्ता मत्कुणशोणितैः ॥ २०५ ॥
बालाऽब्दध्वनिमूलैश्च वज्रद्रावणक्रौंचिका ।
सहतेऽग्निं चतुर्यामं द्रवेणाऽऽपूरितासती ॥ २०६ ॥

चिकना गारा, लोहेका किट्ट, अलसीका छिलका, आठ भाग तुषोंकी राख, सबकी बराबर मृत्तिका इन सबको भैंसीके दूधमें घोटकर क्रौंचयंत्र समान बनाकर खटमलोंके रक्तसे लेपन कर सुखालेवे और मोथे तथा आकाशबेलके क्काथका लेपन कर सुखावे यह मूषा हीराको गला सक्ती है इसको वज्रद्रावणी मूषा कहते हैं यह चार प्रहरकी तीक्ष्णाग्नि सहन करसक्ती है ॥ २०४–२०६ ॥

वृन्ताकमूषा १०.

वृन्ताकाकारमूषायां नालं द्वादशकांगुलम् ।
धत्तूरपुष्पवच्चोर्ध्वं सुदृढं श्लिष्टपुष्पवत् ॥ २०७ ॥
अष्टांगुलं च सच्छिद्रं सा स्याद्वृन्ताकमूषिका ।
अनया खर्परादीनां मृदूनां सत्त्वमाहरेत् ॥ २०८ ॥

बैंगनके आकारवाली मूषा कर ऊपरको बारह अंगुल नाल रक्खे धतूरेके फूलके समान बीचोंबीच पोली छिद्रयुक्त दृढ होनी चाहिये इसको वृन्ताकमूषा कहते हैं इससे खपरिया आदि मृदु पदार्थोंका सत्त्व निकालना चाहिये ॥२०७-२०८॥

गोस्तनीमूषा ११.

मूषा या गोस्तनाकारा शिखायुक्ता पिधानका ।
सत्त्वानां द्रावणे शुद्धो मूषा सा गोस्तनी भवेत् ॥ २०९ ॥

गौके स्तनके आकारकी जिसके ऊपरकी ओर ढकना दिया जाय उसको गोस्तनी मूषा कहते हैं यह सत्त्वोंके निकालनेमें उत्तम है ॥ २०९ ॥

मल्लमूषा १२.

निर्दिष्टा मल्लमूषा या मल्लद्वितयसंपुटात् ।
पर्पट्यादिरसादीनां स्वेदनाय प्रकीर्त्तिता ॥ २१० ॥

दो तौले लेकर उनमें औषध भर दोनोंका संपुट करके पर्पटी रस आदिके स्वेदनमें काम आती है इसको मल्लमूषा कहते हैं ॥ २१० ॥

पक्वमूषा १३.

कुलालभाण्डरूपा या दृढा च परिपाचिता ।
पक्वमूषेति सा प्रोक्ता पोटल्यादिविपाचने ॥ २११ ॥

कुम्हारके भाण्डके समान पकी हुई दृढ मूषाको पक्वमूषा कहते हैं । यह पोटली आदिके पकानेमें काम आती है ॥ २११ ॥

गोलमूषा १४.

निर्वक्त्रगोलकाऽऽकारा पुटनद्रव्यगर्भिणी ।
गोलमूषेति सा प्रोक्ता सत्वरं द्रव्यशोधिनी ॥ २१२ ॥

विना मुखकी गोल मूषा बना उसमें द्रव्य पहलेही भरदेवे इसको गोलमूषा कहते हैं यह शीघ्र द्रव्योंका मल दूर करनेके काम आती है ॥ २१२ ॥

महामूषा १५.

तले या गोलकाकारा क्रमादुपरि विस्तृता ।
स्थूलवृन्ताकवत्स्थूला महामूषेत्यसौ स्मृता ॥
सा चायोभ्रकसत्त्वादेः पुटाय द्रावणाय च ॥ २१३ ॥

नीचेसे गोल क्रमपूर्वक ऊपरसे बडे बैंगनके समान स्थूल हो उसको महामूषा कहते हैं इसके द्वारा अभ्रक सत्त्वादि द्रावण होता है ॥ २१३ ॥

मंडूकमूषा १६.

मंडूकाकारिका मूषा निम्नतायामविस्तरा ॥ २१४ ॥
षडंगुलप्रमाणेन मूषामंडूकसंज्ञका ।
भूमौ निखात्य तां मूषां दद्यात्पुटमथोपरि ॥ २१५ ॥

मेंडकके आकारकी मूषा बनावे वह छः अंगुल लंबी छः अंगुल चौडी हो उसको मंडूकमूषा कहते हैं भूमिको खोदकर उसमें इसको रखके पुट दी जाती है ॥ २१४॥२१५ ॥

मुसलाख्यामूषा १७.

या मूषा चिपिटा मूले वर्तुलाऽष्टांगुलोच्छ्रया ।
मूषा सा मुसलाख्या स्याच्चक्रबद्धरसे हिता ॥ २१६ ॥

नीचेसे चपटी आठ अंगुल लंबी ऊपरसे गोल हो उसको मुसलामूषा कहते हैं यह पारदको चक्रबद्ध करनेमें काम आती है ॥ २१६ ॥

मूषाऽऽप्यायनम्.

द्रवे द्रवीभावमुखे मूषा याऽऽध्मानयोगतः ।
क्षणमुद्धरणं यत्तन्मूषाप्यायनमुच्यते ॥ २१७ ॥

जब मूषान्तर्गत द्रव्य द्रवीभावको प्राप्त होकर आध्मापित अग्निके प्रभावसे मूषाका मुखभी द्रवीभूत होनेलगे उस समय मूषाको धीरेसे निकालकर क्षणभर ठंढा होने देवे इससे इसका मुख फिर दृढताको पकड जाता है इस क्रियाको मूषाप्यायन कहते हैं ॥ २१७ ॥

अध्यायोपसंहार.

यंत्रैर्विना यतस्तात न सिध्यंति रसादयः ।
नानार्थैस्तु समायुक्तो ह्यतोऽध्यायः प्रकीर्त्तितः ॥ २१८ ॥

यंत्रादिकोंके विना जाने रसादिक सिद्ध हो नहीं सक्ते इसलिये हे तात ! इस नानार्थविवेचनीयाध्यायमें यंत्रादिकोंका कथन कर दिया है ॥ २१८ ॥

इति श्रीटकसालनिवासिरामप्रसादप्रणीते रसेन्द्रपुराणे नानार्थ-
विवेचनीयो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अथातः पारदसंस्कारवर्णनं नाम तृतीयाध्यायं व्याख्यास्यामः॥

अब हम पारेके संस्कारोंके वर्णनवाले तीसरे अध्यायका वर्णन करते हैं ॥

गुरुरुवाच ।

संस्कारैः शोधितः सूतः भुक्तिमुक्तिफलप्रदः ॥
संस्कारेण विना तात पारदोऽयं महाविषः ॥ १ ॥

गुरु कहनेलगे हे पुत्र! संस्कारोंसे शुद्ध हुआ पारद संपूर्ण भोगोंको और मुक्तिको देनेवाला होताहै। विना संस्कारसे यही पारद विषोंसे बढकर महाविष होजाताहै ॥१॥

रसलिङ्गं तु संस्थाप्य विधिना पूजयेत्ततः ।
गुरून् सिद्धान् तथाचार्यान् पूजयित्वा विधानतः ॥ १ ॥
पूर्वश्चाचारिकीं पूजां कृत्वा वै साधकोतमः ।
अहिंसाचन्दनं सत्यं पुष्पमस्तेयधूपनम् ॥ २ ॥
ब्रह्मचर्यं महादीपमप्रतिग्रहघाण्टिकाम् ।
पायसान्नंमहाभोगाः सर्वभूतदयाम्पराम् ।
संगृह्याराधयेद्देवं स भवेत् सिद्धिभाजनः ॥ ३ ॥

रसलिङ्गकी स्थापना करके विधिवत् पूजन करके गुरुओं सिद्धों तथा आचार्योंकी विधानसे पूजा करके प्रथम आचारिकी पूजा करनी उचित है जो वैद्य अपनी इन्द्रियोंका दमन करके अहिंसारूपी चन्दन, सत्यरूपी पुष्प, अस्तेय (दूसरेका धन हरण करना) रूपी धूप, ब्रह्मचर्यरूपी महादीप, अप्रतिग्रहरूपी घण्टिका, तथा सर्वभूतोंपर अत्यन्त दयारूपी महाभोगसे देवताकी आराधना करता है उसके सब कार्यसिद्ध होते हैं ॥ १-३ ॥

तत्र रसलिङ्गं स्थापयित्वा सम्पूययेत् ।

रसलिङ्गप्रकारमाह ।

निष्कत्रयं हेमपत्रं रसेन्द्रं नवनिष्ककम् ।
त्रिदिनं मर्दयेदम्लैस्तेन लिङ्गं तु कारयेत् ॥ ४ ॥
दोलायन्त्रे सारनाले जम्बीरस्थं दिनं पचेत् ।
तल्लिङ्गं पूजयेत्तत्र शुभैः सर्वोपकारकैः ॥ ५ ॥
लिङ्गकोटीसहस्रस्य यत्फलं सम्यगर्चनात् ।
तत्फलं कोटिगुणितं रसलिङ्गार्चनाद्भवेत् ॥ ६ ॥

ब्रह्महत्यासहस्राणि गोहत्याद्ययुतानि च ।
तत्क्षणात्क्षयमायाति रसलिङ्गस्य दर्शनात् ॥
स्पर्शनाज्जायते शुद्धिरिति सत्यं शिवोदितम् ॥ ७ ॥

वहां रसलिङ्गकी स्थापना करके पूजन करे । तीन निष्क शुद्ध स्वर्णके पत्र लेकर उसमें नव निष्क शुद्ध पारद मिलाकर नीम्बूके रससे तीन दिनतक मर्दन करे । फिर इसका शिवलिङ्ग बनाकर जम्बीरी नीम्बूमें रखकर एक दिनतक दोलायन्त्रद्वारा काञ्जीमें पकावे । किसीभी रससंस्कार करनेसे पहले इस शिवलिङ्गको विधिवत् स्थापना करके पञ्चोपचार या षोडशोपचारसे पूजन करे । इस शिवलिङ्गके पूजनसे सहस्रों करोडों शिवलिङ्गोंके पूजनसे भी अधिक फल होता है । इस रसलिङ्गके दर्शन करनेसे ही ब्रह्महत्यादि पाप दूर होते हैं और स्पर्श करनेसे मन और आत्मा शुद्ध होता है ऐसा महादेवजीका वचन है ॥ ४–७ ॥

धूपैर्दीपैः सनैवेद्यैः पुष्पताम्बूलचन्दनैः ।
शान्तिपाठस्य निर्घोषैः स्तोत्रैर्मङ्गलनिस्वनैः ॥ ८ ॥
घण्टाटङ्कारसंयुक्तैः पूजां कृत्वा यथाविधि ।
" ॐ अघोरेभ्योऽथघोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यश्च
सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः "
सर्वविघ्नोपशान्त्यर्थं मन्त्रेणानेन पूजयेत् ॥ ९ ॥

धूप, दीप, नैवेद्य, चन्दन, ताम्बूल, पुष्पोंसे, शान्तिपाठके निर्घोषोंसे, मङ्गलोंसे स्तोत्रोंसे तथा घण्टाटङ्कारोंसे यथाविधि पूजाकरके " ओ अघोरेभ्यो " इत्यादि मन्त्रसे सर्व विघ्नोंकी शान्तिके लिये पूजा करे ॥ ८ ॥ ९ ॥

पारदसंस्काराः ।

अधुना रसराजस्य संस्कारान्संप्रचक्ष्महे ।
येन येन हि चांचल्यं दुर्ग्रहत्वं च नश्यति ॥ २ ॥

अब हम रसराज पारेके संस्कारोंको कहते हैं जिन जिन संस्कारोंसे पारेकी चंचलता और पकडा न जाना नष्ट होताहै ॥ २ ॥

सदोषपारदजारणनिषेधः ।

सदोषो भस्मितो येन योजितो योगकर्मणि ।
पतेत्स नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥ ३ ॥

जिस वैद्यने दोषयुक्त पारेका भस्म किया और उसे औषधियोंमें डाला वह चन्द्र और सूर्यकी स्थिति पर्यन्त भयानक नकरमें पडताहै ॥ ३ ॥

शुद्धपारदलक्षणम् ।

अन्तः सुनीलो वहिरुज्ज्वलो यो मध्याह्नसूर्यप्रतिमप्रकाशः ।
शस्तोऽथ धूम्रः परिपाण्डुरश्च चित्रो न योज्यो रसकर्मसिद्धौ॥४॥

जिस पारेमें भीतरसे तो नीलापन झलके और ऊपरसे उज्ज्वल दीखे तथा मध्याह्नके सूर्यके समान प्रकाश हो वह पारा उत्तम है, इसीका रसकर्ममें उपयोग होता है । धुँएके रंगका केवडेके मकरंदके समान रंगवाला तथा चित्र विचित्र रंगका हो उसको रसकर्मकी सिद्धिमें लेना उचित नहीं है ॥ ४ ॥

पारदजातिः ।

शुक्लो विप्रः समाख्यातो रक्तः क्षत्रिय एव च ।
पीतो वैश्यः समादिष्टः कृष्णः शूद्रः प्रकीर्त्तितः ॥ ५ ॥

अब पारेकी जाति कहते हैं सफेद पारेकी ब्राह्मण जाति है, इसको कल्पोंके लिये लेना चाहिये, लाल पारेकी क्षत्री जाति है, यह गुटका बनानेमें काम आताहै, पीले रंगका पारा वैश्यजातिका है, इसका प्रयोग धातुक्रियामें होताहै और काले रंगका पारा शूद्र जातिका कहाहै यह रसकर्ममें नहीं लिया जाता, इसीसे इसको कलई करने आदि काममें लेते हैं ॥ ५ ॥

नागो रंगो मलो वह्निश्चांचल्यं च विषं गिरिः ।
असह्याग्निर्महादोषा निसर्गात्पारदे स्थिताः ॥ ६ ॥

शीशा, रांग, मल, अग्नि, चंचलता, विष, गिरिदोष और अग्निका न सहना ये महान् दोष पारेमें स्वभावसे ही सिद्ध हैं ॥ ६ ॥

व्रणं कुष्ठं तथा जाड्यं दाहं वीर्यस्य नाशनम् ।
मरणं जडतां स्फोटं कुर्वन्त्येते क्रमान्नृणाम् ॥ ७ ॥
तस्माद्रसस्य संशुद्धिं विदध्याद्भिषजां वरः ।
शुद्धोऽयममृतः साक्षाद्दोषयुक्तो रसो विषम् ॥ ८ ॥
दोषहीनो यदा सूतस्तदा मृत्युर्जरापहः ॥ ९ ॥

उक्त दोष यथाक्रमसे व्रणादि रोगोंको उत्पन्न करते हैं, जैसे पारा सीसेके दोषसे व्रण उत्पन्न करताहै, रांगाके दोषसे कोढको, मलके दोषसे जडता, अग्निदोषसे

दाहको, चंचलतासे वीर्यनाशको, विषदोषसे मृत्युको, गिरिदोषसे जडता और अग्निजन्य असहन दोषसे फोडा रोगको करताहै इससे श्रेष्ठ वैद्योंको अवश्य पारदकी शुद्धि करनी चाहिये शुद्ध पारद अमृतके तुल्य है और दोषयुक्त रस विषके तुल्य है, यदि दोषहीन होवे तो मृत्यु और बुढापेका नाशक है ॥ ७-९ ॥

सप्तकंचुकाः ।

पर्पटी पाटली भेदी द्रावी मलकरी तथा ।
अंधकारी तथा ध्वांक्षी विज्ञेयाः सप्त कंचुकाः ॥ १० ॥

अब पारेकी सात कांचली कहते हैं पर्पटी, पाटली, भेदी, द्रावी, मलकरी, अंधकारी और ध्वांक्षी ये पारेकी सात कांचली हैं ॥ १० ॥

त्रिविधदोषाः ।

विषवह्निमलाश्चेति दोषा मुख्यतमास्त्रयः ।
रसे मरणसंतापमूर्च्छानां हेतवः क्रमात् ॥ ११ ॥
यौगिकौ नागवंगौ द्वौ तौ जाड्याध्मानकारकौ ।
औपाधिकाः पुनश्चान्ये कीर्तिताः सप्त कंचुकाः ॥ १२ ॥
भूमजा गिरिजा वार्जा द्वौ तथा नागवंगजौ ।
द्वादशैते रसे दोषाः प्रोक्ता रसविशारदैः ॥ १३ ॥

कोई आचार्य पारेमें विष, अग्नि और मल इन तीन दोषोंको मुख्य मानते हैं, वहां बिषसे मृत्यु, अग्निसे संताप तथा मल दोषसे मूर्च्छा होती है । इसी प्रकार नागदोष और वंगदोष ये दो दोष यौगिक हैं । ये क्रमसे जडता और अफरेको करते हैं इसी प्रकार सात कांचली औपाधिक दोष हैं उनमें कोई पृथ्वीसे उत्पन्न हुए, कोई पर्वतसे उत्पन्न, और कोई जलसम्बन्धसे उत्पन्न इसी प्रकार सात कांचली दो सीसा और रांगके दोष, तीन विष आदि प्रधान दोष, ये सब मिलके बारह दोष रसशास्त्रके जाननेवालोंने पारेमें कहे हैं ॥ ११-१३ ॥

प्रत्येकदोषाः ।

भूमिजः कुरुते कुष्ठं गिरिजो जाड्यमेव च ।
वारिजो वातसंघातं दोषाढ्यौ नागवंगयोः ॥
अतो दोषनिवृत्त्यर्थं रसः शोध्यः प्रयत्नतः ॥ १४ ॥

पृथ्वीसे उत्पन्न हुवा दोष कुष्ठको करताहै पर्वतसे हुवा दोष जडताको, मलसे हुवा दोष वायुके रोग और नाग वंग अनेक प्रकारके अवगुण ,करते हैं इसीसे निर्दोष होनेके लिये यत्नपूर्वक रसका शोधन करना चाहिये ॥ १४ ॥

तस्माद्दोषनिवृत्त्यर्थं सहायैर्निपुणैर्भिषक् ।
सर्वोपस्कारमादाय रसकर्मसमारभेत् ॥ १५ ॥

इस कारण निर्दोष होनेके लिये चतुर मनुष्योंकी सहायतासे तथा संपूर्ण रस बनानेकी सामग्री लेकर वैद्य रसकर्म प्रारंभ करे ॥ १५ ॥

शुद्धिभेदाः ।

व्याधौ रसायने चैव द्विविधा सा प्रकीर्त्तिता ।
या शुद्धिः कथिता व्याधौ सा नेष्टा हि रसायने ॥
रसायने तु या शुद्धिः सा व्याधावपि कीर्त्तिता ॥ १६ ॥

अब रसकी शुद्धि कहते हैं दो तरहकी रसशुद्धि की जाती है एक रोगके लिये दूसरी रसायनके निमित्त, जो शुद्धि रोगोंके लिये कही है वह रसायनमें नहीं करनी और जो रसायनमें कही है वह रोगमें भी करनी चाहिये ॥ १६ ॥

अत्यन्तरम्योपवने चतुर्द्वारोपशोभिते ।
रसशाला प्रकर्त्तव्या सुविस्तीर्णा मनोरमा ॥
सम्यग्वातायनोपेता दिव्यचित्रैर्विचित्रता ॥ १७ ॥

रसशालाके लक्षण अत्यन्त सुन्दर उपवनमें चार दरवाजोंसे शोभित खूब बडी और मनोहर चारों ओरसे उत्तम जाली झरोखोंसे युक्त हवादार उत्तम चित्रोंसे युक्त रसशाला बनानी चाहिये ॥ १७ ॥

रसशालां प्रकुर्वीत सर्वबाधाविवर्जिते ।
सर्वौषधमये देशे रम्यकूपसमन्विते ॥ १८ ॥
नानोपकरणोपेतां प्रकारेण सुशोभिताम् ।
शालायाः पूर्वदिग्भागे स्थापयेद्रसभैरवम् ॥ १९ ॥
वह्निकर्माणि चाग्नेये याम्ये पाषाणकर्म च ।
नैर्ऋते शस्त्रकर्माणि वारुणे क्षालनादिकम् ॥ २० ॥

शोषणं वायुकोणे च वेधकर्मोत्तरे तथा ।
स्थापनं सिद्धवस्तूनां प्रकुर्यादीशकोणके ॥ २१ ॥

सब विघ्नोंसे रहित सब प्रकारकी औषधियोंसे युक्त और जहां सुन्दर कुआ हो वहां रसशाला बनानी चाहिये । जिस शालामें रस बनानेके अनेक यंत्रादि उपकरण विद्यमान हों तथा उसके चारों ओर परकोट घिरा हो, ऐसी रसशालाके पूर्वमें रसभैरवकी स्थापना करे और अग्निकोणमें अग्निकर्म अर्थात् भट्टी चूल्हे आदि बनावे, दक्षिण दिशामें पाषाण कर्म शिल लोढा खरल आदिको स्थापन करे, नैर्ऋत कोणमें शस्त्रकर्म करे, पश्चिममें जलसे प्रक्षालन आदि कर्म करे, वायव्य कोणमें रसका सुखाना आदि कर्म करे, और ईशान कोणमें सिद्धवस्तुओंका स्थापन करे ॥ १८–२१ ॥

अथातः संप्रवक्ष्यामि पारदस्य विशोधनम् ।
रसो ग्राह्यः शुभे काले पलानां शतमात्रकम् ॥ २२ ॥
पंचाशत्पंचविंशद्वा दश पंचैकमेव वा ।
पलादूनो न कर्त्तव्यो रससंस्कार उत्तमः ।
बहुप्रयाससाध्यत्वात्फलं स्वल्पं तयोर्भवेत् ॥ २३ ॥

इसके पीछे पारेका शोधन कहताहूं । शुभ समयमें सौ, पचास, पच्चीस, दश, पांच, पल पारद लेवे, एक पलसे कम पारेका संस्कार न करे, क्योंकि इसमें अधिक परिश्रम है और फल थोडा मिलता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

मतान्तरम् ।

शतं पंचाशतं वापि पंचविंशद्दशैव च ।
पंचैकं वा पलं चैव पलार्द्धं कर्षमेव वा ॥ २४ ॥
कर्षादूनं न कर्त्तव्यं रससंस्कार उत्तमम् ।
प्रयोगेषु च सर्वेषु यथालाभं प्रकल्पयेत् ॥ २५ ॥

सौ पल व पचास पल पच्चीस पल, वा दश पल, वा पाँच अथवा एक पल वा आधा पल अथवा एक कर्ष पारा ले एक कर्षसे कम पारेका संस्कार न करे और बाकी रसप्रयोगोंमें जैसा वर्णन हो उतना ही ले ॥ २४ ॥ २५ ॥

संपूज्य श्रीगुरुं कन्यां बटुकं च गणाधिपम् ।
योगिनीः क्षेत्रपालांश्च चतुर्द्धा बलिपूर्वकम् ॥ २६ ॥

ततो रहस्ये निलये सुमुहूर्त्ते विधोर्बले ।
सुदिने शुभनक्षत्रे रसशोधनमाचरेत् ॥ २७ ॥
अघोरेण च मंत्रेण रसं प्रक्षाल्य पूजयेत् ॥ २८ ॥

चार प्रकारसे बलिदानपूर्वक श्रीगुरु, कन्या, बटुक, गणपति, योगिनी और क्षेत्रपालका पूजन करे, एकान्त स्थानमें उत्तम मुहूर्त्तमें चन्द्रबलमें और शुभग्रहके दिन तथा शुभ नक्षत्रमें रसशोधनका प्रारंभ करे पहले अघोरमंत्रसे पारदको धोकर पूजन करना चाहिये ॥ २६–२८ ॥

रक्षामंत्रः ।

अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः ।
सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः ॥ २९ ॥

यह अघोरमंत्र श्रीशिवजीका है ॥ २९ ॥

पारदसंस्काराः ।

अष्टादशैव संस्कारा ऊनविंशतिकाः क्वचित् ।
संप्रोक्ता रसराजस्य वसुसंख्याः क्वचिन्मताः ॥ ३० ॥

अब पारेके संस्कारोंको कहते हैं कहीं पारेके अठारह संस्कार कहे हैं और कहीं उन्नीस संस्कार और किसी आचार्यने आठ ही संस्कार माने हैं उनको आगे कहते हैं ॥ ३० ॥

पारदस्याष्टादशसंस्काराः ।

स्यात्स्वेदनं तदनु मर्दनमूर्च्छनं च स्यादुत्थितिः पतन-
रोध (बोध) नियामनानि । संदीपनं गगनभक्षण-
मानमत्र संचारणं तदनु गर्भगतिर्द्रुतिश्च ॥ ३१ ॥
बाह्यद्रुतिः सूतकजारणा स्याद्ग्रासस्तथा सारणकर्म पश्चात् ॥
संक्रामणं वेधविधिः शरीरयोगस्तथाष्टादशधात्र कर्म ॥ ३२ ॥

स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, रोधन, अथवा बोधन, नियमन, संदीपन, गगनभक्षण, संचारण, गर्भगति, गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, सूतकजारण, ग्रास, सारणकर्म, संक्रामण, वेधविधि और किसी किसीके मतमें उन्नीसवाँ शरीरयोग इस प्रकार पारेके अठारह संस्कार हैं ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

अष्टसंस्काराः ।

स्वेदो मर्दनमूर्च्छनोत्थितरतः पातोऽपि भेदान्वितो
रोधः संयमनप्रदीपनमिति स्पष्टाष्टधा संस्कृतिः ।
अस्याः सर्वरसोपयोगिकतयात्वन्यानविन्यस्यते
ग्रन्थेऽस्मिन्प्रकृतोपयोगविरहाद्विस्तारभीत्याथवा ॥ ३३ ॥

इति रसपद्धतौ ।

स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, भेदयुक्तपातन, रोधन, संयमन, प्रदीपन इस प्रकार पारेके आठ संस्कार होते हैं। यह सब रसोंमें उपयोगी हैं विस्तारके भयसे और भेद यहां नहीं कहे ॥३३ ॥

इत्यष्टौ सूतसंस्काराः समा द्रव्ये रसायने ।
शेषा द्रव्योपयोगित्वान्न ते वैद्योपयोगिकाः ॥ ३४ ॥

ये आठ ही पारेके संस्कार द्रव्यमें और रसायनविधिमें समान हैं बाकी दश संस्कार द्रव्योपयोगी होनेसे वैद्योंके प्रयोजनके नहीं हैं ॥ ३४ ॥

अथोनविंशतिकर्माणि ।

स्वेदनमर्दनमूर्च्छनोत्थापनबोधननियमनसंदीपनाऽनुवासनगगनादिग्रासप्रमाणचारणगर्भद्रुतियोगजारणरंजनसारणक्रामणवेधनभक्षणाख्या ऊनविंशतिसंस्काराः सूतसिद्धिदा भवन्ति दीपनान्ता अष्टौ संस्कारा वा देहसिद्धिदा भवंति ॥ ३५ ॥

स्वेदन, मर्दन, मूर्च्छन, उत्थापन, पातन, बोधन, नियमन, दीपन, अनुवासन, गगनादि ग्रासप्रमाण, चारण, गर्भद्रुति, बाह्यद्रुति, योग, जारण, रंजन, सारण, क्रामण, बेधन, भक्षण ये पारेके उन्नीस संस्कार सिद्धिकारक हैं अथवा दीपन तक आठ संस्कार शरीरकी सिद्धि देते हैं ॥ ३५ ॥

पारदभेदाः ।

आरोटको मूर्च्छितश्च बद्धश्च मृत एव च ।
चतुर्धा रसराजो हि प्रथितो जगतीतले ॥
संस्कारैरष्टभिः शुद्धो ह्यथवा हिंगुलूद्भवः ॥ ३६ ॥

आरोटकश्चलः प्रोक्तो रसज्ञानविचक्षणैः ।
चन्द्रोदयस्तु यः सतो गंधकेन च जारितः ॥ ३७ ॥
मूर्च्छितः स तु विज्ञेयो बद्धो वह्निसहः स्मृतः ।
भस्मिते मृत इत्युक्तः संस्कारेष्वेव कीर्त्तताः ॥ ३८ ॥

आरोटक, मूर्च्छित, बद्ध और मृत यह चार पारदकी अवस्था हैं जो दीपनतक आठ संस्कारोंसे शुद्ध हुए चंचल पारेको आरोटक कहते हैं । अथवा दीपनतक संस्कार न हुए हों केवल शिंगरफसे ही निकाला हुआ हो उसे रसविद्याके जाननेवाले आरोटक कहते हैं । और षड्गुण गंधक जारणादि और चन्द्रोदय आदि पारेको मूर्छित कहते हैं अग्निमें न उडनेवालेको बद्ध कहते हैं और जिस पारेका भस्म होजावे उसे मृतपारा कहते हैं । ये चारों संस्कार अठारह संस्कारोंके भीतरही हैं इससे वह अठारह संस्कार क्रमसे कहे जाते हैं ॥ ३६–३८ ॥

अथ स्वेदनसंस्कारः ।

नानाधान्यैर्यथाप्राप्तैस्तुषवर्जैर्जलान्वितैः ।
मृद्भांडं पूरितं रक्षेद्यावदम्लत्वमाप्नुयात् ॥ ३९ ॥
तन्मध्ये घनवाग्मुंडी विष्णुक्रान्ता पुनर्नवा ।
मीनाक्षी चैव सर्पाक्षी सहदेवी शतावरी ॥ ४० ॥
त्रिफला गिरिकर्णी च हंसपादी च चित्रकः ।
समूलकाण्डं पिष्ट्वा तु यथालाभं विनिक्षिपेत् ॥ ४१ ॥
पूर्वाम्लभांडमध्ये तु धान्याम्लकमिदं भवेत् ।
स्वेदनादिषु सर्वत्र रसराजस्य योजयेत् ॥ ४२ ॥
अत्यम्लमारनाल च तदभावे प्रयोजयेत् ॥ ४३ ॥

समयानुसार मिलेहुए अनेक प्रकारके धान्योंसे मिट्टीके घडेको भरदे धान्य भूसेवाले न हो फिर उसमें जल भर ढककर एकान्तमें रखदेवे जबतक वह पानी खट्टा न हो तबतक उसकी रक्षा करे फिर नागरमोथा, ब्राह्मी, गोरखमुंडी, सपेद कोयल, गदापुरैना, मछेछी, सरफोंका, सहदेवी, शतावर, त्रिफला, नीले फूलकी कोयल, हंसपदी और चित्रक ये प्रत्येक डाली पत्ते जड जो जो मिले सबको लेकर पीसे और उक्त धान्यके घडेमें डाल देवे तो धान्याम्ल सिद्ध होजावेगा जहां जहां पारेका संस्कार करना हो तहां तहां इस धान्या-

म्लको लेना चाहिये । यदि यह धान्याम्लक न मिलसके तौ वहां अत्यंत खट्टी कांजी लेना चाहिये ॥ ३९-४३ ॥

त्र्यूषणं लवणं राजी मूलकं त्रिफलार्द्रकम् ।
महाबला नागबला मेघनादः पुनर्नवा ॥ ४४ ॥
मेषशृंगी चित्रकं च नवसारं समं समम् ।
रसस्य षोडशांशेन सर्वं युंज्यात्पृथक् पृथक् ॥ ४५ ॥
एतत्समस्तं व्यस्तं वा पूर्वाम्लेनैव पेषयेत् ।
प्रलिपेत्तेन कल्केन वस्त्रमंगुलमात्रकम् ॥ ४६ ॥
तन्मध्ये निक्षिपेत्सर्वं बद्धा तु त्रिदिनं पचेत् ।
दोलायंत्रेऽम्लसंयुक्ते जायते स्वेदितो रसः ॥ ४७ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, नमक, राई, मूली, त्रिफला, अदरख, महाबला, नागबला, चौलाई, सांठ, मेढासींगी, चित्रक और नौसादर इन प्रत्येक औषधोंको अलग २ पारेका सोलहवां भाग लेना चाहिये, इन सबको अलग अलग वा साथही उक्त धान्याम्लकके साथ पीसे पश्चात् इसको एक साफ मोटे कपडेमें एक अंगुल मोटा लेप कर धूपमें सुखालेवे । पीछे उस कपडेमें पारेको बांध दोलायंत्रद्वारा उसी धान्याम्लमें तीन दिन औटावे तो स्वेदनसंस्कार होता है ॥ ४४-४७ ॥

अथवा—त्र्यूषणं लवणं सूर्यो चित्रकार्द्रकमूलकम् ।
पिष्ट्वा ततो मुहुः स्वेद्यः कांजिकेन दिनत्रयम् ॥ ४८ ॥

दूसरा मत है कि त्रिकुटा, नमक, राई, चित्रक, अदरख, मूली इन सबको पीस कही हुई विधिसे बारं बार तीन दिन कांजीसे स्वेदनसंस्कार करे स्वेदनयंत्रमें यह संस्कार करना ॥ ४८ ॥

अथान्यसिद्धमतम् ।

दिनं व्योषं वरा वह्निः कन्याकल्केषु कांजिके ।
रसं चतुर्गुणे वस्त्रे बद्धा दोलाकृतं पचेत् ॥ ४९ ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, चित्रक, घीगुवार, इनका कल्क और कांजी इनमें पारेको चौपर्त्त कपडेमें बांधकर दोला यंत्रकी बिधिसे एक दिन पकावे तौ स्वेदन संस्कार होताहै ॥ ४९ ॥

रसस्य षोडशांशेन द्रव्यं युंज्यात्पृथक्पृथक् ।
द्रव्येष्वनुक्तमानेषु मतं मानमिदं बुधैः ॥ ५० ॥
त्रिदिनं स्वेदयेद्धर्मे दिनमेकं निरंतरम् ।
स्वेदयेद्रसराजं तु नातितीक्ष्णेन वह्निना ॥ ५१ ॥

पारेका सोलहवां हिस्सा प्रत्येक औषधि अलग अलग लेवे स्वेदनादि संस्कारोंमें जहां औषधियोंकी तौल न कही हो वहां यह परिमाण लेना चाहिये फिर उस पारेको पूर्वोक्त कांजी इत्यादिमें डालके तीन दिन धूपमें रखकर स्वेदन करे पीछे दोलायंत्रकी विधिसे मध्यमाग्नि करके एक दिन बराबर पारेका स्वेदन संस्कार करे पारेके खंडत्वदोष दूर करनेके लिये स्वेदन संस्कार इस प्रकार करे पहले पारेको दुहरे कपडेमें बांधे और एक हांडीमें जलभांगरा, लोनियां, गूमा, जलपीपल इन चारोंका रस भरके उसमें पारेकी पोटली लटकादेवे फिर उस हांडीको चूल्हेपर चढाकर चार प्रहरकी दीपक अग्नि देवे तदनंतर पारदके मुख करनेको और पक्ष दूर करनेको मर्दन संस्कार करे ॥ ५० ॥ ५१ ॥

द्वितीयमर्दनसंस्कारः ।

गृहधूमेष्टिकाचूर्णं तथा दधिगुडान्वितम् ।
लवणासुरिसंयुक्तं क्षिप्त्वा सूतं विमर्दयेत् ॥ ५२ ॥
षोडशांशं तु तद्द्रव्यं सूतमानान्नियोजयेत् ।
सूतं क्षिप्त्वा समं तेन दिनानि त्रीणि मर्दयेत् ॥ ५३ ॥
जीर्णाभ्रकं तथा जीर्णबीजं सूतं तथैव च ।
नैर्मल्यार्थं हि सूतस्य खल्वे धृत्वा तु मर्दयेत् ॥ ५४ ॥
गृह्णाति निर्मलो रागान् ग्रासे ग्रासे विमर्दितः ।
मर्दनाख्यं हि यत्कर्म तत्सूते गुणकृद्भवेत् ॥ ५५ ॥

घरका धुँवां, ईटका चूरा, दही, गुड, नमक और राई इन सबको खरलमें डाल इनसे पारेको मर्दन करे उसमें हरएक औषधि पारेका सोलहवां भाग डालना चाहिये जैसे पारा यदि एक तोला हो तौ प्रत्येक औषधि एक एक आने भर डालनी चाहिये फिर उनके साथ उस पारेको तीन दिन खरल करै जिस पारेमें जीर्णाभ्रक अथवा जीर्णबीज किया हो ऐसे पारेको साफ करनेके लिये खरलमें डालकर

घोटना चाहिये जैसे २ पारेको ग्रास देवे तैसे २ पारेको मर्दन करे तो वह निर्मल पारा उत्तम रंगको ग्रहण कहता है । जितना पारेका मर्दन संस्कार कियाजावे उतना ही अधिक गुणवाला होता है, अत एव मर्दन संस्कार अवश्य करे ॥५२-५५॥

अथान्यसिद्धमतम् ।

रक्तेष्टिकानिशाधूमसारोर्णाभस्मचूर्णकैः ।
जंबीरद्रवसंयुक्तैर्मुहुर्मर्द्यो दिनत्रयम् ॥ ५६ ॥
दिनैकं वापि सूतः स्यान्मर्दनान्निर्मलः परम् ।
ऊर्ध्वपातनयंत्रेण गृह्णीयाच्च पुनः पुनः ॥
पटसारणतो वापि क्षालनाद्वारनालतः ॥ ५७ ॥

लाल ईंट और हल्दीका चूरा धूँआ ऊनकी भस्म चूना इनमें पारा मिलाकर जंभीरीके रससे तीन दिन खरल करे अथवा एकही दिन खरल करनेसे शुद्ध होजाता है फिर इस पारेको ऊर्ध्वपातनयंत्रसे उडाकर निकाललेवे या वस्त्रसे छानलेवे अथवा कांजीसे धोवे तो पारा शुद्ध होजाता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

तृतीयमूर्च्छनसंस्कारः ।

गृहकन्यामलं हन्यात् त्रिफला वह्निनाशिनी ।
चित्रमूलं विषं हन्ति तस्मादेभिः प्रयत्नतः ॥ ५८ ॥
मिश्रितं सूतकं द्रव्यैः सप्तवाराणि मूर्च्छयेत् ।
इत्थं संमूर्च्छितः सूतो दोषशून्यः प्रजायते ॥ ५९ ॥

घीगुवारके रसमें घोटनेसे पारेका मलदोष दूर होवे त्रिफलाके काढेमें घोटनेसे पारेका अग्निदोष मिट जाता है चित्रकके काढेमें घोटनेसे विषदोष नाश होता है अत एव इन द्रव्योंमें परिश्रमसे सात बार मिश्रित पारा घोटना चाहिये इस प्रकार मूर्च्छित पारा निर्दोष होता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

पलत्रयं चित्रकसर्षपाणां कुमारिकन्याबृहतीकषायैः ।
दिनत्रयं मर्दितसूतकस्तु विमुच्यते पंचमलादिदोषैः ॥ ६० ॥

चित्रक, सरसों, घीकुँवार और कटेरी इनको तीन २ पल लेकर क्वाथ करे, इस क्वाथमें तीन दिन पारद मर्दन करनेसे पारदके पंचमलादि दोष दूर हो जाते हैं ॥ ६० ॥

विशालांकोलचूर्णेन वंगदोषं विमुंचति ।
राजवृक्षो मलं हन्ति पावको हन्ति पावकम् ॥ ६१ ॥
चांचल्यं कृष्णधत्तूरास्त्रिफलाविषनाशिनी ।
कटुत्रयं गिरिं हन्ति ह्यसह्यत्वं त्रिकंटकः ॥ ६२ ॥
प्रतिदोषं कलांशेन तत्र सूतं सकांजिकम् ।
सुवस्त्रगालितं खल्वे सूतं क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ॥ ६३ ॥
उद्धृत्य चारनालेन मृद्भाण्डे क्षालयेत्सुधीः ।
सर्वदोषविनिर्मुक्तः सर्वकंचुकवर्जितः ॥
जायते शुद्धसूतोऽयं योजयेद्रसकर्मसु ॥ ६४ ॥

इन्द्रायणके फल और अंकोलके चूर्णमें पारेको घोटनसे पारा वंगके दोषको छोडदेता है, अमलतास पारेके मलको दूर करता है । चित्रकका काढा पारेका अग्निदोष नाश करता है । काले धतूरके रसमें घोटनेसे चांचल्य दोष दूर होताहै । त्रिफलाका काढा विषदोषको नाश करता है । त्रिकुटेका काढा पर्वतके दोषोंको और गोखुरूका काढा असह्य अग्निदोषको नष्ट करता है । प्रत्येक दोष दूर करनेके लिये पारेका सोलहवां भाग औषधी और कांजी डालके घोटे पीछे कपडेमें छान लेवे फिर उसे निकालकर कांजीसे मिट्टीके पात्रमें धोवे तो पारा संपूर्ण दोष और सातों कांचलियोंसे अलग हो शुद्ध होजावेगा, ऐसा शुद्ध पारा सभी रस कर्मोंमें ग्रहण करना चाहिये ॥ ६१--६४ ॥

अथ कंचुकीहरणम् ।

कुमारिकाचित्रकरक्तसर्षपैः कृतैः कषायैर्बृहतीविमिश्रितैः ।
फलत्रिकेनापि विमर्दितो रसो दिनत्रयं सप्तमलैर्विमुच्यते॥६५॥

घीकुवारका रस, चित्रक, लालसरसों, कटेरी और त्रिफला इनको अलग अलग काढेमें अथवा सबका काढा कर एक साथ तीन दिन मलनेसे पारा सप्तकंचुकी दोषसे शून्य होताहै ॥ ६५ ॥

चतुर्थ उत्थापन संस्कारः ।

तत उत्थापयेत्सूतमातपे निम्बुकार्दितम् ।
उत्थापनावशिष्टं तु चूर्णं पातनयंत्रके ॥
धृत्वाग्नावूर्ध्वभांडात्तं संग्रहेत्पारदं भिषक् ॥ ६६ ॥

इसके अनंतर पारेका उत्थापन संस्कार करे, पारेमें नींबूका रस डालकर धूपमें घोटे सूखनेपर उसको निकाल लेवे, यदि उठानेमें बाकी रहजाय तो उस चूर्णको पातनयंत्रद्वारा अर्थात् डमरूयंत्रमें रखकर अग्नि जलावे, हांडीमें ऊपर लगेहुए पारेको निकाल लेवे इसको उत्थापनसंस्कार कहते हैं ॥ ६६ ॥

पंचम पातनसंस्कारः ।

तच्च त्रिविधं ऊर्ध्वाधस्तिर्यक्पातनम् ।
अस्माद्विरेकात्संशुद्धो रसः पात्यस्ततः परम् ॥ ६७ ॥
उद्धृतः कांजिकक्काथात्पूतिदोषनिवृत्तये ।
ताम्रेण पिष्टिकां कृत्वा पातयेदूर्ध्वभाजने ॥ ६८ ॥
वंगनागौ परित्यज्य शुद्धो भवति सूतकः ।
शुल्बेन पातयेत्पिष्टिं त्रिधोर्ध्वं सप्तधा त्वधः ॥ ६९ ॥

अब पांचवां पातनसंस्कार दिखाते हैं वह तीन प्रकारका है, जैसे ऊर्ध्वपातन अधःपातन और तिर्यक्पातन । उत्थापनसंस्कारसे पारेको लेकर पातन संस्कार इस प्रकार करे कांजीसे क्काथसे पारेको निकाल कर उसकी दुर्गंधि दूर करनेके लिये तांबेके बरतनमें पारेकी पीठी भरे और डमरूयंत्रमें रखकर ऊर्ध्व-पातन करे तो पारा वंग और नागदोषको छोडकर शुद्ध होजाताहै । तांबेके पात्र द्वारा पारेकी पीठीको तीन बार ऊर्ध्वपातन और सात बार अधःपातन करे ॥ ६७–६९ ॥

अथोर्ध्वपातनम् ।

भागास्त्रयो रसस्यार्कभागमेकं विमर्दयेत् ।
जंबीरद्रवयोगेन यावदायाति पिंडताम् ॥ ७० ॥
तत्पिंडं तलभांडस्थमूर्ध्वभांडे जलं क्षिपेत् ।
कृत्वालवालं केनापि ततः सूतं समुद्धरेत् ॥
ऊर्ध्वपातनमित्युक्तं भिषग्भिः सूतसाधने ॥ ७१ ॥

पारा तीन भाग, तांबेका चूरा एक भाग दोनोंको जंभीरीके रसमें गोला न बंधने तक घोटे फिर उस पारेके गोलेको नीचेके बरतनमें रख ऊपरके बरतन पर किसी वस्तुसे थावलासा जल भरदेवे और नीचे अग्नि जलावे । स्वांगशीतल होने पर ऊपरके बरतनमें लगे हुए पारेको निकाल लेवे, इस क्रियाको ऊर्ध्व-

पातन कहते हैं दूसरे ग्रंथोंमें इस ऊर्ध्वपातनयंत्रको विद्याधरयंत्र कहते हैं किसी आचार्यका मत है कि पारा अपामार्ग (चिराचिरा) की भस्म और सोनामक्खी इन तीनोंको घीकुवारके रसमें घोटे गोला बनने पर ऊर्ध्वपातन करे ॥७०॥७१॥

अथाधःपातनम्।

त्रिफलाशिग्रुशिखिभिर्लवणासुरिसंयुतैः।
नष्टपिष्टं रसं कृत्वा लेपयेदूर्ध्वभांडके ॥ ७२ ॥
ऊर्ध्वभांडोदरं लिप्त्वा चाधोभांडे जलं क्षिपेत्।
संधिलेपं द्वयोः कृत्वा तद्यंत्रं भुवि पूरयेत् ॥ ७३ ॥
उपरिष्टात्पुटे दत्ते जले पतति पारदः।
अधःपातनमित्युक्तं सिद्धाद्यैः सूतकर्माणि ॥ ७४ ॥

त्रिफला, सहँजनेकी छाल, अपामार्ग (ओंगा) का क्षार और राई इनमें पारेको खरल कर पिट्टी करै उस (पिट्टी) को ऊपरके पात्रमें लेप कर नीचेके पात्रमें जल भरदेवे दोनोंका मुख बंद कर जोडोंको लीपदे, फिर उस यंत्रको भूमिमें गाडदेवे ऊपरके पात्रकी पेंदीमें कुक्कुटपुट देवे तो पारा जलके पात्रमें गिरता है इसको अधःपातन कहते हैं। कोई आचार्य कहते हैं कि गंधक और पारा दोनों बराबर बराबर कौंचके बीज, ओंगा, सहँजनेके बीज सैंधानमक, सफेद सरसों इन सबको जंबीरीके रसमें एक दिन घोटे फिर इसी पिट्टीको ऊपरके पात्रमें लेपकर पूर्वोक्त विधिसे पारा निकाल लेवे इसे भी अधःपातन कहते हैं ॥ ७२-७४ ॥

तीर्यक्पातनम्।

घटे रसं विनिक्षिप्य सजलं घटमन्यकम्।
तिर्यङ्मुखं द्वयोः कृत्वा तन्मुखं रोधयेत्सुधीः ॥ ७५ ॥
रसाधो ज्वालयेदग्निं यावत्सूतो जलं विशेत्।
तिर्यक्पातनमित्युक्तं सिद्धैर्नागार्जुनादिभिः ॥ ७६ ॥
मिश्रितौ चेन्नागवंगौ रसे विक्रयहेतुना।
ताभ्यां स्यात्कृत्रिमो दोषस्तन्मुक्तिः पातनाश्रयात् ॥ ७७ ॥
एवं सुसंस्कृतः सूतः पातनावधि यत्नतः।
सर्वदोषविनिर्मुक्तो जायते नात्र संशयः ॥ ७८ ॥

एक बडा घडा लेकर उसमें पारा भरे और उसी प्रकार दूसरा पात्र लेकर उसमें पानी भरदे फिर कुछ तिरछे रखकर दोनोंके मुख मिला बन्द करदेवे और पारेवाले बरतनके नीचे आग इस अन्दाजसे जलावे कि पारा उडकर दूसरे पात्रमें चलाजावे इसको नागार्जुनादिक सिद्ध तिर्यक्पातन कहते हैं । पारेमें सीसे तथा रांगेका दोष तथा कृत्रिम दोष रहते हैं, उनकी शुद्धि पातनयंत्रसे की जासकती है, इस प्रकार पातनयंत्रसे सिद्ध हुवा पारा सर्वदोषरहित होजाता है स्थालीयंत्र, डमरूयंत्र और तिर्यक्पातनयंत्रोंका स्वरूप इस ग्रंथके द्वितीय अध्यायमें है । (कोई आचार्य पातनसंस्कारके अनन्तर फिर स्वेदन करना कहते हैं) ॥७५-७८॥

छठाबोधनसंस्कारः ।

एवं कदर्थितः सूतः षण्ढत्वमधिगच्छति ।
तन्मुक्तयेऽस्य क्रियते बोधनं कथ्यते हि तत् ॥ ७९ ॥

इस प्रकार ताडित पारा नपुंसकत्वको प्राप्त होता है अत एव उस नपुंसकत्वके दूर करनेके लिये छठा बोधनसंस्कार कहा जाता है ॥ ७९ ॥

विश्वामित्रकपाले वा काचकुप्यामथापि वा ।
सृष्टयंबुजं विनिक्षिप्य तत्र तन्मज्जनावधि ॥ ८० ॥
पूरयेत्रिदिनं भूम्यां राजहस्तप्रमाणतः ।
अनेन सूतराजोऽयं षंढभावं विमुंचति ॥ ८१ ॥

नरेली अथवा कांचकी शीशीमें पारा डालके उसमें सैंधव नमकका पानी भर-देवे जिसमें वह पारा डूब जावे कोई सृष्टयम्बुज शब्दसे स्त्रीका रज और मूत्र ग्रहण करते हैं अर्थात् कालिनी (सोलहवर्षकी स्त्री) के रजमें पारेको डुबा देवे फिर उसको बंद कर सवा हाथका गढा खोदके उसमें गाडदेवे इस प्रकार तीन दिन गडा रहनेसे पारेका नपुंसकत्व दूर होता है ॥ ८० ॥ ८१ ॥

सप्तमो नियमनसंस्कारः ।

सर्पाक्षी चिंचिका वंध्या भृंगाब्दकनकांबुभिः ।
दिनं संस्वेदितः सूतो नियमात्स्थिरतां व्रजेत् ॥ ८२ ॥

---

१ यस्यास्तु कुञ्चिताः केशाः श्यामा या पद्मलोचना॥ सुरूपा तरुणी भिन्नविस्तीर्णजघना शुभा ॥ संकीर्णहृदया पीनस्तनभारेण संनता ॥ चुंबनालिंगनस्पर्शकोमला मृदुभाषिणी ॥ अश्वत्थपत्रसदृयोनिदेशे सुशोभिता ॥ कृष्णपक्षे पुष्पवती सा नारी कालिनी स्मृता ॥

सरफोंका वा नागफणी, इमली, वांझककोडा, भांगरा, नागरमोथा, धतूरेके रसमें एक दिन स्वेदन करनेसे पारा इस नियमन संस्कारसे स्थिर होता है ॥ ८२ ॥

मतान्तरम् ।

उत्तराशाभवः स्थलो रक्तसैंधवलोष्टकः ।
तद्गर्भे रंध्रकं कृत्वा सूतं तत्र विनिःक्षिपेत् ॥ ८३ ॥
ततस्तु चणकक्षारं दत्त्वा चोपरि नैम्बुकम् ।
रसं क्षिप्त्वाथ दातव्यं तादृग् सैंधवखोटकम् ॥ ८४ ॥
गर्तं कृत्वा धरागर्भे दत्त्वा सैंधवसंयुतम् ।
धूलिमष्टांगुलां दत्त्वा कारीषीं दिनसप्तकम् ॥ ८५ ॥
वह्निं प्रज्वाल्य तद्ग्राह्यं क्षालयेत्कांजिकेन तु ।
अयं नियमनो नाम संस्कारो गदितो बुधैः ॥
अभावे चणकक्षारादर्पयेन्नवसादरम् ॥ ८६ ॥

उत्तर दिशामें लालरंगका बडा सैंधव पाषाण होता है उस पत्थरके बीचमें छेद करके उसमें पारा भरदेवे और उस पारेके ऊपर चनाखार भरकर नींबूका रस भरदेवे फिर उसी सैंधव पाषाणके टुकडेसे उसका मुख बंद करे और भूमिमें गढा खोद-कर उसमें पारेवाले पत्थरको रख अठारह अंगुल ऊंची वनके कंडोंकी राख भरकर दाब देवे फिर उसके ऊपर सात दिन अग्नि जलाकर उस पारेको निकालले और कांजीसे धोडाले इस क्रियाको नियमन संस्कार कहते हैं यदि नियमन संस्कारमें चनाखार न मिले तौ नौसादर डाले कदाचित् वह भी न मिले तो सज्जी-खार डाले ॥ ८३-८६ ॥

अष्टमो दीपनसंस्कारः ।

कासीसं पञ्चलवणं राजिका मरिचानि च ।
भूशिग्रुबीजमेकत्र टंकणेन समन्वितम् ॥ ८७ ॥
आलोडच कांजिके दोलायंत्रे पाचयेत्त्रिभिर्दिनैः ।
दीपनं जायते सम्यक् सूतराजस्य चोत्तमम् ॥ ८८ ॥

कसीस, पांचों नमक, राई, मिर्च, सहँजनेके बीज, सुहागा, इन सबको कांजीमें मिलावै फिर इस कांजीमें पारेको दोलायंत्रकी विधिसे तीन दिन पकावे तो पारदमें दीपनसंस्कार होवे । अथवा पारेको चित्रकके रस तथा कांजीमें दोलायंत्रकी विधिसे पकावे तो पारेका परमोत्तम दीपन होवे ॥ ८७ ॥ ८८ ॥

अनुवासनसंस्कारः ।

दीपितं रसराजं तु जंबीररससंयुतम् ।
दिनैकं धारयेद्धर्मे मृत्पात्रे वा शिलोद्भवे ॥ ८९ ॥

दीपित पारेको एक दिन जंबीरीके रसमें डालके मिट्टी या पत्थरके बरतनमें भरके धूपमें रखदे यह अनुवासन संस्कार कहाता है (अनुवासनपर्यन्त नौ संस्कार हो जानेपर शुद्ध पारा अष्टमांश शेष रहता है, ॥ ८९ ॥

स्वेदनादिनवकर्मसंस्कृतः सप्तकंचुकाविवर्जितो भवेत् ।
अष्टमांशमवशिष्यते यदा शुद्धसूत इति कथ्यते तदा ॥ ९० ॥

स्वेदनादि नौ संस्कारोंसे पारा सातों कांचलियोंसे रहित होताहै और अष्टमांश शेष रहता है, अर्थात् पारेमें सात भाग कांचली रहती हैं जब पारा शुद्ध होता है तो कांचली विलकुल नहीं रहती ॥ ९० ॥

अथ हिङ्गुलोः पारदनिस्सारणम् ।

अथवा हिंगुलात्सूतं ग्राहयेत्तद्धि गद्यते ।
जंबीरनिंबुनीरेण मर्दितो हिंगुलोर्दिनम् ॥ ९१ ॥
ऊर्ध्वपातनयंत्रेण ग्राह्यः स्यान्निर्मलो रसः ।
कंचुकैर्नागवंगाद्यैर्निर्मुक्तो रसकर्मणि ॥
विना कर्माष्टकेनैव सूतोऽयं सर्वकर्मकृत् ॥ ९२ ॥

अथवा हिंगुलमेंसे पारा निकालना चाहिये उसकी विधि यह है हिंगुलकी डलीको खरलमें पीस जंबीरिया नींबूके रसमें एक दिन खरल करे फिर इसको ऊर्ध्वपातन (डमरू) यंत्रद्वारा उडा लेवे तो यह पारा कंचुकी और नागवंग इत्यादि संपूर्ण दोषोंसे रहित और निर्मल होजाता है यह पारा विना अष्टसंस्कारोंके ही शुद्ध होता है इसको संपूर्ण कर्मोंमें ग्रहण करना चाहिये ॥ ९१ ॥ ९२ ॥

निंबूरसैर्निम्बपत्ररसैर्वा याममात्रकम् ।
पिष्ट्वा दरदमूर्ध्वञ्च पातयेत्सूतयुक्तितः ।
ततः शुद्धतरं तस्मान्नीत्वा कार्येषु योजयेत् ॥ ९३ ॥

नींबूके रस या नींबके पत्तोंके रसमें शिंगरफकी डलीको एक प्रहर घोटें पीछे उसे डमरू यंत्रमें भरके आंच देकर पारेको उडालेवे तो यह पारा सप्तकंचुकी और सर्व दोषरहित हो जाता है इसको सब कार्योंमें लेना चाहिये ॥ ९३ ॥

द्वितीयविधिः ।

हिंगुलं समवस्त्रेतु वेष्टयित्वाऽनले क्षिपेत् ।
मृत्पात्रेण तदाछाद्य हिमं कुर्यात्तु तत्तुलम् ॥ ९४ ॥

सिंगरफकी डलीको बराबरके वजनके वस्त्र अथवा कच्चे सूतमें लपेटकर आग लगा देवे ऊपर एक मट्टीकी बडी हांडीको औंधा करके रखदेवे और उस हांडीके ऊपर गीला करके एक वस्त्र रखदेवे ताकि उसका ऊपरका भाग ठंडा रहे नीचे एक दो छोटी २ कंकडी लगादेवे जिसमें आग न बुझै स्वांगशीतल होनेपर ऊपर हांडीमें लगेहुए पारेको निकाल लेना चाहिये ॥ ९४ ॥

तप्तखल्वद्वारा शुद्धिः ।

भूगर्त्तेऽजशकृत्तुषानलपुटैः संस्थापिते लोहजे ।
खल्वे जृंभलकांजिकेन बलिना सार्द्ध दशांशेन सः ॥
संमर्धः परिपातयंत्रविधिना निष्कासितः सप्तधा ।
शुद्धः पारदकर्मठैर्निगदितो वैद्यैरवैद्येतरैः ॥ ९५ ॥

भूमिमें एक गढा खोदकर उसमें बकरीकी लेंडी और भूसा भरके अग्नि जलावे उसके ऊपर लोहका खरल रखकर पारेका दशवां भाग गंधक लेकर उसको जंबीरीके रस और कांजीमें घोटे इस प्रकार सात बार पारेको खरल करे और उडालेवे तो पारेके कर्म जाननेवालोंने यह शुद्ध पारा कहाहै ॥ ९५ ॥

एकेन लशुनेनापि शुद्धो भवति पारदः ।
तप्तखल्वे मासमेकं पिष्टो लवणसंयुतः ॥ ९६ ॥

एक लहसुनके ही रसमें पारेको घोटनेसे शुद्ध होजाताहै इसको एक महीने तप्तखल्वमें लवण संयुक्त लहसुनके रसमें घोटे तब शुद्ध होताहै ॥ ९६ ॥

शोधितस्य मुखकरणं पक्षच्छेदनं च ।

विषोपविषकैर्मर्द्यः प्रत्येकं दिनसप्तकम् ॥

तेनास्य जायते वह्निः पक्षच्छेदो मुखं तथा ॥ ९७ ॥

शुद्ध पारेको विष और उपविषोंसे अलग २ सात २ दिन घोटे तो उस पारेके भूख उत्पन्न हो तथा पक्षच्छेद और मुख होवे ॥ ९७ ॥

नवविषाणि ।

कालकूटो वत्सनाभः शृंगिकश्च प्रदीपनः ।

हालाहलो ब्रह्मपुत्रो हारिद्रः सक्तुकस्तथा ॥

सौराष्ट्रिक इति प्रोक्ता विषभेदा अमी नव ॥ ९८ ॥

कालकूट, वत्सनाभ, शृंगिक, प्रदीपन, हालाहल, ब्रह्मपुत्र, हारिद्रक, सक्तुक, तथा सौराष्ट्रिक ये विषके नौ भेद कहे गये हैं, इन सब विषोंमें सात २ दिन घोटके डमरूयंत्रमें उडालेवे ॥ ९८ ॥

उपविषाणि ।

अर्कसेहुंडधत्तूरलांगलीकरवीरकाः ।

गुंजाहिफेनावित्येताः सप्तोपविषजातयः ॥ ९९ ॥

एतैर्विमर्दितः सूतश्छिन्नपक्षश्च जायते ।

मुखं च जायते तस्य धातूंश्च ग्रसते त्वरम् ॥ १०० ॥

आक, थूहर, धतूरा, कलिहारी, कनेर, घूंघची और अफीम ये सात उपविषकी जाति हैं इनमें सात २ बार घोटनेसे पारेके पंख कट जाते हैं और मुख होजाताहै तथा शीघ्र सुवर्णादि धातुओंको खा जाताहै नौ विषोंका मिलना कठिन है इससे सुलभ सुलभ सिंगिया विष और उपविषोंमें सात २ दिन पारेको घोटकर डमरूयंत्र द्वारा पारेको उडालेना चाहिये कदाचित् सब न उडाहो तो पुनः डमरूयंत्रद्वारा उडाना चाहिये ऊपरकी हांडीमें ठंडे पानीकी पोती फिरानेसे पारा ऊपर चिपक जाताहै हांडी शीतल करके उसे निकाललेना चाहिये ॥ ९९ ॥ १०० ॥

सास्यो रसः स्यात्पटुशिग्रुतुत्थैः सराजिकैः सोषणकैस्त्रिरात्रम् ॥

पिष्टस्ततः स्विन्नतनुः सुवर्णमुखानयं खादति सर्वधातून् ॥ १०१

सैंधव लवण, सहँजनके बीज, तूतिया, राई, पीपल और त्रिकुटा इन सब औषधियोंमें तीन दिन पारेको खरल करे पश्चात् स्वेदन संस्कार करे तो पारा सुवर्णादि सभी धातुओंको खाताहै ॥ १०१ ॥

अथवा बिंदुकीटैश्च रसो मर्द्यस्त्रिवारकम् ।
लवणाम्लैर्मुखं तस्य जायते धातुघस्मरम् ॥ १०२ ॥

छः[1] बूंदेवाले विषैले कीडेके रससे नमक तथा खटाई डालके तीन वार घोटे तो पारेका मुख होजाताहै जिससे सुवर्णादि धातुओंको शीघ्र खालेताहै ॥ १०२ ॥

अथवा त्रिकटुक्षारौ राजीलवणपंचकम् ।
रसोनो नवसारश्च शिग्रुश्चैकत्र चूर्णितैः ॥ १०३ ॥
समांशैः पारदादेतैर्जंबीरेण द्रवेण च ।
निंबुतोयैः कांजिकैर्वा सोष्णे खल्वे विमर्दयेत् ॥
अहोरात्रत्रयेण स्याद्रसे धातुगरं मुखम् ॥ १०४ ॥

अथवा त्रिकुटा, सज्जीखार, जवाखार, राई, पांचों नमक, लहसन, नौसादर और सहँजना, इन सब औषधोंको पारेके समान लेकर जंभीरीके रससे या नींबूके रस अथवा कांजीसे तप्त खल्वमें तीन दिन रात खरल करे तो पारेमें धातुको भक्षण करनेवाला मुख होजाताहै ॥ १०३ ॥ १०४ ॥

उक्तौषधिरसैर्वस्त्रे दोलायंत्रे विपाचयेत् ।
अवशिष्टरसैः पश्चान्मर्दयेत्पाचयेदपि ॥ १०५ ॥
मर्दनाख्यं हि यत्कर्म तत्सूते गुणकृद्भवेत् ।
पुनर्विमर्दयेत्तस्माच्चतुर्दशदिनान्यमुम् ॥ १०६ ॥
इत्थं पातनया नपुंसकममुं यत्नेन रुद्धाम्बरे ।
सिन्धुत्र्यूषणमूलकार्द्रहुतभुग्राज्यालिकल्कान्विते ॥
भांडे कांजिकपूरिते दृढतरे भव्ये शुभे वासरे ।
दोलायंत्रविधानवित्त्रिदिवसं मंदाग्निना स्वेदयेत् ॥ १०७ ॥

---

(१) छः बूंदका कीडा काला २ होताहै और इसके ऊपर सफेदी युक्त पीले रंगकी छः बूंदें होती हैं इसके काटनेसे मनुष्य मरजाताहै यह कीडे वर्षाऋतुके आगमनमें प्रायः देखनेमें आतेहैं यह कीडे सांपके मामा अथवा छः बूंदके नामसे प्रसिद्ध हैं ।

स्वेदसदीपनतोऽसौ ग्रासार्थं जायते सूतः ।
दीपितमेनं सूतं जंबीराम्लेन धारयेद् घर्मे ॥
दिनमनुवासनमेवं नवमं संस्कारमिच्छन्ति ॥ १०८ ॥

उक्त औषधि अर्थात् जलभांगरा, लोनियां, गोमा और जलपीपलके रसमें पारेको वस्त्रमें बांधकर दोलायंत्रमें औटावे । बचेहुए रसोंसे फिर मर्दन करे, फिर पचावे, फिर मर्दनसंस्कार करे, इस प्रकार पहिले कहीहुई चारों औषधियोंके रसमें १४ दिन खरल करे जिससे बहुत मर्दन करनेसे पारेमें गुण बढजावें फिर १४ दिन पीछे उत्थापन संस्कार करे और पारेके षंढत्व दूर करनेके लिये दूसरी बार इस प्रकार स्वेदन संस्कार करे कि सैंधव नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, मूलीके बीज, अदरख, चित्रक और राई इन सब औषधियोंको छदाम छदाम भर लेवे और सबको कांजीमें पीसकर किसी साफ कपडेमें चार पहर तक खूब लेप करे फिर उस कपडेकी चार पर्त कर उसमें पारा बांधकर हांडीमें दोलायंत्र करके लटका देवे फिर उस हांडीमें १५ सेर कांजी भरके तीन दिनतक मन्द अग्नि द्वारा स्वेदन करनेमें पारेमें दीपन संस्कार होताहै और दीपन संस्कारसे पारा भूखा होकर धातुओंको खासकता है और नपुंसकता दूर होकर वह बलवान् होजाताहै। फिर पारेको कपडेसे निकाल कर इस भांति अनुबासन संस्कार करे कि एक हांडीमें पारा और नींबूका रस डालके एक दिन घाममें रखकर निकाललेवे इसे अनुवासन संस्कार कहते हैं ॥ १०५–१०८ ॥

सहस्रनिंबूफलतोयघृष्टो रसो भवेद्वह्निसमप्रभावः ॥ १०९ ॥

हजार निंबुओंके रसमें पारेको घोटनेसे पारा शुद्ध और भूँखा होताहै पारेको क्षारवर्गमें और अम्लवर्गमें घोटनेसे पारेके मुख हो जाता है तथा क्षुधा उत्पन्न होजाती है ॥ १०९ ॥

यथा ।

तप्त खल्वेन तप्तेन ह्यम्लेनोत्थापयेद्रसम् ।
क्षारा मुखकराः सर्वे सर्वे ह्यम्लाः प्रबोधकाः ॥ ११० ॥

पारेको तप्त खल्वमें अम्लवर्गके रसमें डाल, उत्थापन संस्कार करे कारण कि सभी क्षार मुख करते और सभी अम्लबोधक हैं ॥ ११० ॥

अथाम्लवर्गः ।

अम्लवेतसजम्बीरलुङ्गाम्लचणकाम्लकाः ।
नागरङ्गं तिन्तिडी च चिञ्चापत्रं च निम्बुकम् ॥ १११ ॥

चाङ्गेरी दाडिमश्चैव करमर्दतथैव च ।
एष चाम्लगणः प्रोक्तो वेतसाम्लं सदोत्तमम् ॥ ११२ ॥

अम्लबेत, जंभीरी, बिजौरा, चनाखार, नारंगी, इमली, कोकम, नींबू, खट्टी लोनियां, खट्टा दाडिम और करोंदा यह अम्लवर्ग कहाता है ॥ १११ ॥११२ ॥

क्षारवर्गः ।

पलाशधवपूतीककरञ्जपाटलादिजाः ।
टङ्कणेन समायुक्ताः क्षारवर्गः प्रकीर्त्तितः ॥ ११३ ॥

पलाश, धव, पूतिकरंज, कंजा, लाललोध, इनसे पैदा होनेवाले तथा जवाखार सज्जीखार सुहागा इत्यादिको क्षारवर्ग कहते हैं ॥ ११३ ॥

तथाच ।

क्षाराम्लैर्लवणैर्मूत्रैर्विषैरुपविषैस्तथा ।
दिव्यौषधिसमूहेन मर्दयेद्दिवसत्रयम् ॥
पारदस्य कलांशेन भेषजेन प्रमर्दयेत् ॥ ११४ ॥

क्षारवर्ग, अम्लवर्ग, लवणवर्ग, मूत्रवर्ग, विषवर्ग, उपविषवर्ग, और ६४ दिव्यौषधि इन प्रत्येकमें तीन ३ दिन घोटे तो पारा शुद्ध होजाताहै पारेका शोडषांश प्रत्येक औषध लेवे अनेक आचार्योंने दुग्धवर्ग, मूत्रवर्ग, तैलवर्ग, बसावर्ग, कृष्णवर्ग, शुक्तवर्ग, रक्तवर्ग, क्रामकवर्ग, और पीतवर्ग मृत्तिकावर्ग इनमें भी पारेको घोटना लिखाहै अब पारेका मूर्च्छाप्रकार लिखते हैं वह दो प्रकारका है एक गंधकके योगसे, दूसरा औषधियोंसे। औषधियोंके द्वारा मूर्च्छाका वर्णन पीछे कर चुके हैं अब गंधकके संयोगसे होनेवाले चन्द्रोदय आदिको लिखते हैं ॥ ११४ ॥

चन्द्रोदयविधिः ।

ततस्तमाद्विनिष्कास्य पारदं तोलयेद्भिषक् ।
तत्तुल्यं गंधकं दत्त्वा कुर्यात्कज्जलिकां द्वयोः ॥
द्रोणाम्बुकणयोर्नीरैर्मर्दयेच्च दिनद्वयम् ॥ ११५ ॥
संशोष्य वालुकायंत्रे यामानष्टौ ततः पचेत् ।
मंदमग्निं ततः कुर्यादाद्ये यामचतुष्टये ॥
ततो द्वितीययत्नेन तीव्रमग्निं प्रयोजयेत् ॥ ११६ ॥

ततः कूप्याः समुद्धृत्य पारदस्यास्य चक्रिकाम् ।
तत्पृष्ठलग्नं गंधं च दूरीकृत्य विचक्षणः ॥
पुनस्तयोरसैरेनं मर्दयेदेकवासरम् ।
चतुर्यामं पचेदग्नौ तेन जीर्यति गंधकः ॥ ११७ ॥

उक्त विधिसे पारेको शुद्ध कर चुके तब पारा १६ पैसे भर और शुद्ध आंवलासार गंधक १६ पैसे भर लेवे, इन दोनोंकी खरलमें कजली करै फिर जलपीपल (जिसे पूर्वप्रान्तमें गंगतिरिया और मध्यदेशमें पनसगा कहते हैं) और गोमा इन दोनोंके रसमें उस कज्जलीको दो दिन घोटे जब सूखजाय तब आतशी शीशीपर कपडमिट्टी करके सुखालेवे और इस कज्जलीको उसमें भरके एक उत्तम हांडीमें रखे हांडीकी पेंदीमें पैसेसे डचौडा छेद करे और छेदके चारों ओर गीली मिट्टी लगाके सुखालेवे जिसमें हांडीकी वारू न निकले और छेदके नीचे लंबी ठीकरी रक्खे। उसके दोनों बाजूके छेद खुले रहें अथवा छेदके ऊपर अभ्रकका टुकडा रक्खे उसके ऊपर शीशी धरे और हांडीके मुख पर्यन्त बालू भरदेवे परन्तु शीशीकी गर्दन बालूसे बाहेर रहै फिर चूल्हेपर चढाकर दो लकडीकी आंच आठ पहरतक देवे पहिले चार प्रहर तक मंद आंच देना चाहिये फिर चौथे प्रहरसे आठवें प्रहरतक तीव्र आंच जलाना चाहिये जब ठंढी होजाय तब शीशीको फोडकर पारेकी टिकियाको निकाल लेवे उसमें जो गंधककी राख लगीहो उसको छूरीसे छुडायडाले और पारेकी टिकियाको खरलमें डालकर पीसे फिर गोमा और जलपीपलीके रसमें एक दिन घोटे जब सूखजाय तब पूर्वोक्त रीतिसे शीशीमें भरकर वालुकायंत्रमें चार प्रहरकी अग्नि देनेसे पारेमें बचा हुआ गंधक जल जाता है तब गंधकके जलनेकी परीक्षा करे ॥ ११५–११७ ॥

अथ जीर्णगंधकपरीक्षा ।

याममेकं परित्यज्य यामेषु त्रिषु बुद्धिमान् ।
प्रतियामार्द्धकं कूप्यां क्षिप्त्वा दीर्घं तृणं दृढम् ॥ ११८ ॥
गंधस्य तेन कर्त्तव्यो जीर्णाजीर्णस्य निर्णयः ।
जीर्णे गंधे विधग्धं स्यादजीर्णे गंधकान्वितम् ॥ ११९ ॥

प्रथमका प्रहर छोडकर दूसरे और तीसरे प्रहरमें परीक्षा करे दो दो घडीके अन्तरमें कडी और लंबी बांसकी अथवा लोहेकी सींक शीशीमें डाले जो सींक जली निकले तो गंधक जलगया यह समझना चाहिये और अग्नि जलाना बन्द

करदेवे क्योंकि गंधकके आश्रयसेही पारा अग्निमें ठहरता है यदि गंधक जलजानेपरभी अग्नि जलाई जाय तो शीशी फोरके पारा निकल जाता है यदि पिघली गंधकसे लिपटी हुई सींक निकले तो गंधक नहीं जला है यह समझना चाहिये तब फिर जब तक गंधक न जीर्ण होजाय तब तक निर्भय होकर आंच देवे ऊपर कहीहुई रीतिसे आधे आधे प्रहरमें परीक्षा करतारहै जब गंधक जलजावे तब आग जलाना बंद करे ठंढी होनेपर शीशीको फोडकर पारेकी टिकियाको निकाललेवे और टिकियामें लगीहुई गंधककी राखको छुडाकर साफ करलेवे ॥ ११८ ॥ ११९ ॥

जीर्णगंधं रसं ज्ञात्वा तोलयेत्कुशलो भिषक् ।
ततो गंधचतुर्थांशं दत्त्वा सूतं विमर्दयेत् ॥ १२० ॥
पूर्वोक्तयो रसैर्मर्द्य चतुर्यामं च पाचयेत् ।
स्वांगशीतलमुत्तार्य विषं कर्षमितं क्षिपेत् ॥ १२१ ॥
दृढं विमर्दयेत्सूतं तयोरेव रसैर्दिनम् ।
मंदाग्निना पचेत्पश्चाच्चतुर्याममतंद्रितः ॥ १२२ ॥
निर्मुक्तगंधकस्तर्हि जायतेऽसौ रसेश्वरः ।
अंते तुलितसूते तुल्यमानो यदा भवेत् ॥
तदा सिद्धः परिज्ञेयो रसश्चन्द्रोदयो बुधैः ॥ १२३ ॥

गन्धक जीर्ण होगया ऐसा निश्चय होनेपर पारेकी टिकियाको बुद्धिमान् वैद्य तौलकर पारेका चतुर्थांश अर्थात् चार पैसेभर गंधक डालके मर्दन करे पहले कहेहुए जलपीपल और गोमाके रसमें दो दिन घोटके वालुकायंत्रमें चार प्रहर तक मन्दाग्नि जलावे जिससे दो पैसेभर गंधक जलजाय एक प्रहर तेज आँच देनेसे पैसाभर गंधक जलता है और इतनेही समयमें मंदाग्निसे धेलेभर जलता है यह सिद्धान्त है। इस हिसाबसे ४ प्रहरकी मंद आंचसे दो पैसेभर गंधक जलता है, जब दो पैसाभर गंधक जलजाय तब शीशीको फोडकर पारेकी डलीको निकाल ले और गंधकके भस्मको छुरीसे दूर करे फिर खरलमें डार धेलेभर शुद्ध सिंगिया विष डाले और गोमा जलपीपलका रस डाल एक दिन खूब मर्दन करके वालुकायंत्रमें चार प्रहर धीमी आंच देवे। आंचके लिये बबूल महुएकी लकडी चार अथवा पांच अंगुल मोटी और हाथभर लंबी लेवे इस प्रकार

आंच देनेसे पारेमें गंधक जीर्ण होजाताहै विष डालनेसे पारेकी डली गंधककी राख छोडकर बैठ जाती है छुरी आदिसे खुरचनेकी आवश्यकता नहीं रहती आखीरमें पारेकी डलीको तोलना चाहिये पहलेके बराबर हो तो चन्द्रोदय सिद्ध होगया ऐसा निश्चय जाने यदि तोलमें अधिक हो तो फिर गोमा और जलपीपलके रसमें एक दिन घोटकर चार प्रहरकी दीपक अग्नि देवे आधिक आंच देनेसे पारा उड जाता है बहुधा ऐसा देखनेमें आया है इसलिये मंद आंच देवे, अथवा ४ पैसेभर शुद्ध सीसा पिघलाकर १६ पैसेभर पारामें मिलाकर शीतल करलेवे तब १६ पैसेभर गंधक मिलाकर प्रथम कहे हुए विधानसे आरंभ करे तो तीक्ष्ण अग्नि देनेसेभी पारा न उडे। इस चन्द्रोदयको पीसकर पक्की शीशीमें रख छोडे ॥ १२०-१२३॥

गुणाः ।

सद्यो जीर्णविपाचनोऽग्निजननो विड्बंधतृड्वान्तिनु-
न्मूत्रस्रावमपाकरोति मदनप्रोद्बोधकर्त्ता रतौ ॥
मूर्च्छां हन्ति सहिक्किकां मधुयुतो बल्यः प्रमादार्द्यक-
च्छैत्यस्वेदहरः प्रमेहमथनश्चन्द्रोदयाख्यो रसः ॥ १२४ ॥
कासे श्वासे फिरंगाख्ये रोगे च परमो हितः ।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तामरुचिं च नियच्छति ॥ १२५ ॥

चन्द्रोदय और लौंग दोनों एक२ तोला ले खरलमें एक घडी घोटके दो २ रत्तीकी पुडिया बाँधे रोगीको एक पुडियां खानेको देवे तो अजीर्णका शीघ्र नाश करता है, और भूँख बढाता है, बद्धकोष्ठताको दूर करता है, तृषा तथा वमनको नाश करताहै, मूत्रस्रावको शमन करता है, मैथुनके समय कामदेवको बढाताहै; मूर्च्छा और हिचकीको नाश करताहै, यदि सहतके साथ खाया जावे तो बल और कान्तिको उत्पन्न करता है, प्रसूत अथवा सन्निपातसे शीतल हुई देहको और पसीनेको नाश करताहै, और प्रमेहको दूर करता है, खांसी, श्वास, फिरंगरोगमें अत्यन्त हितकारी है, सैकडों वैद्योंसे त्यागेहुए अरुचिरोगको जो ज्वर दूर होने पर अठारह दिन रहनेसे रोगी मरजाताहै वहभी इस चन्द्रोदयके खानेसे दूर होजाती है ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

चन्द्रोदयस्य द्वितीयविधिः ।

पलद्वयं सुवर्णस्य सूतस्याष्टौ च मर्दयेत् ॥
एकीभूते च गंधस्य पलं षोडशकं क्षिपेत् ॥ १२६ ॥

शोणकार्पासकुसुमैः कन्याभिर्मर्दयेत्पृथक् ।
काचकूप्यां च संरुध्य वालुकायंत्रगं त्र्यहम् ॥
पचेत्सिद्धो रसः स स्याच्छ्रेष्ठश्चन्द्रोदयाभिधः ॥ १२७ ॥

सोनेके वर्क ४ पैसेभर शुद्ध पारा १६ पैसेभर दोनोंको मिलाकर घोटे जब मिल जायँ तब शोधा हुवा गंधक ३२ पैसेभर डालकर कपासके लाल फूलोंके साथ १ दिन और घीकुवारके रसमें १ दिन घोटे फिर सुखाकर आतशी शीशीमें सात कपरमिट्टी करके भरदेवे और पूर्वोक्त विधानसे वालुकायंत्रमें रखकर तीन दिन पचावे । चार २ अंगुल मोटी बबूलकी दो लकडियोंकी अठारह प्रहर आंच देवे चार प्रहर आंच देनेके अनंतर शीशीका मुख गुड और चूनेसे बन्द करदेवे जब शीतल होजावे तब उतार शीशीको तोडे और उसमेंसे लाल रंगरंगका कटोरीके समान जमाहुआ रस निकाललेवे यह चन्द्रोदय सर्वोत्तम है॥१२६–१२७॥

भक्षणविधिः ।

जातीफलं सकर्पूरं लवंगं मरिचानि च ।
पृथग्रससमानि स्युः कस्तूरीरसदिग्लवाः ॥ १२८ ॥
मासं हि भक्ष्यः पर्णेन जरारोगविनाशनः ।
सुप्रभाते तदभ्यासाद्विषं च विषवारि च ॥ १२९ ॥
सर्वं प्रशममायांति शीघ्रमेव न संशयः ।
केचिच्चतुर्गुणान्याहुः कर्पूरादीनि तद्रसात् ॥ १३० ॥

चन्द्रोदय, जायफल, भीमसेनी कपूर, लौंग, कालीमिर्च प्रत्येक एक २ रत्ती कस्तूरी पौने तीन चावल इनको मिलाकर एक महीना पानके साथ प्रातःकाल खानेसे जरारोग (बालोंका पकना, त्वचाका सिकुडना आदि) को दूर करता है सब भांतिके विषरोगोंको तथा विषैले पानीके पीनेसे जो रोग होते हैं उनको दूर करता है । किसी २ का मत है कि चन्द्रोदयसे चौगुने कर्पूरादिक लेवे ॥ १२८–१३०॥

चन्द्रोदयस्य तृतीयविधिः ।

रसं शुद्धतरं बद्धं स्थापयेत्खल्वशोभने ।
आनयेद्गंधकं पीतं महादिव्यं मनोहरम् ॥ १३१ ॥
गोदुग्धेन तु संशुद्धं समभागं प्रकल्पयेत् ।
गन्धार्द्धं तु शिलां रक्तां तालकं चैव तत्समम् ॥ १३२ ॥

सूर्यावर्त्तरसैर्दिव्यैर्मर्द्दयेच्च दिनत्रयम् ।
छायाशुष्के तु संजाते तीक्ष्णतैलेन भावयेत् ॥ १३३ ॥
उक्तभावे च संदत्ते शोषयेद्यत्नपूर्वकम् ।
काचकूप्यां कृतं तच्च वालुकेन हठाग्निना ॥ १३४ ॥
एकादशदिनान्येवं पाचयेत्परमं रसम् ।
स्वांगशीतलमुत्तार्य लोहखल्वे च निःक्षिपेत् ॥ १३५ ॥
पुनर्गन्धोऽत्र न प्रोक्तो भावेन भावितं मतम् ।
मर्दयेत्पूर्ववत्सम्यक्काचपात्रे निधापयेत् ॥ १३६ ॥
पुनर्विपाचयेत्सम्यगेकादशदिनान्यमुम् ।
पाचितं रसराजं तु स्वांगशीतलमुद्धरेत् ॥ १३७ ॥
पुनर्विमर्दयेदेनं पूर्वोक्तेन रसेन हि ।
अवशिष्टस्य गंधस्य पाकार्थं तु पुनः पचेत् ॥
संसिद्धे रसराजे तु जायते सिद्धिसाधनम्॥ १३८ ॥

उक्त प्रकारसे अति शुद्ध और बद्ध पारा लेवे और पारेकी बराबर गौके दूधसे शुद्ध किया हुआ आमलासार गंधक लेवे, और गंधकसे आधा मैनासिलका सत्व जो आगपर टिकसके लेवे, और इतनाही हरितालका सत्व अग्नि सहनेवाला लेवे, प्रथम पारे गंधककी कजली करे, फिर इस कजलीमें दोनों सत्व डाल हुरहुलके रसमें तीन दिन घोटे, जब छायामें सूख जाय तब राईके तेलकी भावना देवे, फिर सुखावे जब सूख जाय तब एक बडी आतशी शीशीमें भरकर शीशीको वालुकायन्त्रमें रक्खे और हांडीके नीचे छेदन करे, ग्यारह दिन तेज आंचदेवे जब छूने योग्य हो तब शीशीको फोडकर पारेकी चांदी निकाल लेवे और चांदीकी राख छूरीसे दूर करे फिर और गंधक न डाले और हुरहुरके रसमें तीन दिन घोटे फिर दूसरी शीशीमें भर वालुकायंत्रमें हांडीके नीचे छेदकर चार प्रहरकी आंच ग्यारह दिन देवे परंतु धीमी अग्नि देवे जिससे अवशिष्ट गंधक जलजाय पीछे शीशी फोडकर पारेकी चांदी निकाल लेवे ऊपरकी राख छूरीसे दूर करे फिर पारेकी,चांदी और शुद्ध गंधक छः पैसेभर डाल हुरहुरके रसमें तीन दिन घोटकर शीशीमें भर वालुकायंत्रमें हांडीके नीचे छेदकर चार प्रहरकी धीमी आंच देकर उडालेवे फिर शीशीको फोड रस निकाल लेवे और पीठीकी

राख दूर कर धेलेभर विष डालके हुरहुरके रसमें तीन दिन घोटे एक दिन राईके तेलमें घोट फिर हुरहुरके रसमें तीन दिन घोटे फिर शीशीमें भर हांडीके नीचे छेदकर वालुकायंत्रमें चार प्रहरकी मन्दाग्नि देवे कि बाकी गंधक जलजाय फिर रस निकाल उसकी राखको छूरीसे दूर करे फिर छः पैसे भर गंधक डालकर हुर-हुरके रससे तीन दिन घोटे और एक दिन राईके तेलमें घोटे फिर हुलहुलके रसमें तीन दिन घोटे और शीशीमें भरकर चार प्रहरकी मन्दाग्नि वालुकायंत्रमें देवे फिर शीशीमेंसे रस निकालकर छूरीसे उसकी पीठके भस्मको छुडाडाले और धेलेभर विषका चूर्ण इसमें डालकर हुलहुलके रससे तीन दिन घोटे और एक दिन राईके तेलमें घोटे पश्चात् हुलहुलके रससे तीन दिन घोटे फिर शीशीमें भरकर चार प्रहरकी मन्दाग्नि जलावे जिससे अवशिष्ट गंधक जलजाय पीछे शीशीको फोड रस निकाल लेवे और उसकी पीठकी राखको छूरीसे दूरकर खरलमें दो वार छः २ पैसेभर गंधक डाल हुलहुलके रसमें घोटे और हरदफे धेले २ भर विष डालकर उडावे उक्त प्रकार बाकी गंधकको जारण करता जाय तो यह चन्द्रोदय सर्वोत्तम बनकर तैयार होवे और सर्वकामना पूर्ण करे ॥१३१–१३८॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

गुणाः ।

शुद्धशुल्बे प्रदातव्यः सहस्रांशेन वेधयेत् ।
सुवर्णं जायते शुद्धं यथा जांबूनदोद्भवम् ॥ १३९ ॥
तिलमात्रप्रयोगेण तांबूलेन प्रयोजयेत् ।
जायते प्रबला बुद्धिर्बलं भीमसमं भवेत् ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण भक्ष्योयं सुभगैर्नरैः ॥ १४० ॥

शुद्ध तांबेमें हजारहवाँ भाग इसको डाले तो दिव्य सुवर्ण होजाय एक रत्ती लौंगके चूर्णके साथ पानमें तिलमात्र रोज खानेसे सात दिनमें बुद्धिको तीक्ष्ण करै और भीमसेनके समान बल करै क्षुधा बढावे, रुधिरविकारको और रोगमा-त्रोंको यथायोग्य अनुपानके साथ देनेसे दूर करे। इस क्रमसे सुभग मनुष्योंको इसे खाना चाहिये ॥ १३९ ॥ १४० ॥

अथ चतुर्थविधिः ।

कला (१६) कर्षमितं सूतं तत्समं गंधकं तथा ।
टंकषट्कं विषं दद्यात्पचेद्यंत्रे च वालुके ॥ १४१ ॥

मंदं मध्यं तथा तीक्ष्णमाग्निना नवयामसु ।
स्वांगशीते च विधिना रक्तवर्णं समाहरेत् ॥
क्षुधाशुद्धिकरो ज्ञेयो वातादिदोषनाशकः ॥ १४२ ॥

अथवा पारा और गंधक दोनोंको सोलह २ पैसे भर लेकर दोनोंकी कज्जली करे इसमें डेढ पैसे भर विषका चूर्ण डाले और कहीहुई विधिसे शीशीमें भर हांडीमें रक्खे और वालू भरदेवे, पीछे ९ प्रहर तेज आंच देवे फिर मंद करे और शीशीका मुख खुला रहनेदे जिससे उसके मुखसे आग बराबर निकलीरहे । इस प्रकार चार घडी पर्यन्त कर पीछे शीशीका मुख चूना और गुडसे बंद कर तीन प्रहर आंच देवे इस प्रकार नौ प्रहर आंच दे लकडियोंको अलग करे और अंगारे रहनेदेवे जब छूने योग्य होजाय तब शीशीको निकाल पानीमें भिगोकर उसकी कपरमिट्टीको अलग करे और शीशीको फोडकर उसके ऊपर जो १६ पैसे भरका लाल रंगका कटोरा निकाललेवे परन्तु शीशीके भीतर जो एक अंगुल मोटा पारेका कटोरा निकले उसको ग्रहण करे और गंधकको न लेवे और इस पारेके कटोरेको खरलमें डाल खूब बारीक पीस किसी उत्तम पात्रमें भरलेवे और इसको दो रत्ती खावे तो भूख बढती है, कोष्ठ शुद्ध होताहै, बादी दूर होती है, यह क्रिया सबसे सुगम है अन्य प्रकारकी क्रियाओंमें आँच देनेमें कभी पारा ठहरता है और कभी उडजाताहै । इस चन्द्रोदयमें आंच देनेके लिये चार या पांच अंगुल मोटी बबूलकी लकडियां जलाना चाहिये पारेको किसी औषधके रसमें घोटे परन्तु आंच इसी प्रकार देवे तौ मूर्खसे भी चन्द्रोदय सिद्ध हो और उडे नहीं और प्रथम चन्द्रोदयकी विधिसे जो आंच देना कहाहै वह चतुर वैद्योंसे बनताहै अन्यसे नहीं बनसकता ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अथ पंचमविधिः ।

हिंगलूद्भवसूतं च विमर्द्याथ दिनद्वये ।
आरग्वधरसे चाथ तथैव चित्रकोद्भवे ॥ १४३ ॥
अंकोटस्य रसे चाथ कुमारीसंभवे रसे ।
प्रत्येकरससंमर्द्य पातयंत्रेण चोत्क्षिपेत् ॥ १४४ ॥
विषेषूपविषेष्वेवं विधिनोत्पातयेद्बुधः ।
अथ चतुःपलं सूतं सैन्धवं द्विपलान्वितम् ॥ १४५ ॥

निंबूनीरेण संमर्द्य द्वियामं कांजिके तथा ।
सूतमात्रं विनिष्कृष्य ह्यहिफेनसमे क्षिपेत् ॥ १४६ ॥
धत्तूररससंयोगात्रिदिनं मर्दयेद्बुधः ।
संपचेद्वालुकायंत्रे ह्यादित्यप्रहरेषु वै ॥ १४७ ॥
एवं कृत्वा त्रिवारं च तं सूतं विधिना हरेत् ।
कर्षाष्टगंधपाषाणं चूर्णं कृत्वा विधानतः ॥ १४८ ॥
यावनालस्य चूर्णे वै संमेल्य गुटिकाः कृताः ।
संभोज्य कुक्कुटं चैकं तस्य विष्ठां समाहरेत् ॥ १४९ ॥
पातालसंज्ञके यंत्रे तस्य तैलं च पातयेत् ।
पूर्वोक्तपारदं तैले त्रिदिनं मर्दयेद्भृशम् ॥ १५० ॥
वालुकायंत्रयोगेन रात्रियामे पचेद्बुधः ।
चन्द्रोदयोऽयं दोषघ्नः पुरुषार्थप्रदायकः ॥
वीर्यस्तम्भकरश्चाथ क्लैब्य व्याधिविनाशकः ॥ १५१ ॥

अथवा प्रथम शिंगरफके पारेको अमलतास, चित्रक, अंकोट और घीकुवार इन प्रत्येकके रसमें दो २ दिन घोटे और प्रत्येक समय पारेको डमरूयंत्रमें डालकर उडालेवे फिर विष और उपविषोंमें दो २ दिन घोटके उडालेवे तिस पीछे यह पारा २० पैसे भर लेवे और उसमें १० पैसे भर सैंधवकी बुकनी डाल दो प्रहर नींबूके रसमें घोटे फिर कांजीके पानीसे दो प्रहर घोटे, उपरान्त उस पारेको सैंधव लवणसे जुदा करलेवे और इसमें २० पैसे भर अफीम मिलाकर तीन दिन धतूरेके रसमें खरल करे रात्रिको न घोटे जब सूखजाय तब शीशीपर सुलेमानी मुद्रा कर और उसके मुखपर कपरमिट्टी कर सुखावै और वालुकायंत्रमें बराबर १२ प्रहरकी आंच देवे इस प्रकार तीन शीशी फेरे पीछे शीशीके पारेको निकालकर रखलेवे । फिर आठ पैसे भर गंधक ज्वारके आटेमें मिलाकर छोटी २ गोलियां बांध मुरगेको खिलावे और उसको एकही स्थानपर बंद रहने देवे और उसकी वीठको इकट्ठा करतारहे फिर उस वीठको धूपमें सुखा कर पातालयंत्र द्वारा उसका तेल निकाललेवे इस तेलमें पूर्वोक्त शीशीके पारेको ३ दिन घोटे रात्रिको न घोटे जब गाढा होजावे तब पूर्वोक्त सुलेमानी मुद्रा की हुई शीशीमें डालके मुख बंदकर वालुकायंत्रमें बराबर १२ प्रहरकी आँच जलावे जब छूने योग्य होजाय तब

शीशीसे सिद्ध चन्द्रोदयको निकाल लेवे यह चन्द्रोदय अत्यन्त गुणकारक है विशेषकरके करमैथुन (हथरस) आदिसे उत्पन्न होनेवाले नपुंसकताको दूर करता है ॥ १४३-१५१ ॥

अथ क्षेत्रीकरणम् ।

प्रथमं मारयेदभ्रं शास्त्रोक्तं सुपरीक्षितम् ।
पश्चात्तं योजयेद्देहे सूतकं वीर्यसूतकम् ॥ १५२ ॥
अक्षेत्रीकरणात्सूतोऽमृतं चापि विषं भवेत् ।
तस्मादभ्रं रसस्यादौ क्षेत्रीकरणमिच्छति ॥ १५३ ॥
सेवनीयं प्रयत्नेन मासयुग्मं निरंतरम् ।
गुंजाद्वयं समारभ्य यावन्माषद्वयं भवेत् ॥ १५४ ॥
क्षेत्रमेवं भवेद्देहे सूतवीर्यप्रसाधकम् ।
अक्षेत्रे योजितः सूतो न प्ररोहेत्कदाचन ॥ १५५ ॥
निद्रालस्यं शिरोदाहो ह्यंगभंगोऽरुचिस्तमः ।
नासायां जायते शूलस्त्वन्यथा योजिते रसे ॥ १५६ ॥

आयुर्वेदशास्त्रके कहे हुए विधानसे परीक्षा कियाहुवा सुन्दर कृष्णाभ्रकको भस्मकर उसको पहले खावे, पीछे पारेको खाना उत्तम है, क्योंकि क्षेत्रीकरण किये बिना पारा अमृतके समान गुणदायक होनेपर भी विषके समान होजाता है इससे पहले अभ्रक खाकर क्षेत्र बनालेवे प्रथम दो महीने तक दोरत्तीसे आरंभ करे और दो मासे तक क्रमसे मात्राकी वृद्धि करै इस प्रकार अभ्रक नित्य इलायचीके संग खाय तब क्षेत्र अर्थात् देह पारा खाने योग्य होवे बिना क्षेत्रीकरणके पारा कदापि फलदायक नहीं होता; किन्तु निद्रा, आलस्य, मस्तकमें जलन, हडफूटन, अरुचि, आंखोंके सामने अंधेरा दीखना, नाकमें पीडा इन रोगोंको प्रगट करता है अब कहते हैं कि रससिन्दूर भी मूर्च्छित पारेका भेद है इस लिये चन्द्रोदय कहनेके अनन्तर रससिन्दूर बनानेकी विधि लिखते हैं ॥ १५२-१५६ ॥

रससिन्दूरविधिः ।

सूतं पञ्चपलं स्वदोषरहितं तत्तुल्यभागो बलि-
र्द्वौ टंकौ नवसादरस्य तुवरीकर्षश्च संमर्दितः ।

कुप्यां काचभुवि स्थितश्च सिकतायंत्रे त्रिभिर्वासरैः
पक्वो वह्निभिरुद्भवत्यरुणभः सिन्दूरनामा रसः ॥ १५७ ॥

शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक पांच २ पल, नौसादर ८ मासे, फिटकरी १ तोला, इन सबको घोटकर कपरमिट्टी युक्त आतशी शीशीमें भरकर वालुकायंत्रमें शीशीको रख तीन दिन मंद मध्य और तीक्ष्ण आंच देवे तो सूर्यके समान लाल वर्णवाला रससिंदूर तैयार होवे ॥ १५७ ॥

रससिन्दूरस्य द्वितीयविधिः ।

द्विगुणगंधकः ।

रसभागो भवेदेको गन्धको द्विगुणो मतः ।
खल्वे कज्जलिसंकाशं काचकुप्यां क्षिपेत्सुधीः ॥ १५८ ॥
खर्परे वालुकापूर्णे स्थापयेत्तत्र कूपिकाम् ।
इष्टिकां च मुखे दत्त्वा कृत्वा कर्पटमृत्तिकाम् ॥ १५९ ॥
सप्तविंशतियामैश्च सितां कूपीं विपाचयेत् ।
पश्चादूर्ध्वं समायातं रसज्ञाता विचक्षणः ॥ १६० ॥
हंसपादसमं वर्णं निष्पन्नं रसमादिशेत् ।
गुंजायुग्मं प्रदातव्यं सितादुग्धानुपानतः ॥ १६१ ॥
प्रमेहे श्वासकासे च षंढे क्षीणेऽल्पवीर्यके ।
हरगौरीरसो देयः सर्वरोगप्रशांतये ॥ १६२ ॥

शुद्ध पारा एक भाग, शुद्ध गंधक दो भाग, दोनोंको खरलमें खूब घोटे जब काजलके रंगकी कजली होजाय तब आतशी शीशीमें सात कपरमिट्टी करके सुखायके उसमें पूर्वोक्त कजली भर वालुकायंत्रमें रख मुखमें ईटकी डाट बंद कर उसके नीचे २७ प्रहरतक अग्नि जलावे पारेको ऊपर आया जानकर उतार लेवे इसका रंग लाल होजाता है इसको २ रत्ती दूध और मिश्रीके संग सेवन करनेसे प्रमेह, श्वास, खांसी, नपुंसकता, अल्पवीर्यपन आदिको नाश करता है । यह हरगौरी रस सर्व रोगोंको शांत करता है ॥ १५८-१६२ ॥

रससिन्दूरस्य तृतीयविधिः ।

षड्गुणगंधकः ।

हिंगुलोत्थरसं भागं षड्भागं शुद्धगंधकम् ।
खल्वमध्ये विनिक्षिप्य वालुकायंत्रगं पचेत् ॥ १६३ ॥

काचकुप्यां विनिक्षिप्य वालुकायंत्रगं पचेत्।
पाचयेत्सप्तरात्राणि सिंदूरं भवति ध्रुवम् ॥ १६४ ॥
वल्लमात्रं प्रयुंजीत मधुना लेहयेत्परम्।
स्तम्भनं दंडवृद्धिं च वीर्यवृद्धिं बलान्वितम् ॥ १६५ ॥
करोति तेजः पुष्टिं च महामत्तगजेन्द्रवत्।
षंढत्वं वंध्यरोगं च नाशयेत् सर्वरोगजित् ॥ १६६ ॥
दिनमेकं शतस्त्रीभिः रमते तृप्तिवीर्यवान्।
निरंतरमनोल्लासं रतिं प्रेम्णा सनातनः ॥ १६७॥
शतानि पंच षट्कं च रोगाणां नाशयेद्ध्रुवम्।
नाम्ना षड्गुणगन्धोऽयं विश्वामित्रेण निर्मितः ॥ १६८ ॥

हिंगुलसे निकाला पारा एक भाग और गंधक ६ भाग दोनोंको खरलमें डाल कजली करे। फिर घीकुवारका रस डाल मर्दन करे, फिर उसे सुखाकर कांचकी शीशीमें भर वालुकायंत्रमें पचावे, सात दिन रात बराबर अग्नि देवे, जब ठंढा होजावे तब शीशीको फोड लालरंगका सिंदूर निकाल लेवे, इस रससिन्दूरको ३ रत्ती शहदके संग खावे तो स्तम्भन करे, लिंग और वीर्यकी वृद्धि करता है बल, तेज और पुष्टिकी वृद्धि मदमत्त हाथीके समान बलवान् करता है नपुंसकत्व, बन्ध्यापना इत्यादि सब रोगोंको दूर करे इसका खानेवाला एक दिनमें सौ स्त्रियांको भोगे और उनको आनंद देवे और पांचसौ छप्पन रोगोंका नाशक है यह षड्गुण गंधक नाम रससिन्दूर विश्वामित्रऋषिने निर्माण कियाथा॥१६३-१६८॥

रससिन्दूरानुपानम्।

वाते सक्षौद्रपिप्पल्यपि च कफरुजि त्र्यूषणं साग्निचूर्णं
पित्ते शैलासितेन्दु व्रणवति च वरा गुग्गुलुश्चारुबद्धः।
चातुर्जातेन पुष्टौ हरनयनफलाशाल्मलीपुष्पवृत्तं
किंवा कान्तालल्लाटाभरणरसपतेः स्यादनूपानमेतत् ॥ १६९ ॥

वातरोगोंमें पीपल सहतके साथ, कफरोगोंमें सोंठ, मिर्च, पीपल और चित्रकके चूर्णके साथ, पित्तरोगोंमें शिलाजीत, मिश्री और कपूरके साथ, व्रणमें त्रिफला और गूगुलके साथ चातुर्जात (तज, पत्रज, इलायची, नागकेशर) के साथ

पुष्टिके लिये अथवा त्रिफला और सेमरके मूसलेके चूर्णके साथ पुष्टिको देता है, यह रससिन्दूरके अनुपान कहे हैं ॥ १६९ ॥

कृष्णभस्म ।

धान्याभ्रकं रसं तुल्यं मारयेन्मारकद्रवैः ।
दिनैकं तेन कल्केन वस्त्रं लिप्त्वा तु वर्तिकाम् ॥ १७० ॥
विलिप्य तैलैर्वर्ति तामेरंडोत्थैः पुनः पुनः ।
प्रज्वाल्य च तदा भांडे गृह्णीयात्पतितं च यत् ॥ १७१ ॥
कृष्णभस्म भवेत्तच्च पुनर्मर्द्यं नियामकैः ।
दिनैकं पातयेद्यंत्रे कन्दुकाख्ये न संशयः ॥ १७२ ॥
मृतः सूतोभवेत्सत्यं तत्तद्रोगेषु योजयेत् ॥१७३॥

पारेके बराबर धान्याभ्रक लेवे उसको मारकवर्गसे एक दिन मारण करे। (मारकवर्ग आगे कहेंगे) फिर उसके रससे एक कपडेमें लेप करके धूपमें सुखाकर बत्ती बनावे उसमें उस कजलीको पहलेही रखदे । और उसको अंडीके तेलमें भिगोकर जलावे और उसके नीचे एक पात्र रक्खे उस बत्तीद्वारा जो पारा उसमें टपके उसे लेलेवे वह कृष्णभस्म होगी फिर नियामक द्रव्योंसे उस पारे और अभ्रकको खरल करे, फिर एक दिन कंदुक (डमरूयंत्र) में पातन करे तो पारा मरकर कृष्णभस्म होवे । यह पृथक् २ अनुपानसे सर्व रोगोंको नाश करता है ॥ १७०-१७३ ॥

पीतभस्म ।

भूधात्रीहस्तिशुंडीभ्यां रसं गंधं च मर्दयेत् ।
काचकूप्यां चतुर्यामं पक्वः पीतो भवेद्रसः ॥ १७४ ॥

पारे और गंधककी कजलीको भुइआंवरा और हथसुंडीके रससे घोटे वालुकायंत्रमें चार प्रहरकी अग्नि देवे तो पारेकी पीले रंगकी भस्म होजाती है ॥ १७४ ॥

द्वितीयकृष्णभस्म ।

सूतं गंधकसंयुक्तं कुमारीरसमर्दितम् ।
कृष्णवर्णं भवेद्भस्म देवानामपि दुर्लभम् ॥ १७५ ॥

पारा और गंधककी कजली करके घीकुवारके रसकी भावना देकर वालुकायंत्रमें पाचन करनेसे देवताओंको भी दुर्लभ कृष्णभस्म होजाती है ॥ १७५ ॥

नीलभस्म ।

वाराहीकन्दसंयुक्तं रसकेन समन्वितम् ।
नीलवर्णं भवेद्भस्म वलीपलितनाशनम् ॥ १७६ ॥

पारा, गंधक और खपरियाको वाराहीकंदके रससे घोटकर वालुकायंत्रमें पचानेसे नीलभस्म होती है इसके सेवन करनेसे बाल पकना त्वचा सिकुडना आदि वृद्धतापन दूर होता है ॥ १७६ ॥

श्वेतं पीतं तथा रक्तं कृष्णं चेति चतुर्विधम् ।
लक्षणं भस्मसूतानां श्रेष्ठं स्यादुत्तरोत्तरम् ॥ १७७ ॥

सफेद, पीली, लाल और काली ऐसे पारेकी भस्म है इसमें उत्तरोत्तर एकसे एक श्रेष्ठ हैं ॥ १७७ ॥

द्विविधभस्म ।

सूतभस्म द्विधा ज्ञेयमूर्ध्वगं तलगं तथा ॥ १७८ ॥

पारेकी भस्म दो प्रकारकी होती है । एक तो ऊर्ध्वग जो ऊपरकी शीशीकी पैंदीमें बैठ जाती है ॥ १७८ ॥

यदुक्तं कृष्णपीतादि नायं भस्ममृतस्य च ।
मूर्च्छनस्य प्रकारोऽयं ज्ञेयश्चात्र क्रमात्त्वया ॥ १७९ ॥

हे पुत्र ! चन्द्रोदय अथवा कृष्ण पीत आदि भस्म जो हमने कहे हैं वे मृत पारदकी नहीं है, वे केवल मूर्च्छित पारेके प्रकार हैं सो तुमको जानना चाहिये ॥ १७९ ॥

सर्वाङ्गसुंदरो रसः ।

मर्दयेद्रसगंधौ च हस्तिशुंडीद्रवैर्दृढम् ।
भूधात्रिकारसैर्वापि यावच्च दिनसप्तकम् ॥ १८० ॥
विघर्ष्य वालुकायंत्रे मूषायां सन्निवेशयेत् ।
दिनमेकं ददेदग्निं मंदंमंद निशावधि ॥ १८१ ॥
एवं निष्पद्यते पीतः शीतः सूतस्तु गृह्यते ।
पर्णखंडेन तद्गुंजां भक्षयेच्छ्रूयतां मम ॥ १८२ ॥
क्षुद्बोधं कुरुते पूर्वमुदराणि विनाशयेत् ।
ज्वराणां नाशनः श्रेष्ठस्तद्वच्छ्रीसुखकारकः ॥ १८३ ॥

हृदयोत्साहजननः सुरूपतनयप्रदः ।
बलप्रदः सदा देहे जरानाशनतत्परः ॥ १८४ ॥
अंगभंगादिकं दोषं सर्वं नाशयति क्षणात् ।
एतस्मान्नापरः सूतो रसात्सर्वांगसुन्दरात् ॥ १८५ ॥

पारा और गंधकको हथशुंडी तथा भूँई आंवलेके रससे सात २ दिन घोटे, फिर इस पारेकी पिट्ठीको एक मूषामें भरके वालुकायंत्रमें रखकर एक दिन रात मंद २ अग्नि देवे तो पारेकी पीली भस्म होजाती है इसमेंसे एक रत्ती पानके टुकडेमें रखके खाय तो भूखको बढावे उदरव्याधियोंको नाश करे, ज्वरोंके नाश करनेमें श्रेष्ठ है आनन्ददायक है, हृदयमें उत्साह उत्पन्न करता है, सुन्दर रूपयुक्त पुत्र देताहै, हमेशा देहमें बलको देताहै बुढापेको दूर करता है, अंगभंगादि सर्व विकारोंको क्षणमात्रमें नाश करता है, इस पारेसे श्रेष्ठ दूसरा पारा नहीं है इसको सर्वांगसुन्दर रस कहते हैं जो वैद्य चन्द्रोदयको नहीं जानते वह रसकर्पूरका संग्रह करते हैं सद्वैद्य इसका उपयोग नहीं करते परन्तु साधारण वैद्योंकी समझमें इससे बढकर दूसरा रस नहीं है लोगोंके ठगनेके लिये इसका नाम पारद भस्म बतलाते हैं रस कर्पूर नहीं कहते क्योंकि उनका भेद खुलजाय और वे इस क्रियाको गुप्त रखते हैं कोष्ठबद्ध जलोदर और रेचन (जुलाब) में चमत्कार दिखानेके लिये इसको देते हैं ॥ १८०-१८५ ॥

गंधकेन विना सूतो द्विधा सम्मूर्च्छितो भवेत् ।
प्रथमं रसकर्पूरं वक्ष्ये गुणगणान्वितम् ॥ १८६ ॥

पारा दो प्रकारसे मूर्च्छित होता है उसमें अनेक गुणयुक्त रसकपूरकी विधि कहते हैं ॥ १८६ ॥

रसकर्पूरविधिः १ ।

शुद्धसूतसमं कुर्यात् प्रत्येकं गैरिकं सुधीः ।
इष्टिकां खटिकां तद्वत् स्फटिकां सिन्धुजन्म च ॥ १८७ ॥
वल्मीकक्षारलवणं भांडरंजनमृत्तिकाम् ।
सर्वाण्येतानि संचूर्ण्य वाससा चापि शोधयेत् ॥ १८८ ॥
एभिश्चूर्णैर्युतं सूतं स्थालीमध्ये परिक्षिपेत् ।
तस्यां स्थाल्यां मुखे स्थालीमपरां धारयेत्समाम् ॥ १८९ ॥

सर्वाङ्गकुंठितमृदा मुद्रयेदुभयोर्मुखम् ।
संशोष्य मुद्रयेद्भूयो भूयः संशोष्य मुद्रयेत् ॥ १९० ॥
सम्यग् विशोष्य मुद्रान्ते स्थालीं चुल्ल्यां विधारयेत् ।
अग्निं निरंतरं दद्याद्यावद्दिनचतुष्टयम् ॥ १९१ ॥
अंगारोपरि तद्यंत्रं रक्षेद्यत्नादहर्निशम् ।
शनैरुद्घाटयेद्यंत्रमूर्द्ध्वस्थालीगतं रसम् ॥
कर्पूरवत्सुविमलं गृह्णीयाद्गुणवत्तरम् ॥ १९२ ॥

शुद्ध पारा, गेरू, पुरानी ईटका चूर्ण, सफेद खडिया मिट्टी, फिटकरी, सैंधव-नमक, बांबीकी मिट्टी, खारी नमकका विष (जिसमें कुम्हार बरतन रंगते हैं) यह सब सम भाग इन सबको अलग २ पीसकर कपडछान करके पृथक् २ पारेके साथ मिलाकर दो दो प्रहर घोटे, पीछे नीचेकी हांडीमें चार कपरमिट्टीकर इसमें पारेको भरकर दूसरी हांडीसे मुख बंद कर डमरूयंत्र बनावे फिर दोनों हांडियोंके मुख पर चार कपडमिट्टी करे और तीन दिन सुखावे पश्चात् चार लकडियोंकी ३२ प्रहर प्रचंड अग्नि देवे, इसके बाद चार प्रहर अंगारोंपर रक्खे जब स्वांग-शीतल होजाय तब उतार कर टेढा रक्खे और टेढा ही खोले ऊपरकी हांडीमें जो कपूरके समान पारा लगा है उसको निकाललेवे ॥ १८६–१९२ ॥

स च देवकुसुमचंदनकस्तूरीकुंकुमैर्युक्तः ।
भुक्तो हरति फिरंगव्याधिं सोपद्रवं घोरम् ॥ १९३ ॥
विंदति वह्नेर्दीप्तिं पुष्टिं वीर्यबलं विपुलम् ।
रमयति रमणीशतकं रसकर्पूरस्य सेवकः सततम् ॥ १९४ ॥

लौंग, सफेद चंदन दो दो मासे, कस्तूरी २ रत्ती, केशर ४ रत्ती मिलाकर खावे तो गरमीकी बीमारी उपद्रवसमेत दूर होवे, अग्नि प्रदीप्त होती है, देह पुष्ट होती है, अपार बल और वीर्य उत्पन्न होता है, रसकपूर हमेशा सेवन करनेसे सैकडों स्त्रियोंसे रमण करनेकी शक्ति होती है, रसकपूरकी मात्रा बलवान्को एक रत्ती और निर्बलको आधी रत्ती देनेसे लगभग आठ बार वमन और काले पीले लाल रंगके आम संयुक्त रेचन (दस्त) होते हैं इतना होने पर भी बल नहीं क्षीण होता इसके खानेसे कुछ उष्णता (गरम) मालूम होती है इस लिये शिशिर और हेमन्त ऋतुमें इसका सेवन करना योग्य है इसके सेवन करनेसे सात दिनमें वातविकार

दूर हो जाते हैं परन्तु एक मास तक सेवन करना अधिक उपयोगी होता है, दूध भात पथ्य और नमक खटाई लाल मिर्च तेल अपथ्य समझना चाहिये॥१९३॥१९४॥

रसकर्पूरस्य द्वितीयो विधिः २ ।

पिष्टं पांशुपटुप्रगाढममलं वज्राम्बुना चैकतः
सूतं धातुयुतं खटीतवलितं तत्संपुटे रोधयेत् ।
अंतःस्थं लवणस्य तस्य चलते प्रज्वाल्य वह्निं हठा-
द्वस्तं ग्राह्यमथेन्दुकुन्दधवलं भस्मोपरिस्थं शनैः ॥ १९५ ॥

पारेको खारी नमक और थूहरके दूधके साथ घोटे पीछे लोहेके बरतनमें खडियासे मुख बंद कर संपुट करे, पश्चात् नमकभरी हांडीमें उसको रख दूसरी हांडीका मुख मिलाकर मिट्टीसे अच्छी तरह बंद करके सुखानेके बाद एक दिन नीचे अग्नि देवे तो ऊपरकी हांडीमें सफेद रंगकी भस्म चिपक जायगी उसे युक्तिसे निकाल लेवे इसे रसकपूर कहते हैं ॥ १९५ ॥

गुणाः ।

तद्वल्लद्वितयं लवंगसहितं प्रातः प्रभुक्तं नृणा-
मूर्ध्वं रेचयति द्वियाममसकृद्देयं जलं शीतलम् ।
एतद्धन्ति च वत्सरावधि विषं षाण्मासिकं मासिकं
शैलोत्थं गरलं मृगेन्द्रकुटिलोद्भूतं च तात्कालिकम् ॥ १९६ ॥

जो मनुष्य लौंगके साथ रसकपूरको दो वल्ल (छः रत्ती) खाय तो उसे दो प्रहर पीछे दस्त हों उसके उपरान्त शीतल जल पीना चाहिये । एक वर्षका विष या छः महीनेका अथवा एक महीनेका खाया हुआ विष शैलोत्थ (स्थावर अथवा धातुज) विष सिंहनखविष और तात्कालिक (तुरत खाये हुए अथवा सर्प लूता वृश्चिक आदिके जंगम) विषको नाश करता है ॥ १९६ ॥

रसकर्पूरविधिः ३ ।

पारदः स्फटिकश्चैव हीराकासीसमेव च ।
सैन्धवं हि समांशेन विंशांशं नवसादरम् ॥ १९७ ॥
खल्वे विमर्द्य सर्वाणि कुमारीरसभावना ।
क्रमवृद्धाग्निना पक्वो रसः कर्पूरसंज्ञकः ॥ १९८ ॥

पारा, फिटकरी, हीराकसीस तथा सैंधव निमक सब बराबर २ लेवे सबका बीसवां भाग नवसादर ले सबको खरलमें घोट घीकुवारके रसकी भावना देकर क्रमसे मंद मध्य और तीव्र अग्नि देनेसे रसकपूरनामक रस तैयार होवे॥१९७॥१९८॥

रसकपूरविधिः ४ ।

गैरिकतुवरीकटुकासैंधवगंडीरजःकुडवम् ।
प्रत्येकं दृढहंड्यां कृत्वा रसभूयरजदेयम् ॥ १९९ ॥
कुडवमिताथ तदूर्ध्वं देया हंडी तथास्य मुखे ।
अथ तत्सन्धेर्मुद्रां कृत्वा तदधो हुताशनोज्ज्वाल्य ॥ २०० ॥
अर्द्धमणषट्कप्रमितैर्दारुभिरुनातिदुर्बलस्थूलैः ।
अग्निं क्रमेण दद्याद्गुरुदर्शितवर्त्मना द्युनिशम् ॥ २०१ ॥
तदनु ततो यंत्रवरादुत्तार्य कर्पूरसन्निभं सूतम् ।
आदाय काचकुंभे निधाय नवसादरं दद्यात् ॥ २०२ ॥
संमर्द्य चाथ कोष्ठैरर्द्धमणसंमितैः पचेद्रसम् ।
चुल्लीहंडिकमध्ये वितस्तिचतुरंगुलावकाशं तु ॥ २०३ ॥
कुर्यात्क्रमेण तदधः प्रज्वाल्य मध्यमं चाग्निम् ।
धवलमथोपरि लग्नं युक्त्या संगृह्य रक्षयेद्यत्नात् ॥ २०४ ॥

गेरू, फिटकरी, कुटकी, सैंधवनमक, और ईटका चूर्ण इन प्रत्येकको एक २ पाव भर लेवे हंडियामें भर उसमें पारा रक्खे पीछे पावभर पहले कहाहुआ चूर्ण पारेके ऊपर रखकर दूसरी हांडीसे उसका मुख बंद कर सन्धियोंको अच्छी तरह लेप कर बन्द करदे पश्चात् भट्ठीमें चढाय ३ मनलकडी वा उपलोंकी अग्नि गुरुकी बताईहुई रीतिसे देवे तो रसकपूर सिद्ध होवे शीतल होनेपर धीरजसे हांडीको खोलके ऊपर लगेहुए सफेद रसकपूरको निकाल लेवे और समान भाग नवसादर डालकर पीसे और काचकी शीशीमें भर बीस सेर लकडियोंकी आंच देवे इस प्रकारकी हांडी और अग्निका एकबालिस्त और चार अंगुलका अन्तर रहे इस प्रकार मध्यमाग्नि दे जब शीतल होजाय तब ऊपर चन्द्रमाके समान सफेद भस्मको मानपूर्वक निकाललेवे ॥ १९९-२०४ ॥

रसकपूरानुपानम् ।

वल्लवल्लार्द्धमानेन गुडैर्जीर्णैः समं ददेत् ।
यथोचितानुपानेन सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ २०५ ॥

दुग्धौदनं तु पथ्यं देयं चास्मिंश्च तांबूलम् ।
हरति समस्तान्रोगान् कर्पूराख्यो रसो नृणाम् ॥ २०६ ॥

रसकपूर तीन अथवा डेढ रत्ती पुराने गुडके साथ खावे अथवा यथोचित रोगके अनुपानसे खावे दूध भातका पथ्य करे पान खावे यह रसकपूर मनुष्योंके समस्त रोगोंको दूर करताहै ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

फिरङ्गरोगे दातव्यो रसकर्पूरसंज्ञकः ।
अन्यत्र न प्रयोक्तव्यो रसज्ञानविचक्षणैः ॥ २०७ ॥

बुद्धिमानोंको चाहिये कि प्रायः फिरंगरोगमें ही रस कपूर संज्ञक पारदका उपयोग करे अन्यत्र न करे ॥ २०७ ॥

इति मूर्च्छाप्रकारस्ते विधिना कथितो मया ।
बंधनस्याधुना वक्ष्ये प्रकारं शिष्यसत्तम ॥ २०८ ॥

इस प्रकार मूर्च्छाप्रकारका विधिवत् कथन कर अब हे शिष्यसत्तम ! बंधन प्रकार सुनो ॥ २०८ ॥

द्विधा वै बध्यते सूतः सबीजोऽबीज एव च ।
औषधीभिः सबीजस्तु निर्बीजो दिव्यभेषजैः ॥ २०९ ॥

सबीज और निर्बीज इन दो प्रकारोंसे पारेका बंधन होता है जो अभ्रक सत्व सोना चांदी तांबा और लोहके संयोगसे बांधाजावे उसे सबीज और जा दिव्य औषधियोंके संबन्धसे बांधाजावे उसे निर्बीज कहते हैं बंधन खोट जलौकादि भेदसे औरभी अनेक प्रकार इसके हैं तिनमें मुख्य २ बंधनोंके नाम और उनके लक्षण लिखते हैं ॥ २०९ ॥

पंचविंशतिसंख्याकान्रसबंधान्प्रचक्ष्महे ।
येन येन हि चांचल्यं दुर्ग्रहत्वं च नश्यति ॥ २१० ॥
प्रोक्तानि रसराजस्य बंधनानि च वार्त्तिकैः ।
हठारोटौ तदाभासः क्रियाहीनश्च पिष्टिकः ॥ २११ ॥
क्षारः खोटश्च पोटश्च कल्कबंधश्च कज्जलिः ।
सजीवश्चैव निर्जीवो निर्बीजश्च सबीजकः ॥ २१२ ॥
शृंखलाद्रुतिबंधौ च बालकश्च कुमारकः ।
तरुणश्च तथा वृद्धो मूर्त्तिबद्धस्तथा परः ॥ २१३ ॥

जलबद्धोऽग्निबद्धश्च सुसंस्कृतकृताभिधः ।
महाबंधाभिधश्चेति पंचविंशतिरीरिताः ॥ २१४ ॥
केचिद्वदन्ति षड्विंशं जलौकाबंधसंज्ञकम् ।
सतावन्नेष्यते देहे स्त्रीणां द्रावे प्रशस्यते ॥ २१५ ॥

पचीस प्रकारके रसबंधनोंको कहते हैं जिनसे पारदकी चंचलता और दुर्ग्रहत्व दूर होताहै वह भेद यह है १ हठ २ आरोट ३ आभास ४ क्रियाहीन ५ पिष्टिक ६ क्षार ७ खोटक ८ पोट ९ कल्कबन्ध १० कज्जली ११ सजीव १२ निर्जीव १३ निर्बीज १४ सबीज १५ शृंखलाबद्ध १६ द्रुतिबंध १७ बालक १८ कुमार' १९ तरुण २० वृद्ध २१ मूर्त्तिबद्ध २२ जलबद्ध २३ अग्निबद्ध २४ सुसंस्कृत २५ महाबंध और कोई आचार्य जलौकाबन्ध छब्बीसवां कहते हैं वह देहके अर्थ तो उत्तम नहीं परंतु स्त्रीद्रावणमें प्रशंसा योग्य हैं ॥२१०--२१५॥

हठरसः ।

हठो रसः स विज्ञेयो सम्यक् शुद्धिविवर्जितः ॥
संसेवितो नृणां कुर्यान्मृत्युं व्याधिं समुद्धतम् ॥ २१६ ॥

शुद्धिहीन पारेको हठरस कहते हैं इसके सेवनसे मनुष्यको अनेक व्याधि और मृत्यु होती है ॥ २१६ ॥

आरोटरसः ।

सुशोधितो रसः सम्यगारोट इति कथ्यते ।
सक्षेत्रीकरणे श्रेष्ठः शनैर्व्याधिविनाशनः ॥ २१७ ॥

विधिपूर्वक शोधन किये पारेको आरोट कहते हैं यह क्षेत्रीकरणमें श्रेष्ठ है और धीरे २ रोगोंको नाश करता है ॥ २१७ ॥

आभासरसः ।

पुटितोऽधो रसो याति योगं मुक्त्वा स्वभावताम् ॥
भावितो रसमूलाद्यैराभासो गुणवैकृते ॥ २१८ ॥

पुट दिया हुआ रस जो योगको छोड अपने स्वभावको प्राप्त हो और नीचेको जावे जिसमें मूलादिके रसकी भावना दी गई हो उसको आभास रस कहते हैं२१८

क्रियाहीनः ।

अशोधितस्तु लोहाद्यैः साधितो यो रसोत्तमः ।
क्रियाहीनः स विज्ञेयो विक्रियां यात्यपथ्यतः ॥ २१९ ॥

जो रस शुद्ध किया न हो और सुवर्णचांदी आदिसे सिद्ध किया जाय उसको क्रियाहीन कहते हैं । यह कुपथ्य करनेसे देहमें विकारको प्राप्त होताहै ॥ २१९ ॥

पिष्टिकबंधः ।

तीव्रातपे गाढतरावमर्दात्पिष्टी भवेत्सानवनीतरूपा ।
ख्यातः ससूतः किल पिष्टिबद्धः संदीपनः पाचनकृद्विशेषात् ॥ २२० ॥

पारेको अत्यन्त तेज धूपमें रखकर घोटनेसे यदि मक्खनके समान पिंडी होजावे तो उस पारेको पिष्टिबद्ध पारा कहते हैं विशेष करके इसको दीपन पाचन कर्त्ता जानना ॥ २२० ॥

क्षारबद्धः ।

शंखशुक्तिवराटाद्यैर्योऽसौ संसाधितो रसः ।
क्षारबद्धः परंदीप्तिपुष्टिकृच्छूलनाशनः ॥ २२१ ॥

जिस पारेको शंख, शीप, कौडी, आदिके खारसे शोधित किया हो उसको क्षारबद्ध कहते हैं यह अत्यन्त अग्निवर्द्धक पुष्टिकारक और शूलनाशक होताहै२२१

खोटबद्धः ।

बद्धो यः खोटतां यातो ध्मातो ध्मातः क्षयं व्रजेत् ।
खोटबद्धः स विज्ञेयः शीघ्रं सर्वगदापहः ॥ २२२ ॥

जो बद्ध पारा चलने फिरनेसे रहित होजावे और धमाते २ क्षीण होवे उसे खोटबद्ध जानना चाहिये शीघ्रही सम्पूर्ण रोगोंको नाश करताहै ॥ २२२ ॥

पर्पटीपोटबद्धः ।

द्रुतिकज्जलिका मोचापत्रके चिपिटीकृता ।
सपोटः पर्पटी सैव बालाद्यखिलरोगनुत् ॥ २२३ ॥

जिस पारेकी कज्जलीकी द्रुति केलाके पत्रमें पतली और चपटी होजावे उसको पोटबद्ध अथवा पर्पटी कहते हैं । यह बालकादिकोंके सर्वरोग नाश करती है२२३॥

कल्कबद्धः ।

स्वेदाद्यैः साधितः सूतः पंकत्वं समुपागतः ।
कल्कबद्धः स विज्ञेयो योगोक्तफलदायकः ॥ २२४ ॥

स्वेदन मर्दनादि संस्कारोंसे जो पारा कीचके समान होजावे उसको कल्कबद्ध कहते हैं यह योगोंके कहे अनुसार फलको देता है ॥ २२४ ॥

कज्जलीबंधः ।

कज्जली रसगंधोत्था सुश्लक्ष्णा कज्जलोपमा ।
तत्तद्योगेन संयुक्ता कज्जलीबंध उच्यते ॥ २२५ ॥

पारे और गन्धककी सुन्दर कज्जलके समान कज्जली होजावे वह अपने २ भिन्न २ योगोंसे युक्त कज्जलीबंध कहाता है ॥ २२५ ॥

सजीवपारदः ।

भस्मीकृतो जीवति वह्नियोगाद्रसः सजीवः स खलु प्रदिष्टः ।
संसेवितोऽसौ न करोति भस्मकार्यं जवाद्व्याधिविनाशनं च ॥ २२६ ॥

जो पारा भस्म होनेपरभी आँचके संयोगसे फिर जीवित होजाताहै उसको सजीव पारा कहते हैं । इसका सेवन पारेकी भस्मके समान गुण नहीं करता, और जल्दी रोगोंकोभी नाश नहीं करता ॥ २२६ ॥

निर्जीवः ।

जीर्णाभ्रको वा परिजीर्णगन्धो भस्मीकृतश्चाखिललोहमौली ।
निर्जीवनामा हि सभस्मभूतो निःशेषरोगान् विनिहन्ति वेगात् ॥ २२७ ॥

जिस पारेमें प्रथम अभ्रक सत्व और गन्ध जीर्ण किये जांय पीछे भस्म करनेसे वह भस्म सम्पूर्ण लोहोंमें श्रेष्ठ होती है उसे निर्जीव कहते हैं यह सर्व रोगोंको शीघ्र नाश करती है ॥ २२७ ॥

निर्बीजः ।

रसस्य पादांशसुवर्णजीर्णः पिष्टीकृतो गन्धकयोगतश्च ।
तुल्यांशगन्धैः पुटितः क्रमेण निर्बीजनामा सकलामयघ्नः ॥ २२८ ॥

जिस पारेमें चौथा हिस्सा सुवर्ण जीर्ण हुवाहो तथा जो गन्धकके मेलसे पिष्टी किया गयाहो और बराबर गंधकके पुट क्रमपूर्वक दिये गये हों उस सर्व व्याधि-नाशक रसको निर्बीज कहते हैं ॥ २२८ ॥

सबीजः ।

पिष्टीकृतैरभ्रकसत्त्वहेम तारार्ककान्तैः परिजारितो यः ।
हतः स्वतः षड्गुणगन्धकेन सबीजबद्धो विपुलप्रभावः ॥ २२९ ॥

अभ्रक सत्त्व, सुवर्ण, चांदी, ताम्र और लोह इनकी पिष्टीसे जारित हो तथा छः गुने गन्धक जारण कर जो बद्ध किया गया हो उस अमित प्रभाव युक्त पारेको सबीज बद्ध कहते हैं ॥ २२९ ॥

श्रृंखलाबद्धः ।

वज्रादिनिहतः सूतो हतः सूतसमोऽपरः ।
श्रृंखलाबद्धसूतस्तु देहलोहविधानतः ॥ २३० ॥

जो हीरा आदिसे बद्ध किया गयाहो तथा अन्य पदार्थों (अभ्रक, सुवर्ण, गंधक आदि)से बद्ध किया गया हो उस पारेको श्रृंखलाबद्ध कहते हैं यह शरीरको लोहतुल्य दृढ करताहै ॥ २३० ॥

द्रुतिबद्धः ।

युक्ताऽपि बाह्यद्रुतिभिश्च सूतो बद्धं गतो वा भसितस्वरूपः ।
सराजिकापादमितो निहन्ति दुःसाध्यरोगान् द्रुतिबद्धनामा॥२३१॥

जो बाह्यद्रुतियोंसे युक्त भी हो पर उत्तमरूपसे बद्ध हुवाहो वा भस्म हुवा हो उसकी राईकी चौथाई मात्रा भक्षण करनेसे दुःसाध्य रोग दूर होते हैं इसे द्रुतिबद्धपारा कहते हैं ॥ २३१ ॥

बालबद्धः ।

समाभ्रजीर्णः शिवजस्तु बालः संसेवितो योगयुतो जवेन ।
रसायनो भाविगदापहश्च सोपद्रवारिष्टगदान्निहन्ति ॥ २३२ ॥

जिस पारेमें बराबर अभ्रक जीर्ण हुवाहो उसको बालबद्ध कहते हैं योगयुक्त इसका सेवन करनेसे उपद्रव और अरिष्टयुक्त रोगोंका शीघ्र नाश होताहै और यह होनेवाले रोगोंका नाश करताहै तथा रसायन है ॥ २३२ ॥

कुमारबद्धः ।

हरोद्भवो यो द्विगुणाभ्रजीर्णः स स्यात्कुमारो मिततंदुलोसौ ।
त्रिःसप्तरात्रात्खलु पापयोगसंघातघाती च रसायनं च ॥ २३३ ॥

दूने अभ्रकसे जीर्ण पारेको कुमारबद्ध कहते हैं इसको एक चांवलके बराबर नित्य सेवन करनेसे २१ दिनमें सब पापरोगोंके समूहका नाश होजाता है यह रसायन है ॥ २३३ ॥

तरुणबद्धः ।

चतुर्गुणव्योमकृताशनोसौ रसायनाग्र्यस्तरुणाभिधानः ।
स सप्तरात्रात्सकलामयघ्नो रसायनो वीर्यबलप्रदाता ॥ २३४ ॥

चौगुने अभ्रकको जिसने खायाहो वह रसायनोंका अग्रवर्त्ती तरुणपारा कहाता है इसको सात रात्रि सेवन करनेसे सर्व रोग नाश होते हैं यह वीर्य और बलको बढाता है और रसायन है ॥ २३४ ॥

वृद्धबद्धः ।

यत्राभ्रकः षड्गुणतो हि जीर्णः प्राप्ताग्निसख्यः स हि वृद्धनामा। देहे च लोहे च नियोजनीयः शिवादृते कोऽस्य गुणान्प्रवाक्ति ॥ २३५ ॥

जिस पारेमें षड्गुण अभ्रक जारण होचुका हो वह अग्निमें भस्म किया हुवा वृद्धबद्ध नामका पारा है । इसको देहमें और ताम्रादि लोहोंमें योजना करना चाहिये इसके गुणोंको शिवजीके विना और कौन कह सक्ता है ॥ २३५ ॥

यो दिव्यमूलिकाभिश्च कृतोत्यग्निसहो रसः ॥ २३६ ॥
विनाभ्रजारणात्स स्यान्मूर्त्तिबंधो महारसः ।
योजितः सर्वरोगेषु निरौपम्यफलप्रदः ॥ २३७ ॥

अभ्रक जारण किये विना जो पारा दिव्यौषधियोंके रससे ही बद्ध किया हो और अग्नि सहनेवाला हो गया हो उस महारसको मूर्त्तिबन्ध कहते हैं इसको सर्व रोगोंमें देना चाहिये यह निरुपम फलको देता है ॥ २३६ ॥ २३७ ॥

चतुःषाष्टिदिव्यौषाधिनामानि ।

सोमवल्ली जलस्था हि पद्मिन्यजगरी तथा ।
गोनसी त्रिजटा चैवेश्वरी वै भूतकेशिनी ॥ २३८ ॥
कृष्णवल्ली रुद्रवन्ती वाराही सर्वरा तथा ।
अश्वस्थपत्र्यम्लपत्री चक्रनासा ह्यशोकिका ॥ २३९ ॥
पुन्नागपत्रा नागा च क्षेत्रिका शवरी तथा ।
देवीलता वज्रवल्ली चित्रका कालपर्णिका ॥ २४० ॥
नीलोत्पल्यथ रजनी पलासतिलका तथा ।
सिंहिका खलु गोष्ठांगी खदिरस्य तु पत्रिका ॥ २४१ ॥
तृणज्योती रक्तवल्ली ब्रह्मदंडी मधुतृषा ।
पद्मकन्दा हेमदण्डी विजया वै तथाऽजया ॥ २४२ ॥

जया नली च श्रीनाम्नी कीटमारी तु तुम्बिका ।
कटुतुम्बी मयूरस्य शिखा हेमलता तथा ॥ २४३ ॥
आसुरी सप्तपर्णी च गोमारी पीतक्षीरिका ।
व्याघ्रपादलता तद्वद्धनुर्वल्ली त्रिशूलिनी ॥ २४४ ॥
शृङ्गी त्रिदण्डी वै वज्रवल्लरी महती तथा ।
रक्तकन्दवती बिल्वदला वै रोहिणी तथा ॥ २४५ ॥
गोरोचना बिल्वतङ्गी तथा वै कन्दपत्रिका ।
विशल्या कन्दक्षीरा च दिव्यौषधिगणः स्मृतः ॥ २४६ ॥

१ सोमवल्ली २ जलपद्मिनी ३ अजगरी ४ गोनसी ५ त्रिजटा ६ ईश्वरी ७ भूतकेशी ८ कृष्णवल्ली ९ रुद्रवन्ती १० सर्वरा ११ वाराहीकंद १२ अश्वत्थपत्री १३ अम्लपत्री १४ चकोरनासा १५ अशोकनाम्नी १६ पुन्नागपत्रिका १७ नागिनी १८ क्षेत्री १९ सवरी २० देवीलता २१ वज्रवल्ली २२ चित्रक २३ कालपर्णी २४ नीलोत्पली २५ रजनी २६ पलाशतिलका २७ सिंहिका २८ गोष्ठाङ्गी २९ खदिरपत्री ३० तृणज्योति ३१ रक्तवल्ली ३२ ब्रह्मदण्डी ३३ मधुतृष्णा ३४ पद्मकन्दा ३५ हेमदण्डी ३६ विजया ३७ अजया ३८ जया ३९ नली ४० श्रीनाम्नी ४१ कीटमारी ४२ तुंबिका ४३ कटुतुंबी ४४ मयूरशिखा ४५ हेमलता ४६ आसुरी ४७ सप्तपर्णी ४८ गोमारी ४९ पीतक्षीरा ५० व्याघ्रपादलता ५१ धनुर्वल्ली ५२ त्रिशूली ५३ शृंगी ५४ त्रिदण्डी ५५ वज्रनामवल्ली ५६ महावल्ली ५७ रक्तकन्दवती ५८ बिल्वदला ५९ रोहिणी ६० गोरोचना ६१ बिल्वतङ्गी ६२ कन्दपत्रिका ६३ विशल्या ६४ कन्दक्षीरा यह दिव्यौषधि हैं ॥२३८-२४६॥

जलबद्धः ।

शिलातोयमुखैस्तोयैर्बद्धोऽसौ जलबद्धकः ।
स जरारोगमृत्युघ्नः कल्पोक्तफलदायकः ॥ २४७ ॥

घृतोदक, विषोदक, तैलोदक, अमृतोदक, कर्त्तरी, तप्तोदक, चन्द्रोदक इत्यादि जलोंके योगसे बद्ध हुआ हो वह जलबद्ध कहाता है यह वृद्धावस्थादिके रोगोंको और मृत्युको दूर कर कल्पोक्त फल देता है ॥ २४७ ॥

अग्निबद्धः ।

केवलो लोहयुक्तो वा ध्मातः स्याद्गुटिकाकृतिः ।
अक्षीणश्चाग्निबद्धोऽसौ खेचरत्वादिकृत्स हि ॥ २४८ ॥

जो पारा खाली या लोहे युक्त अग्निमें धरके धौंकनेसे गुटकाके समान होजावे और कम न पडे उसको अग्निबद्ध पारा कहतेहैं यह खेचरत्वादि सिद्धिको देताहै॥२४८

बद्धाभिधानरस ।

हेम्ना वा रजतेन वा सह यदि ध्मातो व्रजत्येकता-
मक्षीणो निचितो गुरुश्च गुटिकाकारोतिदीर्घोज्ज्वलः ॥
चूर्णत्वं पटुवत्प्रयाति निहतो घृष्टो न मुंचेन्मलम् ।
निर्गन्धो द्रवति क्षणात्स हि मतो बद्धाभिधानो रसः ॥२४९॥

अब बद्ध पारेके लक्षण कहते हैं जो सुवर्ण चांदी आदिके साथ गलानेसे गलकर एक होजावे क्षीण न हो न बिखरे तथा भारी और गुटके समान अति-दीर्घ और उज्ज्वल हो तथा पीसनेसे नमकके समान चूरा होजावे घिसनेसे मल न छोडे गंधरहित हो अग्निपर तत्काल पतला होजावे उसको बद्धाभिघान पारा कहते हैं ॥ २४९ ॥

मतान्तर ।

पोटः खोटो जलौका च भस्म चापि चतुर्थकम् ।
बंधश्चतुर्विधो ज्ञेयः सूतस्य भिषगुत्तमैः ॥ २५० ॥

कोई आचार्य कहते हैं कि पोट, खोट, जलौका और भस्म ये बद्ध पारेके चार भेद हैं ॥ २५० ॥

लक्षणम् ।

पोटः पर्पटिकाबन्धः पिष्टीबन्धस्तु खोटकः ।
जलौकापक्वबंधः स्याद्भस्म भस्मनिभं भवेत् ॥ २५१ ॥

पारा और गंधकी पर्पटीको पोटबद्ध कहते हैं पिष्टीबन्ध खोटक कहाता है पक्वबंधको जलौकाबद्ध कहते हैं तथा भस्मके समान पारेको भस्मबद्ध कहते हैं २५१

सूतभस्म द्विधा ज्ञेयमूर्ध्वगं तलभस्म च ।
ऊर्ध्वं सिंदूरकर्पूररसादन्यदधोगतम् ॥ २५२ ॥

पारेकी भस्म दो प्रकारकी जानना चाहिये एक ऊर्ध्वगत दूसरी अधोगत रस-सिंदूर और रसकपूर आदि ऊर्द्धगत कहते हैं और इनसे भिन्न अधोगत भस्म कहाती है ॥ २५२ ॥

अथ तलभस्मविधिः ।

गन्धकं नवसारं च शुद्धसूतं समं त्रयम् ।
यामैकं चूर्णयेत्खल्वे काचकुप्यां विनिक्षिपेत् ॥ २५३ ॥
रुद्ध्वा द्वादशयामान्तं वालुकायंत्रगं पचेत् ।
स्फोटयेत्स्वांगशीतं तदूर्ध्वगं गंधकं क्षिपेत् ॥
तलभस्मरसो योगवाही स्यात्सर्वरोगहृत् ॥ २५४ ॥

गंधक, नौसादर, शुद्ध पारा हरएक आठ २ पैसे भर लेवे सबको एकमें मिलाय पहर भर कज्जली करे, फिर शीशीमें भर वालुकायंत्रमें १२ प्रहरकी आंच देवे ठंढा होने पर शीशीको फोडकर नोच बैठी हुई पारेकी भस्म ग्रहण करे ऊपर लगे हुए गंधकको दूर करे । यह योगवाही और सर्व रोगनाशक है । शिंगरफसे निकाला हुआ पारा संस्कारोंके विना ही शुद्ध होताहै ऐसा लोग कहते हैं परंतु शिंगरफसे निकाले हुए पारेको भी पूर्वोक्त स्वेदन, मर्दन, उत्थापनादि संस्कार करना चाहिये यह निर्दोष बात है ॥ २५३ ॥ २५४ ॥

यथोक्तं पुरंदररहस्ये ।

रसगंधकसंभूतं हिंगुलं प्रोच्यते बुधैः ।
तस्मात्सूतं च यद्ग्राह्यं शोध्यं तमपि सूतवत् ॥ २५५ ॥

पारा और गन्धकके योगसे शिंगरफ बनताहै, इस लिये शिंगरफसे जो पारा निकाला जावे वह भी पारेके समान शुद्ध करना चाहिये । इस पारेमें औषधोंसे प्रथम मुख उत्पन्न करना चाहिये, क्योंकि मुख होनेसे पारा सोना, चांदी, अभ्रक सत्त्व, तांबा, लोहा इत्यादिको खाजाताहै सुवर्ण आदि धातुओंकी बाह्य द्रुति करना कठिन है और सुवर्णादिकको पारेमें मिलाकर औषधियोंसे द्रव करते हैं यह अंतर द्रुति कहाती है पहले पारेको भूखा करके ऐसा बनाले कि वह सुवर्ण आदिको खाय तथा पचाय सके इसके लिये सुगम उपाय कहते हैं ॥ २५५ ॥

विषोपविषकैर्मर्द्यः प्रत्येकं दिनसप्तकम् ।
मुखं च जायते सूते बलं वह्निश्च वर्द्धते ॥ २५६ ॥

विष तथा उपविषोंसे पृथक् २ सात २ दिन पारेको मर्दन करना चाहिये इसकी विधि यह है कि ४० तोले पारेमें ५ तोला विषका चूर्ण मिलाकर मर्दन करनेसे पारेमें मुख होजाता है और बल तथा अग्निकी वृद्धि होती है ॥ २५६ ॥

केचिद्वंशस्य सुषिरे रसं क्षिप्त्वा घटे परे ।
गोमूत्रभरिते न्यस्य त्रिसप्ताहं तु पाचयेत् ॥ २५७ ॥

कोई वैद्य पारेके मुख करनेके लिये पारेको बांसकी नलीमें भर देते हैं और एक हांडीमें गोमूत्र भरके उसमें नलीको लटका देते हैं और २१ दिन तक आंच देते हैं जैसे २ गोमूत्र जलता जाता है वैसे २ और डालते जाते हैं इस प्रकारसे पारेके मुख और भूख उत्पन्न होती है। पारेको भूंखा करनेके लिये षड्गुण गंधक जारण करते हैं तब पारा भूंखा होता है ॥ २५७ ॥

गुरुं शास्त्रं परित्यज्य विना जारितगंधकात् ।
मारयेद्यो रसं मूढः तं शपेत्परमेश्वरः ॥ २५८ ॥

गुरु और शास्त्रको छोडकर जो मूढ वैद्य विना गंधक जारणके पारेको मारता है उसको श्रीशिवजी शाप देते हैं गंधक जारण बहिर्धूम और अन्तर्धूम इन भेदोंसे दो प्रकारका है ॥ २५८ ॥

गंधकजारणावश्यकता ।

रसगुणबलिजारणं विनायं न खलु रुजाहरणक्षमो रसेन्द्रः ।
न जलदकलधौतपाकहीनः स्पृशति रसायनतामिति प्रतिज्ञा ॥ २५९ ॥

षड्गुण गन्धक जारण किये विना पारा रोगोंको नहीं हरसकता और जबतक अभ्रक तथा सुवर्ण जारण न किया जावे तब तक पारा रसायनयोग्य नहीं होता ऐसी प्रतिज्ञा है ॥ २५९ ॥

जीर्णे शतगुणे गन्धे शतवेधी भवेद्रसः ।
सहस्रगुणिते जीर्णे सहस्रांशेन वेधयेत् ॥ २६० ॥
एतत्प्रकारस्तु तत्रैव द्रष्टव्यः प्राधान्यषड्गुणस्य सर्वसंमतम् ॥

सौगुना गन्धक जीर्ण होनेसे पारा शतवेधी होताहै अर्थात् एक भाग पारा तांबे आदिके सौ भागोंको वेध सकताहै, इसी प्रकार सहस्रगुणित गन्धक जीर्ण होनेसे हजारवें हिस्सेको बँधे यह प्रकार रंजनादि संस्कारोंमें देखना मुख्य षड्गुण गन्धक जारण ही सर्वसंमत है ॥ २६० ॥

गंधकजारणफलम् ।

तुल्ये तु गंधके जीर्णे शुद्धाच्छतगुणो रसः ।
द्विगुणे गन्धके जीर्णे सर्वथा सर्वकुष्ठहा ॥ २६१ ॥

त्रिगुणे गंधके जीर्णे सर्वव्याधिविनाशनः ।
चतुर्गुणे तत्र जीर्णे वलीपलितनाशनः ॥ २६२ ॥
गन्धे पञ्चगुणे जीर्णे क्षयरोगहरो रसः ।
षड्गुणे गन्धके जीर्णे सर्वरोगहरो भवेत् ॥ २६३ ॥

पारेके बराबर गंधक जारण करनेसे शुद्ध पारेसे सौगुना अधिक फल दाता होता है दूना गंधक जारणसे सब कुष्ठोंको दूर करताहै तीन गुना गंधक जारण करनेसे सब रोगोंको नाश करताहै, चौगुना जारण करनेसे वृद्धापनसे होनेवाले सफेद बालोंको तथा त्वचा सिकुडनेको दूर करताहै पांच गुना जीर्ण करनेसे क्षयरोगको तथा छः गुना गंधक जीर्ण करनेसे सब व्याधियोंको दूर करताहै ॥ २६१–२६३ ॥

अन्तर्धूमविपाचितषड्गुणगन्धकेन रंजितः सूतः ।
स भवेत्सहस्रवेधी तारे ताम्रे भुजंगे च ॥ २६४ ॥

अन्तर्धूम विपाचित (वालुकादियंत्रोंके मुख अच्छी रीतिसे बंद करके गंधक जीर्ण कियाजाय जिसमें गंधकका धुवाँ बाहर निकले) और षड्गुण गन्धकसे रंजित जो पारा है वह चांदी तांबा और सीसेमें सहस्रवेधी होताहै ॥ २६४ ॥

विपिनौषधिपाकसिद्धमेतद् घृततैलाद्यपि दुर्निवारवीर्यम् ।
किमयं पुनरीश्वरांगजन्मा घनजाम्बूनदचन्द्रभानुजीर्णः ॥ २६५ ॥

जंगलकी जडी बूटी इत्यादिके पाकसे सिद्ध हुए घृत तैलादि भी बडी शक्तिवाले होजाते हैं फिर शिवजीकी बीज पारेमें अभ्रक, सुवर्ण, ताम्र और चांदी होगई हों तो फिर क्या कहनाहै ? ॥ २६५ ॥

अजारयंतः पवि हमगंधं वांछन्तिसूतात्फलमप्युदारम् ।
क्षेत्रादनुप्तादपि सस्यजातं कृषीवलास्ते भिषजश्च मंदाः ॥ २६६ ॥

जो हीरा, सुवर्ण और गन्धक जारण किये विना पारेसे उदार फल चाहते हैं वे वैद्य विना जोते बोए खेतसे फलकी इच्छा करते हुए किसानोंके तुल्य मंदबुद्धि हैं ॥ २६६ ॥

धनरहितबीजजारणसंप्राप्तफलादिसिद्धिकृतकृत्याः ।
कृपणाः प्राप्य समुद्रं वराटिकालाभसंतुष्टाः ॥ २६७ ॥

अभ्रक जारण किये विना जो वैद्य केवल बीज जारणमें कृतार्थ मानते हैं वे ऐसे हैं कि जैसे कृपण पुरुषोंको समुद्रके किनारे कौडी मिलजानेसे वे उसको सर्वोत्तम लाभ जानकर प्रसन्न होते हैं ॥ २६७ ॥

अभ्रकजारणमादौ गर्भद्रुतिजारणं च हेम्नोन्ते ।
यो जानाति न वैद्यो वृथैव सोऽर्थक्षयं कुरुते ॥ २६८ ॥

पहले अभ्रकका जारण करे पीछे सुवर्ण जारण उसके पीछे गर्भद्रुति करना इस क्रमको जो वैद्य नहीं जानता वह व्यर्थ ही धन व्यय करता है ॥ २६८ ॥

हेम्नि जीर्णसहस्रैकगुणसंघप्रदायकः ।
वज्रादिजीर्णसूतस्य गुणान् वेत्ति शिवः स्वयम् ॥ २६९ ॥

पारेमें यदि सुवर्ण जीर्ण कियाजाय तो हजार गुना गुण करता है, और जिस पारेमें हीरा आदिका जारण कियाजाय तो उसके गुण तो साक्षात् श्रीशिवजी ही जानते हैं ॥ २६९ ॥

सर्वपापक्षये जाते प्राप्यते रसजारणा ।
तत्प्राप्तौ प्राप्तमेव स्याद्विज्ञानं मुक्तिलक्षणम् ॥ २७० ॥

मनुष्यके सब पाप क्षीण होने पर रसजारण सिद्ध होता है इस रसजारणकी प्राप्तिसे मुक्तिलक्षण विज्ञानकी प्राप्ति होती है ॥ २७० ॥

यावद्दिनानि शिवजो वह्निस्थो धार्यते रसः ।
तावद्वर्षसहस्राणि शिवलोके महीयते ॥ २७१ ॥
दिनमेकं रसेंद्रस्य यो ददाति हुताशनम् ।
द्रवन्ति तस्य पापानि कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥ २७२ ॥

जितने दिन यह प्राणी शिववीर्य पारेको अग्निमें रखताहै उतने ही हजार वर्ष पर्यन्त वह शिवलोकमें विहार करता है जो प्राणी एक दिन भी पारेको अग्निमें रखता है उसके सम्पूर्ण पाप द्रवीभूत होजाते हैं और फिर किये हुए पापोंसे लिप्त नहीं होता ॥ २७१ ॥ २७२ ॥

अथ षड्गुणगंधकजारणम् ।

इष्टिकायां सुपक्वायां मूषांतं चतुरंगुलाम् ।
कृत्वा काचेन संलिप्तां तस्यां तत्तिष्टिकां क्षिपेत् ॥ २७३ ॥

निम्बुद्रावोद्भवो गंधो देयो मूर्ध्नि द्विकार्षिकः ।
मुखं संरुध्य शुष्केऽथ दद्याल्लावपुटं ततः ॥ २७४ ॥
गौरीयंत्रमिदं ख्यातं मूर्च्छिते गंधजारणे ॥ २७५ ॥

सुन्दर पकीहुई आठ अंगुल मोटी पँजावेकी ईटमें चार अंगुलका गढा कर उसमें कांच फिराकर पारेकी पिट्ठी भरे पारेके बराबर अर्थात् पैसेभर गन्धकको कागजी नीबूमें घोटकर पारेके ऊपर रक्खे और गढेको ईटके टुकडेसे बंद कर कपडमिट्टी करे पीछे जंगली कंडोंकी आंच देवे ठंढा होनेपर निकाल पूर्वोक्त कहे विधानसे फिर आंच देवे जब तक षड्गुण गंधक जले तबतक इसी प्रकार करता जाय यह गौरीयंत्र मूर्च्छना और गंधक जारणके लिये प्रसिद्ध है ॥ २७३-२७५ ॥

पिष्टीकरणम् ।

वस्त्रं हस्तमितं कृत्वा धत्तूररसभावितम् ।
नवनीतं विलेप्याथ चूर्णमेतद्विनिक्षिपेत् ॥ २७६ ॥
मनःशिलं तथा तालं गन्धकं शुद्धसीसकम् ।
अर्धकर्षप्रमाणेन प्रत्येकं च विचूर्णितम् ॥ २७७ ॥
वस्त्रोपरि समाक्षिप्य वर्त्तिकामिव कारयेत् ।
प्रज्ज्वाल्य पतितं तैलं घृतमार्दितभाजने ॥ २७८ ॥
तैलं गृहीत्वा तस्मिंस्तु पारदं मर्दयेद्बुधः ।
संगृह्य पिष्टिकाकारं गंधकाद्याभिजारणे ॥ २७९ ॥

एक हाथ सुन्दर कपडा लेवे उसको सात बार धतूरेके रसमें भिगोकर सुखावे पीछे उस पर मक्खन चुपड कर मैनासिल, हरताल, गंधक, सीसाका चूरा प्रत्येक धेले २ भर ले बारीक पीस उस कपडेपर बिछाकर बत्ती बनावे और एक थालीमें घी लगाकर उसमें जो तेल टपके उसमें पैसे भर पारेको खूब घोटे जब पारा मिल-कर पिट्ठी होजाय तब जारण करे ॥ २७६-२७९ ॥

रसं मृत्पात्रके क्षिप्त्वा वह्नौ तद्वै विनिक्षिपेत् ।
हंसपाद्या रसे क्षिप्तं गन्धकं तत्र योजयेत् ॥ २८० ॥

एक हांडीमें १६ पैसे भर पारा डाल आग पर रक्खे जब गरम होजाय तब हंसपदीके रसमें घोटाहुआ तोलाभर गन्धक उसमें डाले इसी प्रकार जब तक षड्-गुण गंधक जले तब तक करताजावे ॥ २८० ॥

भूधरयंत्रविधिः ।

आरोटकसमगन्धकचूर्णं तुल्यं निरुद्धमूषायाम् ।
भुवि गर्त्तायां मूषां तां क्षिप्त्वाऽष्टांगुलाधस्तात् ॥ २८१ ॥
आपूर्य वालुकाभिस्तं गर्त्तं भूसमीकृत्य ।
प्रज्ज्वाल्योपरि वह्निं त्रिदिनं मूषां समुद्धृत्य ॥ २८२ ॥
जीर्णे तु गंधकेस्मिन् पुनस्तु क्षेप्योऽनया रीत्या ॥ २८३ ॥

लोहेकी घडियामें आठ पैसे भर शुद्ध पारद रक्खे और उसमें आठ पैसे भर शुद्ध गंधक डाल लोहेके पात्रमें मुख बंद कर कपडमिट्टी कर भूमिमें आठ अंगुल गहरा और इतना ही लंबा चौडा गढा खोदकर उसमें मूषाको रखके गढेमें बालू भरके भूमिके समान करदेवे तीन दिन तक उसके ऊपर अग्नि जलावे चौथे दिन स्वांग शीतल होने पर घडियाको निकाले तो इस प्रकार जीर्ण हुए गंधकको पूर्वोक्त विधिसे षड्गुण जारण करे । अथवा वज्रमूषामें षड्गुण गंधक जारण करे ॥ २८१–२८३ ॥

अजीर्णं तु अबीजं तु सूतकं यस्तु घातयेत् ।
ब्रह्महा स दुराचारी ब्रह्मद्रोही न संशयः ॥ २८४ ॥

अजीर्ण (जिसमें गंधक आदि न जलाये गये हों) और अबीज (अभ्रकसत्व सुवर्ण, चांदी, ताम्र और लोह आदिकी पिष्टी जिसमें न जारण की गई हो इस प्रकारके) पारेको जो मनुष्य मारता है वह ब्रह्महत्यारा, दुष्ट आचरणोंवाला ब्रह्मद्रोही है इसमें संशय नहीं ॥ २८४ ॥

तथा च रससिंधौ ।

देव्या रजोद्भवो गन्धो धातुः शुक्रं तथाभ्रकम् ।
आलिंगने समर्थौ द्वौ प्रियत्वाच्छिवरेतसः ॥ २८५ ॥
आश्लेषादेतयोः सूतो न वेत्ति मृत्युजं भयम् ।
शिवशक्तिसमायोगात् प्राप्यते परमं पदम् ॥ २८६ ॥
यथास्य जारणा बह्वस्तथा स्याद्गुणदो रसः ॥ २८७ ॥

गन्धक पार्वती रजसे हुवा और उसका शुक्र धातु अभ्रक है इससे अभ्रक और गन्धक दोनों पारेको अत्यन्त प्रिय हैं, इनके संयोगसे पारा मृत्युका भय नहीं करता, शिव और शक्तिके संयोगसे श्रेष्ठ स्थान मिलताहै पारेकी जितनी २ जारण क्रिया अधिक होती है उतना २ अधिक गुण उसमें होताहै ॥ २८५–२८७ ॥

गंधकजीर्णगुणाः।

समे गंधे तु रोगघ्नो द्विगुणे राजयक्ष्मजित्।
जीर्णे तु त्रिगुणे गंधे कामिनीदर्पनाशनः ॥ २८८ ॥
चतुर्गुणे तु तेजस्वी सर्वशास्त्रविशारदः।
भवेत्पञ्चगुणे सिद्धः षड्गुणे मृत्युजिद्भवेत् ॥ २८९ ॥

पारेके बराबर गंधक जारण करनेसे रोगोंको दूर करता है दूना गंधक जारण करनेसे राजयक्ष्मा (क्षय) रोगको निवारण करता है तिगुना जारण करनेसे स्त्रियोंका अभिमान दूर करे, और चतुर्गुण जारणसे तेजकी वृद्धि हो और बुद्धि बढावे पांच गुना जारण करनेसे सिद्ध होजाता है। छः गुना गंधक जारण करनेसे मौतका जय करताहै ॥ २८८ ॥ २८९ ॥

तस्माच्छतगुणो व्योमसत्त्वे जीर्णे तु तत्समे।
ताप्यखर्परतालादिसत्त्वे जीर्णे गुणावहः ॥ २९० ॥
हेम्नि जीर्णे सहस्रैकगुणसंघप्रदायकः।
वज्रादिजीर्णसूतस्य गुणान्वेत्ति शिवः स्वयम् ॥ २९१ ॥

पारेमें छः गुना गंधक जारण करनेसे अभ्रक सत्त्व समान जीर्ण किया हुवा सौगुना अधिक है, और सोनामक्खी, खपरिया, हरिताल इत्यादिके सत्त्वोंके जारणसे गुणदायक होता है सुवर्ण जारणसे हजार गुणोंका देनेवाला होताहै हीरा आदि रत्न जीर्ण किये पारेके गुण स्वयं श्रीशिवजी ही जानते हैं सोना, चांदी, अभ्रक अदिका जारण दो तरहसे होता है एक बिडके योगसे दूसरा बिडरहित इन दोनोंमें विडके योगसे जो बीज जीर्ण किया जाता है वह मुख्य उपाय है सो बीजके जारणके लिये बिड कहते हैं ॥ २९० ॥ २९१ ॥

मूलकार्द्रकचित्राणां क्षारैर्गोमूत्रगालितैः।
गंधकैः शतशो भाव्यो विडोऽयं जारणे मतः ॥ २९२ ॥

एक एक मन मूली, अदरख और चित्रक लेकर सुखालेवे पश्चात् उनको जलाकर भस्मको गोमूत्रमें भिगो देवे और पांच दिन पीछे चार तह कपडेमें गोमूत्रको छानलेवे, और उसमें सवासेर आमलासार गंधकको घोट सौसे अधिक भावना देवे, गाढा होजानेपर सुखाकर रख छोडे यही विड कहाताहै इसके योगसे पारा अभ्रक सत्त्व भक्षण करताहै यह बिड पारेके भीतर सोना चांदी अभ्रक

सत्त्वको पानी करदेता है, और पारेको अत्यन्त भूँखा करता है । क्षुधित पारद अभ्रकसत्त्वादि पतले पदार्थोंको खाय जाता है । सारांश यह कि अभ्रक सत्त्वादि जो पारेके बाहर हैं उनको यह बिड द्रव नहीं करता शास्त्रमें यद्यपि अनेक उपाय उसके द्रव करनेके लिखे हैं पर पारेके बाहर उनका द्रवीभाव भगवानकी कृपासे होता है. ॥ २९२ ॥

अथ बीजजारणप्रकारः ।

केवलाभ्रकसत्त्वं हि न ग्रसत्येव पारदः ।
तस्माल्लोहान्तरोपेतं युक्तं वा धातुसत्त्वकैः ।
अभ्रकं जारयेत् सिद्ध्यै केवले न तु सिद्ध्यति ॥ २९३ ॥

खाली अभ्रकके सत्त्वको पारा नहीं खासकता इससे लोह अथवा अन्य धातुओंके सत्त्वोंसे अभ्रकका जारण करे इस प्रकार सब प्रयोग सिद्ध होते हैं केवल अभ्रक सत्त्वसे नहीं होते (वैद्य लोग कहते हैं कि पारेमें उसका अष्टमांश बिड डालना चाहिये और जंबीरीके रसमें १ दिन घोटकर चौसठवां हिस्सा अभ्रकका सत्त्व डाले फिर जंबीरीके रसमें १ दिन घोटे पर इसका स्मरण रहे कि अभ्रकसत्त्वको जंबीरीनिम्बूके रससे घोटनेसे पहले अपने हाथोंमें मोरका पित्ता तथा सरसोंका तेल मललेवे अथवा सोनामक्खीका सत और सहत मिलाकर पीछे सोनामक्खीका सत अभ्रकसतके समान लेकर एक गोला बनाले पीछे सैंधव निमक और जवाखार धेले २ भर लेकर नींबूके रस और गोमूत्रमें खूब घोटे जब गाढा हो जावे तब चार तहके कपडेपर लेप करे जब सूखजावे तब इसमें उस गोलेको रक्खे अथवा भोजपत्र पर लेपकर उसमें गोलेको रक्खे और सूतसे बांधकर दोलायंत्रकी भांति एक हांडीमें सैंधव निमक, जवाखार, कांजी, कागजी नींबूका रस और गोमूत्र डालकर तीन दिन स्वेदन करे, परन्तु इसका ध्यान रहे कि अभ्रक सत्त्व जब सोनामक्खीके सत्त्वमें मिलजाय तब पारा अभ्रक सत्त्वको भलीभांति ग्रसताहै । यदि दोनों सत्त्व न मिलें तो समझलेना कि नहीं ग्रसेगा इसीसे अभ्रक सत्त्वकी बराबर सोनामक्खीका सत्त्व मिलावे, पीछे जारण करे इस प्रकार स्वेदन कर चुकने पर उस गोलेको निकाल कांजीसे धोकर उसमेंका पारा निकाललेवे और उसे कपडेमें डालकर खूब मले, परन्तु सावधानीसे मले जिसमें इधर उधर गिरकर कमती न पडजावे मलते २ जब निर्मल होजाय तब चार परतके कपडेमें डालकर छानलेवे और पारेको तोले यदि जाने कि केवल पारा रहगया है अभ्रक सत्त्व बाकी नहीं रहा, तो यह समझे कि पारा अभ्रक सत्वको खागया और यदि पारा तोलमें अधिक होवे तो जाने कि पारेमें अभ्रकसत्त्व नहिं

जीर्ण हुआ, जब अभ्रक सत्त्व पारेमें जीर्ण होजाय तब पारा दंडधारी अथवा जीवधारी होजाता है यदि जीर्ण न होय तो दंडधारी नहीं होता तब उस पारेको भूर्जपत्रमें बांधकर दोलायंत्रकी तरह एक हांडीमें लटकाकर हांडीमें कांजीका पानी भरे और पावभर सैंधव लवण डालकर तीन दिन पर्यन्त स्वेदन करे ऐसा करनेसे पारेका अजीर्ण दूर होजाताहै अथवा डमरूयंत्रमें उडानेसे भी पारेका अजीर्ण दूर होजाता है) ॥ २९३ ॥

उक्तञ्च ।

अजीर्णे पातयेत्पिंडं स्वेदयेन्मर्द्दयेत्तथा ।
रसस्याम्लस्य योगेन जीर्णे ग्रासं तु दापयेत् ॥ २९४ ॥

यदि पारेको अजीर्ण होगया हो तो उसका पातन, स्वेदन और खटाईके योगसे मर्दन संस्कार करे, जीर्ण होनेपर ग्रास देवे।(इसी प्रकार पारेको अभ्रकके चार ग्रास और देवे, इसी प्रकार दोलायंत्रमें स्वेदन करे प्रक्षालन करे, और पिंड करे, और जीर्णाजीर्णकी परीक्षा करे। कोई २ वैद्य कच्छपयंत्रद्वार पारेमें दूने अभ्रक सत्वादिको जीर्ण करते हैं। यदि बाकी रहजाय तो उसको भट्टीकी अग्निमें जलाकर राख करते हैं। पूर्वोक्त गोलेको पक्की घडियामें गोलेके ऊपर नीचे विड दे, इस घडियाको नींबूके रसस भर देते हैं और घडियाका मुख बंद कर भट्टीमें धौंकते हैं और पारेसे द्विगुणित सत्व आदि कच्छपयंत्रमें जलाते हैं। इस प्रकार पारेको उडनेका भय नहीं रहता। इससे साक्षात् अग्निके संयोगसे बाकी दूनेसे अधिक सत्वादिक जलावे तो कुछ चिंता नहीं। एक और सुगम विधि है कि जमीनमें गोबर रखकर उसमें छः अंगुल गहिरी पक्की हांडी रक्खे उसमें गोलेको रख उसके ऊपर नीचे बिड धरके जंभीरीके रससे आधी हांडी भरदेवे हांडीका मुख बंद करके उसके ऊपर अंगारोंका भरा घपरा सत्व न पिघलने तक रक्खे फिर पारेको निकालकर तोले, जो पारा तोलमें बराबर हो तो फिर इसी प्रकार सतको डालकर अग्नि देवे, जब पारेका दूना सत्त्व जमजावे तब साक्षात् अग्निके संयोगसे तिगुना, चौगुना, पँचगुना, छः गुना सत्वादिक जारण करे प्रति समय पारेका षोडशांश सत्त्व आदिक डालके जीर्ण करे उसके पश्चात् बाह्य द्रुतिके योगसे अभ्रक सत्वको पारेमें जीर्ण करे, यद्यपि शास्त्रमें बाह्यद्रुति अनेक प्रकारकी है पर मैं उत्तम प्रकारसे वर्णन करताहूं मूलीके रसमें सफेद अभ्रकको एक दिन भिगोकर कंबलकी थैलीमें भरे अभ्रकसे चौथाई धानकी भूसी मिलाकर तीन दिन एक परातमें भिगोवे चौथे दिन उसी पात्रमें उस थैलीको मले ऐसा करनेसे अभ्रकके छोटे २ टुकडे होकर पानीमें आवेंगे तब पानीको

निकाल डाले पानीके भीतर जो धान्याभ्रक है उसको लेकर और उसीके बराबर साबुन मिलाकर खरलमें घोटे फिर कडाहीमें डाल साबुनका तेजाब दो सेर डाले तीनोंको धीमी आंचसे तप्त करें आधा सेर तेजाब बाकी रहनेपर उतार लेवे फिर उसमें ३६ टंक सहत १७ टंक छोटी मछली ३६ टंक खरगोशका मांस ९ टंक खांड ३६ टंक गुड १८ टंक गुग्गुल १८ टंक अंडीका चोबा इन सबको पीसकर मिलावे और तीन गोले बनाकर सुखावे, पीछे तीनोंको अंगीठीमें रख नीचे ऊपर कोयला धर बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो अभ्रकका सत्व ज्वारके समान निकले उसमें पूर्वोक्त मसाला डाल एक खर्गोश मारकर डाले फिर सबको घोटकर गोला बनावे और उक्त प्रकारसे दुबारा रांगके समान अभ्रक सत्व निकाल लेवे, इसी तरह तीसरी बार मसाला डालकर बंकनालसे धोंकनेसे दहीके समान अभ्रक सत्व निकलता है तीसरी बारका निकाला अभ्रक सत्व सदा पतला रहताहै जमता नहीं है यह पारेके संबंध बिना द्रवीभूत है ।) ॥ २९४ ॥

लोहस्य द्रवीकरणम् ।

फोलादमें शहत, सुहागा, संखियाको डाल किसी बडी घडियामें डालकर पिघलने तक तप्त करे फिर ठंढा करके २४ टंक लेवे और इसका आठवां हिस्सा नमक डालकर कागजी नींबूके रसमें घोटे सूखने पर उष्ण जलसे धो डाले जब पानी ठंढा हो तब निकाल लेवे पश्चात् ३ टंक नौसादर डालकर नींबूके रससे घोटे और गोला बनाकर शीशेके प्यालेमें रक्खे दो प्रहर तक सुखाकर पीछे तीन टंक नौसादर डाल कागजी नींबूके रसमें घोटे और गोला बनाकर उसी प्यालेमें तीन प्रहर सुखाकर पीस डाले और नौसादर और सिंगरफ तीन ३ टंक डालकर नींबूके रसमें घोटे जब सूखजाय तब उसी प्यालेमें रख खट्टे अनारके रससे प्यालेको भरकर ढक देवे नित्य खट्टे अनारका रस थोडा २ डाला करे एक महीनेतक लोहा रसमें डूबा रहे इससे लोहा पारेके समान पतला हो जाता है पश्चात् पतला अभ्रक सत्व और पतला पतला लोहा दोनोंको तीन २ टंक मिलाकर घोटे और पीछे तीन टंक शुद्ध पारा मिलाकर घोटे जब भली भांति मिलजाय तब एक घरियामें भरकर अग्निमें धरे और बंकनालसे खूब धोंके तो पारा बद्ध होजायगा यह क्रम मिथ्या नहीं है इसी रीतिसे पारा बद्ध होताहै और सोना चांदी आदिभी इसीसे बन जाते हैं इसमें संदेह नहीं जो लोह और गंधक दोनों द्रवीभूतोंको पारेमें मिलावे जिसमें अभ्रक सत्व जीर्ण कियाहै सो अति उत्तम है उसमें इस प्रकारके पारेको एक टंक लेकर एक सेर पिघलेहुए रांगेमें डाले वह एक टंक रांगा एक सेर पिघलेहुए तांबेमें डाले वह एक टंक तांबा एक सेर पिघ-

लेहुए कांसेमें डाले वह एक टंक कांसा एक सेर पिघलेहुए शीशेमें डाले तो चांदी होवे और एक तोला तांबेमें डाले तो सुवर्ण होवे इस पारेका नाम सिद्ध सूत है ॥

तुत्थबद्धगुटिका ।

शुद्धपारदमादाय लोहस्थाल्यां विनिक्षिपेत् ।
चुल्लिकोपरि संस्थाप्य ततोऽग्निं ज्वालयेत्क्रमात् ॥
पारदाद्विगुणं तुत्थं द्विगुणं तस्माच्च सैन्धवम् ।
प्रस्थत्रयं जलं दत्त्वा निम्बकाष्ठेन घर्षयेत् ॥
प्रहरार्धेन समुत्तार्य क्षालयेदुष्णवारिणा ।
ततो वस्त्रे विनिष्पीड्य गुटिका कारयेद्बुधः ॥
दिनैके विजयाद्रावे स्थापयित्वा प्रयत्नतः ।
कार्पासबीजजे क्वाथे दोलायन्त्रे विपाचयेत् ॥
दुग्धपात्रे विनिक्षिप्य पीत्वा दुग्धं सुखी भवेत् ॥ २९५ ॥

शुद्ध पारदको लेकर लोहेके बर्त्तनमें डालकर अंगीठीपर रखकर क्रमसे आग जलावे । पारदसे द्विगुण तुत्थ और तुत्थसे द्विगुण नमक और तीन प्रस्थ जल लेकर उसमें डालकर नीमकी लकडीसे घिसावे । आधे पहरके अनन्तर उतारकर पारदको गरम पानीसे धोवे । फिर कपडेमें निचोडकर उसकी गोली बनाले । एक दिन विजया (भंग) के रसमें प्रयत्नसे रखकर कपासके बीजोंके क्वाथमें दोलायन्त्रमें रखकर पकावे । ऐसी गुटिकाको दूधमें रखकर पीनेसे मनुष्य सुखी होता है ॥ २९५ ॥

अनेनैव विधानेन शोरकेनापि जायते ।
गुटिका पयोयोगेन बलपुष्टिविवर्धनी ॥ २९६ ॥

एक पल शुद्ध पारद, दो पल शोरा तथा चार पल नमकको तीन सेर पानीमें मिलाकर पूर्वोक्त प्रकारसे बनाई हुई गुटिका दूधमें डालकर पीनेसे बलकारक तथा शरीरको पुष्ट करनेवाली होती है ॥ २९६ ॥

बद्ध पारदलक्षणम् ।

हेम्ना वा रजते न वा सहि परो ध्मातो व्रजत्येकता-
मक्षीणो निचलो गुरुश्च गुटिकाकारोतिदीर्घोज्ज्वलः ।

चूर्णत्वं पटुवत्प्रयाति निहितो घृष्टेन मुंचेन्मलं
निर्गन्धो द्रवति क्षणात्सहिमतो बद्धाभिधानो रसः ॥ २९७ ॥

जो सुवर्ण या चांदीके संग अग्निमें रखके धौंकनेसे एकमें मिलजाय क्षीण न हो निश्चल और भारी हो गुटिकाके आकारका अथवा लंबा हो जाय स्वच्छ और पीसनेसे नमकके समान चूर्ण होजाय घिसनेसे मलको न छोडे गन्धरहित शीघ्रही पतला होजाय उसे बद्धरस जानना ॥ २९७ ॥

बद्धपारदस्य परीक्षा ।

रसेन बद्धतां यातस्त्रोटयत्येव निश्चितम् ।
घनं लोहमयीं स्थूलां स्पर्शमात्रेण लीलया ॥ २९८ ॥
मृतमुत्थापयेन्मर्त्यं चक्षुषोः क्षेपमात्रतः ।
निहन्ति सकलान् रोगान् घ्रातः शाघ्र न संशयः ॥ २९९ ॥

बद्ध हुआ पारा पैरोंकी बडी भारी लोहेकी बेडियोंकोभी स्पर्शमात्रसे तोड डाले और इसको घिसकर मुर्देकी आंखमें लगावे तो वह जी उठे और इसके सूंघनेसेही सब रोग दूर होवें ॥ २९८ ॥ २९९ ॥

अब सिद्ध गुटिका लिखते हैं ।

अथ खगेश्वरीगुटिका ।

तुत्थकं मूषया कृत्वा स्थापयेन्मध्यपारदम् ।
अर्कसेहुण्डधत्तूररसद्रोणं च पूरयेत् ॥ ३०० ॥
सप्ताहमौषधैर्भाव्यं सिंहनेत्र्या घनप्रिया ।
पश्चात्तदम्लयोगेन गोलकं शुक्रसन्निभम् ॥ ३०१ ॥
धत्तूरविषतैलेन ज्योतिस्मत्यास्तथैव च ।
गुंजा च लांगली चैव भल्लातांकोलकौ तथा ॥ ३०२ ॥
एतेषां तैलयोगेन गुटिकां विषमध्यगाम् ।
दोलायंत्रे पचेदेवं चतुःषष्टिदिनानि च ॥
प्रत्येकमौषधी तैले राक्षसी गुटिकोत्तमा ॥ ३०३ ॥

नीलेथोथेकी मूषामें पारेको स्थापित करे आक, धतूरा, थूहर इन तीनोंका रस चार २ सेर लेकर कडाहीमें पूर्वोक्त रीतिसे पारेको रख ऊपरसे सब रसको

डाल तेज आँचदेवे, जब रस गाढा होजाय तब कडाहीको उतारकर पारेको पानीसे अच्छी तरह धोडाले जब पारा गाढा होजावे तब खरलमें डाल सात दिन सिंहनेत्रीके रसमें और सात दिन घनाप्रियाके रसमें घोटे, पश्चात् नींबूके रसमें घोटे फिर एक विषकी बडी और मोटी गांठ लेकर उसमें गढा इस प्रकारका बनावे कि आधा सेर पारा भरजाय उसमें पारा भरकर विषके टुकडेसे मुख बंद कर कच्चे सूतसे विषकी गांठ लपेटकर धतूरेके तेलमें दोलायंत्रकी विधिसे लटकायदेवे और नीचे मन्दाग्नि देवे विषकी डली कराहीसे दोअंगुल ऊँची उठी रहे इस प्रकार ६४ दिनतक आंच देवे जैसे २ तेल घटता जावे तैसे २ और डालता जावे इसी प्रकार मालकांगनी, घूंघची, करियारी, भिलावाँ और अंकोल इन प्रत्येकके तेलमें चौंसठ २ दिन पकावे तो राक्षसी पारा (बहुत भूँखा) होवे ॥ ३००-३०३ ॥

स्वर्णादिद्रवलोहानि भक्षयेन्नात्र संशयः ।
तारमध्ये यदा क्षिप्तं स्वर्णं भवति निश्चितम् ॥ ३०४ ॥
वंगमध्ये यदा क्षिप्तं रजतं जायते ध्रुवम् ।
मुखे क्षिप्तमदृश्यं च नानाकौतुककारकम् ॥ ३०५ ॥
खेचरीजायते सिद्धिर्मनःपवनवेगकृत् ।
जरामृत्युं हरेद्रोगं विषं स्थावरजंगमम् ॥ ३०६ ॥
नानया सदृशं कापि त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
नाम्ना खगेश्वरी नाम गुटिका सिद्धिसाधनम् ॥ ३०७ ॥

यह पारा सुवर्णआदि पतली धातुओंको खाजावे चांदीमें डालनेसे सुवर्ण हो और रांगाको चांदी करे मुखमें रखनेसे मनुष्य अदृश्य होवे आकाशमें विचरनेवाला हो एक क्षणमें हजार कोस पहुंचे बुढापा मृत्यु और विषका नाशन करे इसके समान और गुटिका नहीं है ॥ ३०४-३०७ ॥

ब्रह्माण्डगुटिका ।

नागवल्लीदलद्रावैः सप्ताहं सिद्धपारदम् ।
मर्दयेत्तप्तखल्वेन कांजिकैः क्षालयेत्ततः ॥ ३०८ ॥
तं गर्भे विषकंदस्य क्षिपेन्निष्कं चतुष्टयम् ।
विषेण तन्मुखं रुद्ध्वा स्थूलवाराहमांसजे ॥ ३०९ ॥
पिण्डवर्गे निरुद्ध्याथ मुखं सूत्रेण बंधयेत् ।
संध्याकाले बलिं दत्त्वा कुक्कुटं मदिरायुतम् ॥ ३१० ॥

ततश्चुल्ल्यां लोहपात्रे तैले धत्तूरसम्भवे ।
विपचेत्तु ततः पश्चात्तत्पिण्डं मन्दवह्निना ॥ ३११ ॥
सन्ध्यामारभ्य यत्नेन यावत्सूर्योदयो भवेत् ।
विषमुष्टिपलं चैकं गुंजाविजययोरपि ॥ ३१२ ॥
तैलं जातीफलस्यापि वीरतालस्य चोत्तमम् ।
पाचयेत्पूर्वयोगेन चान्यथा नैव सिद्धयति ॥ ३१३ ॥
तत उद्धृत्य गुटिकां क्षीरमध्ये विनिःक्षिपेत् ।
तत्क्षीरं शोषयेत्क्षिप्रमेतत्प्रत्ययकारकम् ॥ ३१४ ॥
दृष्ट्वा तां धारयेद्वक्त्रे वीर्यस्तम्भकरी नृणाम् ।
क्षीरं पीत्वा रमेद्रामां कामाकुलकलायुताम् ॥ ३१५ ॥
ब्रह्माण्डगुटिका ख्याता शोषयन्ती महोदधिम् ॥ ३१६ ॥

सिद्ध पारेको नागरपानके रससे सात दिन तप्तखल्वमें खरल करे फिर उसको कांजीसे धोवे, विषके रससे ७ दिन घोटके कांजीके पानीसे धोवे, फिर चार टंक पारेको विषकी गांठके भीतर भरकर उसका मुख विषकी डलीसे बंद करदेवे, फिर उस विषकी डलीको पुष्ट सूकरके मांसमें रखकर गोला बनावे, गोलेका मुख सूतसे लपेट कर बंद करदेवे फिर सायंकालमें भैरवदेव और काली देवीको कुक्कुट और मदिराकी बलि देकर एक बडे भारी लोहेके पात्रको चूल्हेपर चढाय उसमें साठ पैसे भर काले धतूरेका तेल छोडदेवे और उसमें पूर्वोक्त मांसके गोलेको छोडदेवे फिर मन्दाग्निसे सायंकालसे प्रातःकाल तक औटावे इसी प्रकार घूंघची, भांग, जायफल, बीरताल इन प्रत्येकका रस दो २ पैसे भर लेकर अलग २ औटावे पीछे पारेको निकालकर दूधमें डाले तो यह क्षणमात्रमें उस दूधको सुखावे तब जाने कि गुटका सिद्ध होगया फिर इस गुटकेको दूध पीकर मुखमें रक्खे तो सैकडों स्त्रियोंको भोगे जब गुटकेको मुखसे निकाले तब स्खलित हो यह ब्रह्माण्डगुटिका समुद्रको भी शोषण करती है। फिर घी दूध पचानेकी क्या कथा है ? ॥ ३०८-३१६ ॥

खेचरीगुटिका ।

रसटंकत्रयं शुद्धं कृष्णधत्तूरबीजजे ।
तैले पलद्वये खल्वे मर्दयेद्दिनसप्तकम् ॥ ३१७ ॥

तावद्यावद्भवेत्तस्य जलौकारूपमुत्तमम् ।
माषान्नपिष्टके नादौ दृढसूत्रेण वेष्टयेत् ॥ ३१८ ॥
कनिष्ठिकासमं गाढं शोषयेद्रविणा च तम् ।
दशप्रस्थमिते तैले सर्षपस्य विपाचयेत् ॥ ३१९ ॥
तल्लक्षया भवेद्यावत्तावत्सोऽप्यवतार्यते ।
स्निग्धच्छाये निवेश्याथ शनैः सिद्धां च तां नयेत् ॥ ३२० ॥
दुग्धेनापूर्यते कुम्भः शुभस्तत्र निवेशयेत् ।
विशुष्येत्सकलं दुग्धं गुटिकां धारयेत्ततः ॥ ३२१ ॥
वर्करस्य मुखे पश्चाद्गुटिकां तां प्रयच्छयेत् ।
प्रविष्टा तंमुखस्यांतर्ज्वलमानेव सा गता ॥ ३२२ ॥
व्याकुलं कुरुते कामं देहस्वास्थ्यं न तस्य वै ।
उदरस्था यदा भूयस्तदासौ म्रियते ध्रुवम् ॥ ३२३ ॥
गुटिकायाः परीक्षां च कृत्वैवं बुद्धिमान्नरः ।
स्वकीयवदने पश्चाद्धृत्वा शुभ्रां निरामयः ॥ ३२४ ॥
योजनानां शतं गच्छेदप्रयासेन साधकः ।
स्त्रीणां शतं तथा गच्छेच्छुक्रस्तम्भकरी मता ॥ ३२५ ॥
मुखस्थायामहो तस्यां प्रहारो नैव जायते ।
अन्यान्बहुविधान्रोगान्मुखस्था हंत्यशंसयम् ॥ ३२६ ॥
जिह्वातालुगता ये च कंठशालूककादयः ।
उपजिह्वाऽधिजिह्वाद्या द्विजिह्वापि सुदारुणः ॥ ३२७ ॥
सप्तषष्टिमितारोगा हृद्रोगाः पीनसादयः ।
सर्वांस्तान्नाशयत्येषा गुटिका नाम खेचरी ॥ ३२८ ॥

शुद्ध पारद तीन टंक लेकर काले धतूरेके बीजोंके तैलमें सात दिन तप्तखल्वमें घोटे, जब तक वह जोंक समान बद्ध न होजाय तब तक खरल करता जाय । फिर उस बद्धपारदको उरदकी पिट्ठीसे लपेटकर ऊपरसे कच्चा सूत एक अंगुली समान उसपर लपेट देवे फिर धूपमें सुखाकर दश सेर सरसोंके तेलमें पकावे जब

सब तेल जलकर सूखने पर आवे तब उतारले फिर इस सिद्ध पारदको धीरेसे निकालकर सुन्दर छायामें रखदे, फिर एक उत्तम घडा दूधसे भरकर उस सूत पोट्टी समेत पारदको उस घडेमें रखदे जब सब दूध सूख जावे तो इस पारदको बकरेके मुखमें रखकर परीक्षा करे बकरेके मुखमें यह तीक्ष्ण अग्निके समान प्रतीत होगा और बकरा कामदेवसे अत्यन्त व्याकुल होजायगा यहां तक कि इसको अपने शरीरकी सुध भी नहीं रहेगी यदि वह जलौकारूप गोली बकरेके पेटमें चलीजाय तो वह अवश्य मरजायगा । जब इस प्रकार परीक्षा करले तो बुद्धिमान् मनुष्य अपने मुखमें रक्खे तो वह साधक मनुष्य विनाही परिश्रमके सौ योजन गमन करसक्ताहै । और यह मुखमें रखनेमात्रसे अनेक रोगोंको दूर करे जिह्वाके रोग, तालूरोग, कण्ठरोग, उपजिह्वा, अधिजिह्व आदि ६७ रोगोंका नाश करे तथा हृद्रोग पीनस आदि अनेक रोगोंका नाश करे, इसको खेचरी गुटिका कहते हैं यह गुटिका मुखमें धारण करनेकी ही है, खानेकी नहीं ॥ ३१७--३२८ ॥

यथा पृष्ठस्त्वया पुत्र रसराजस्य संस्कृतिः ।
बन्धनान्ता तथा ह्यस्मिन्नध्याये संप्रकीर्त्तिता ॥ ३२९ ॥

हे पुत्र ! जिस प्रकार तुमने पूंछा उसी प्रकार बद्ध होने पर्यन्तके संस्कार इस अध्यायमें कथन करदिये हैं ॥ ३२९ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादप्रणीते रसेन्द्रपुराणे पारदसंस्कारवर्णनो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

अथातः पारदमारणं नाम चतुर्थाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

अब हम पारदमारण नामक चौथे अध्यायका वर्णन करते हैं ।

शिष्य उवाच ।

भगवन् यत्त्वया प्रोक्ता रसराजस्य संस्कृतिः ।
तच्छ्रुत्वा मारणोत्कण्ठा जाता तत्कथ्यतामतः ॥ १ ॥

शिष्य कहने लगा हे भगवन् ! रसराज (पारद) की संस्कारप्रणाली सुनकर मुझे पारद मारणविधि सीखनेकी उत्कंठा हुई है इसलिये कृपा करके मारणकी विधि भी कथन कीजिये ॥ १ ॥

गुरुरुवाच।

अथ ते संप्रवक्ष्यामि रसराजस्य मारणम्।
भक्षणादिविधिं तात ह्यध्यायान्ते तथैव च ॥ २ ॥

गुरु कहनेलगे–हे पुत्र! पारदके मारणकी विधि कथन करताहूं और ऐसेही इस अध्यायके अन्तमें भक्षणादि विधि भी सुनाई जावेगी सो तुम सुनो ॥ २ ॥

अथ मारणप्रकरणम्।

कृष्णधत्तूरतैलेन सूतो मर्द्यो नियामकः।
दिनैकं तं पचेद्यंत्रे कच्छपाख्ये न संशयः ॥
मृतः सूतो भवेत्सद्यो सर्वयोगेषु योजयेत् ॥ ३ ॥

सिद्ध किये पारेमें काले धतूरेका रस डालकर १ दिन घोटे और एक दिन नियामक[1] औषधियोंके रसमें घोटे फिर गोला बना उसे कच्छपयंत्रमें रखकर आँच दे तो पारा निस्सन्देह मरे इस क्रियासे सबीज और निर्बीज पारा मरताहै॥३॥

पारदमारणस्य द्वितीयविधिः।

व्यालस्य गरले सूतं मर्दयेत्सप्तवासरान्।
शम्भुनालंकृते यंत्रे तन्मध्ये तद्रसं क्षिपेत् ॥ ४ ॥
वह्निं प्रज्वालयेद्गाढं दद्यादूर्ध्वं हिमं जलम्।
यामद्वादशकं चैव सुसिद्धो जायते रसः ॥ ५ ॥
शुल्बे गुंजार्द्धकं देयं गुंजैकं पर्वतेष्वपि।
देहे लोहे भवेत्सिद्धिः कामयेत्कामिनीशतम् ॥ ६ ॥
तिलमात्रं प्रदातव्यं सर्वरोगं नियच्छति।
सेवनाज्जायते सिद्धिरायुर्वृद्धिश्चिरंतनी ॥ ७ ॥

सांपके विषमें पारेको सात दिन घोटे पश्चात् श्रीशिवजीके कहे हुए जलयंत्रमें भरकर १२ प्रहरकी आंच देवे यंत्रके ऊपर ठंढा पानी भर देवे, जिससे ऊपर ठंढा रहे, इस प्रकार पारा सिद्ध होता है, यह आधा रत्ती तांबेको बेधता है और

---

[1] नियामकऔषधि–बंदालका रस, सफेदआकका दूध, कबूतरकी बीट, गीली हंसपदीका रस, इन्द्रायनके फलका रस ये नियामक औषधि हैं।

एक रत्ती पहाडको वेध सकता है, इस रससे देह तथा सुवर्णकी सिद्धि होती हैं इसको खानेवाला पुरुष सौ स्त्रियोंसे भोग करता है, इसकी तिलके बराबर मात्रा सर्व रोगोंको नाश कर आयुका बढाती है ॥ ४–७ ॥

पारदमारणस्य तृतीयविधिः ।

शुद्धसूतं समं सिन्धुं सोमलं च तदर्धकम् ।
सोमलार्द्धं विषं क्षिप्त्वा हिंगुस्फटिकगैरिकम् ॥ ८ ॥
सामुद्रलवणं चैव सर्वं तुल्यं विनिःक्षिपेत् ।
कांजिकेन पुटं दद्यात्पुटित्वा चेन्द्रवारुणीम् ॥ ९ ॥
स्थाल्यामुत्थापनं कृत्वा अग्निं यामाष्टकं ददेत् ।
स्वांगशात समुद्धृत्य भस्मसूतोर्द्ध्वपातनम् ॥ १० ॥
योजयेत्सर्वरोगेषु कुर्याद्बहुतरां क्षुधाम् ।
पुष्टिदं वर्द्धते कामः योजयेद्रक्तिकाद्वयम् ॥ ११ ॥

शुद्ध पारा, सैंधव नमक सम भाग, संखिया आधा भाग, वच्छनाग विष चतुर्थांश, हिंग, फिटकरी, गेरू, सामुद्रनोन इन सबको समान भाग लेकर कांजीका एक पुट देवे पश्चात् इन्द्रायणका पुट देकर डमरूयंत्रमें रख आठ प्रहरकी अग्नि देवे शतिल होनेपर ऊपरकी हांडीकी जमीहुई पारेकी भस्मको निकाललेवे और संपूर्ण रोगोंमें इसकी योजना करे यह भस्म क्षुधा पुष्टि और कामदेवको बढावे इसकी मात्रा दो रत्तीकी है ॥ ८--११ ॥

पारदमारणस्य चतुर्थविधिः ।

पञ्चाग्निवर्वरीलिंगीद्रवे घस्त्रानयं रसम् ।
मार्दितः पिष्टितो भस्म स्वर्णवर्णं प्रजायते ॥ १२ ॥

पारेको चित्रकके रसमें और वनतुलसी (ववई) के रसमें तथा शिवलिंगीके रसमें पांच २ दिन मर्दन करे और इन्हींके पुट देनेसे पारेकी सुवर्णके समान भस्म होजायगी ॥ १२ ॥

पञ्चमविधिः ।

कोरटकाम्बुसंयोगादातपे मर्दयेद्रसम् ।
म्रियतेऽसौ ततः सूतः सर्वकर्माणि साधयेत् ॥ १३ ॥

पियावांसेके रसमें पारेको घोटकर धूपमें रक्खे तो पारा मरे यह सम्पूर्ण कार्य सिद्ध करता है ॥ १३ ॥

षष्ठविधिः ।

भुजङ्गवल्लीनीरेण मर्दयेत्पारदं दृढम् ।
कर्कटीकन्दमूषायां संपुटस्थं पुटे गजे ॥ १४ ॥
भस्म तद्योगवाही स्यात्सर्वकर्मसु योजयेत् ॥ १५ ॥

पारेको नागरबेलके रसमें दो पहर घोटे फिर ककडी कन्दमें भर और संपुट करके गजपुटमें फूंकदेवे तो पारेकी योगवाही भस्म होवे, इसको सब कामोंमें योजित करे ॥ १४ ॥ १५ ॥

सप्तमविधिः ।

काष्ठोदुम्बरिकादुग्धै रसं किंचिद्विमर्दयेत् ।
तद्दुग्धैर्भृष्टहिंगोश्च मूषायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ १६ ॥
क्षिप्त्वा तत्संपुटे सूतं तत्र मुद्रां प्रकल्पयेत् ।
धृत्वा तद्गोलकं प्राज्ञो मृन्मूषासंपुटेऽधिके ॥ १७ ॥
पचेद्गजपुटे तेन सूतको याति भस्मताम् ॥ १८ ॥

कठूमरके दूधमें पारेको खरल कर कठूमरके दूधसे भुनी हुई हींगके दो मूषा बनाकर उनके बीचमें रखके ऊपर मुद्रा करे, उसको बुद्धिमान् वैद्य माटीकी मूषाके भीतर रखके गजपुटमें पचावे तो पारा भस्म होवे ॥ १६–१८ ॥

अष्टमविधिः ।

वटक्षीरेण सूताभ्रौ मर्दयेत्प्रहरद्वयम् ।
पाचयेत्तेन काष्ठेन भस्मीभवति तद्रसः ॥ १९ ॥

पारे और अभ्रकको दो प्रहरतक बरगदके दूधमें खरल करे पश्चात् कडाहीमें चढाकर वटकी लकडीसे चलातारहे तो पारद भस्म होजाता है ॥ १९ ॥

नवमविधिः ।

कटुतुम्ब्युद्भवे कन्दगर्भे नारीपयःप्लुतः ।
सप्तधा म्रियते सूतः स्वेदितो गोमयाग्निना ॥ २० ॥

पारेको स्त्रीदूधमें घोटकर कडवीतुंबी और जमीकंदमें रख अग्नि देवे इस तरह सातबेर उपलोंकी अग्नि देनेसे पारा भस्म होता है ॥ २० ॥

दशमविधिः ।

अपामार्गस्य बीजानि तथैरंड च चूर्णयेत् ।
तच्चूर्णं पारदे देयं मूषायामधरोत्तरम् ।
रुद्धा लघुपुटैः पश्चाच्चतुर्भिर्भस्मतां व्रजेत् ॥ २१ ॥

चिडाचिडा और अण्डीके बीजोंको पीसकर मूषाके नीचे आधा चूर्ण रखके पारेको धरे ऊपर आधा चूर्ण रखके दूसरे मूषाको बंद करदेवे और चार दफे लघुपुट देवे तो पारा भस्म होजावे ॥ २१ ॥

एकादशविधिः ।

देवदाली हंसपादी यवतिक्ता पुनर्नवा ।
ताभिः सूतो विमृष्टव्यो म्रियते नात्र संशयः ॥ २२ ॥

देवदाली (बंदाल), हंसपदी, यवतिक्ता (शंखाहूली), पुनर्नवा (सांठी) इनमें खरल करनेसे पारदकी भस्म होजाती है ॥ २२ ॥

द्वादशविधिः ।

नवप्रसूतासुरभिजरायुमिश्रितो धुवम् ।
अन्धमूषागतो ध्मातो म्रियते पारदस्तराम् ॥ २३ ॥

नवीन व्याई हुई गौकी जेरमें मिलाकर पारदको अंधमूषामें फूंकनेसे पारद मर जाता है ॥ २३ ॥

त्रयोदशविधिः ।

लज्जालुरससंपिष्टो रसो हिंग्वतसीरसौ ।
ध्मातः शनैः शनैः शुद्धो रसो भस्मत्वमाप्नुयात् ॥
मध्वाज्यटंकणोपेतो ध्मातः शुद्धो भवत्यपि ॥ २४ ॥

लाजवन्तीके रसमें पारद खरल करके हींग और अलसीके रसमें खूब घोट मूषामें रखकर धीरे २ धमावे ऐसे पारदकी शुद्ध भस्म हो जाती है तथा सहद सुहागा घी इनमें मिलाकर मूषामें रख धमानेसे शुद्ध होजाती है ॥ २४ ॥

चतुर्दशविधिः ।

लज्जालुरससंपिष्टो निबद्धः पारदो भवेत् ।
नष्टपिष्टो विधातव्यो मूषिकामध्यसंस्थितः ॥
तद्रसैश्च पुनः सम्यङ् म्रियते पुटपाकतः ॥ २५ ॥

लाजवन्तीके रसमें घोटनेसे पारद बद्ध हो जाता है जब वह बंध जावे फिर लाजवन्तीके रसमें पुटपाक करनेसे पारद मर जाताहै ॥ २५ ॥

पञ्चदशविधिः ।

विष्णुक्रान्ता ह्यपामार्गो ह्यहिफेनेन्द्रवारुणी ।
सर्वेषां च रसे पिष्टो म्रियते सूतकः पुटात् ॥ २६ ॥

विष्णुक्रान्ता, अपामार्ग (चिरचिरा), अफीम, इन्द्रायण इन सबके रसमें घोटकर पुट देनेसे पारद मर जाता है ॥ २६ ॥

मदनमुद्रा ।

औदुम्बरार्कवटदुग्धपलं तथा च लाक्षापलं पलचतुष्टयचुम्बकं च ।
संमर्द्य सम्यगलसीफलतैलयोगाच्छ्रीपारदस्य मरणे मदनाख्यमुद्रा॥२७॥

गूलर, आक, वट इन प्रत्येकका दूध दो दो पैसे भर चुम्बक पत्थरका चूरा आठ पैसे भर सबको अलसीके तेलमें घोटे तो यह मदनमुद्रा सिद्ध होताहै इससे सन्धिलेप करनेसे संधि दृढ होती है कितनाही गरम पानी हो परन्तु यह मुद्रा नहीं चूती और इसी मुद्राके प्रभावसे जलयंत्रद्वारा गन्धकका तेल निकाला जाताहै॥२७॥

मृतपारदस्य लक्षणम् ।

अतेजाश्च गुरुः शुभ्रो लोहहा चंचलो रसः ।
यदा नावर्त्तते वह्नौ नोर्ध्वं गच्छेत्तदा मृतः ॥ २८ ॥

जो पारा तेजहीन, हलका, सफेद, लोहेको मारनेवाला चंचलता रहित अग्निमें रखनेसे उछले नहीं और उडेभी नहीं उसको मरा हुआ पारा जानना चाहिये॥२८॥

रससेवाफलम् ।

बुद्धिः स्मृतिः प्रभा कान्तिर्बलश्चैव रसस्तथा ।
वर्द्धन्ते सर्व एवैते रससेवाविधौ नृणाम् ॥ २९ ॥

मनुष्योंकी बुद्धि, स्मृति, प्रभा, कान्ति, बल तथा रस पारेके सेवनसे बढते हैं ॥ २९ ॥

रससेवनविधिः ।

प्रातरेव पुरुषो विरेचनं तद्दिनोपवसनं विधाय च।
तत्परेऽहनि च पथ्यसेवनं तत्परेऽहनि रसेन्द्रसेवनम् ॥ ३० ॥

मनुष्य प्रातःकाल जुलाब लेकर उस दिन लंघन करै दूसरे दिन पथ्य सेवन करके तीसरे दिन पारेका भक्षण करे ॥ ३० ॥

पारदस्य मात्रा ।

वल्लमेकं नरेऽश्वे तु गद्याणैकं गजे द्वयम् ।
सर्वरोगविनाशार्थं भिषक् सूतं प्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥

मनुष्यको मूर्च्छित अथवा मृत पारदकी मात्रा दो रत्तीकी है, घोडेको एक गद्याणक और हाथीको दो गद्याणक पारा सम्पूर्ण रोगोंके नाश करनेके लिये वैद्य योजना करे ॥ ३१ ॥

घनसत्त्वकान्तकाञ्चनशंकरतीक्ष्णादिसत्त्वजीर्णस्य ।
सूतस्य गुंजवृद्धया माषकमात्रं परा मात्रा ॥ ३२ ॥

जिस पारेमें अभ्रकसत्त्व जारण हुवाहो उसकी १ रत्तीकी मात्रा है कान्तलोहजारित पारदकी मात्रा २ रत्तीकी सुवर्णजारित पारेकी ३ रत्तीकी चांदीजारितकी ४ रत्तीकी और तीक्ष्णजारित पारेकी ५ रत्ती मात्रा कही है, और बडी मात्रा १ मासेकी है जो मनुष्य एक फल तीक्ष्ण जारित पारेको सेवन करताहै उसकी लाख वर्षकी आयु होती है इसी तरह सुवर्ण जारित पारेके भक्षणसेभी लक्षायु होती है॥३२॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

पारदभस्मगुणः ।

यावन्न हरबीजं तु भक्षयेत्पारदं मृतम् ।
तावत्तस्य कुतो मुक्तिर्भोगाद्रोगाद्भवादपि ॥ ३३ ॥

जब तक मनुष्य शिवका बीज मरेहुए पारेका भक्षण नहीं करे तब तक क्या भोग, रोग और संसारसे मुक्ति हो सकती है कभी नहीं ॥ ३३ ॥

तथा च ।

मूर्च्छातो गदहृत्तथैव खगतिं धत्ते विबद्धोर्थदः
स्याद्भस्मामयकार्धकादिहरणं दृक्पुष्टिकान्तिप्रदम् ।
वृष्यं मृत्युविनाशनं बलकरं कान्ताजनानन्ददं
शार्दूलातुलसत्त्वकृच्च भुविजात्रोगान्निहन्ति स्फुटम् ॥ ३४ ॥

मूर्च्छित पारा रोगोंको हरताहै और आकाशमें चलनेकी शक्ति देताहै बद्ध पारा धन देताहै भस्म भया पारा बुढापेके रोगोंको नाश करताहै नेत्रोंमें ज्योति पुष्टि और कान्तिको देताहै । वृष्य है, मृत्युको नाश करता है, बलकारक स्त्रियोंको

आनन्ददायी सिंहके समान पराक्रम देनेवाला और पृथ्वीके सभी रोगोंको दूर करनेवाला है ॥ ३४ ॥

एको दोषो हि सूक्ष्मोऽस्ति भक्षिते भस्मसूतके ।
त्रिसप्ताहात्प्रियवटो कामान्धो जायते नरः ॥ ३५ ॥
नारीसंगाद्विनाऽवश्यमजीर्णं तस्य जायते ।
मैथुनाच्चालिते शुक्रे जायते प्राणसंशयः ॥ ३६ ॥

हे प्रिय शिष्य ! पारदभस्म भक्षणमें एक बडा भारी दोष है कि पारेको खातेही २१ दिनमें मनुष्य कामान्ध होजाताहै उस समय विना स्त्रीसंग किये तो पारेका अजीर्ण होता है और यदि मैथुन करे तो वीर्य स्खलित होते ही मनुष्यके प्राण बचनेका सन्देह होजाता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

सूते गर्भनियोजितार्धकनके पादांशनागेऽथवा
पश्चाङ्कुष्ठकशाल्मलीकृतमदश्लेष्मातबीजैस्तथा ।
तद्वत्तेजनिकोलकाख्यफलजैश्चूर्णं तिलं पत्रक
तप्ते खल्वतले निधाय मृदिते जाता जलूका वरा ॥ ३७ ॥

शुद्ध पारेमें आधा भाग सोना अथवा चौथा भाग डालना, पीछे दोनोंको तप्तखल्वमें डालं रेंडीकी मींग, सेमलके फूल या गोंद लसोडेके बीज, मालकांगनी, शीतलचीनी इनका चूण, तमालपत्र, तिल यह हरएक चीज पारेसे सोलहवां हिस्सा डालकर खूब घोटके जलूका बनाना ॥ ३७ ॥

सैषा स्यात्कपिकच्छुरोमपटले चन्द्रावतीतैलके
चन्द्रेटंकटकामपिप्पलिजले स्विन्ना भवेत्तेजिनी ।
तप्ते खल्वतले विमद्य विधिवद्यत्नाद्वटी या कृता
सा स्त्रीणां मददर्पनाशनकरी ख्याता जलूका वरा ॥ ३८ ॥

अथवा पूर्वोक्तरीतिसे तैयार की हुई जलूकामें पारेसे सोलहवां भाग कौंचके रोम डालके १ दिन बावचीके तेलमें मलकर १ दिन कपूरके पानीसे खरल करै, फिर गोली बनाकर भोजपत्रमें बाँधे फिर १ पात्रमें सुहागा और पीपलके पानीमें उसे लटकाके २ घंटेतक भापदेवे, पीछे तप्तखल्वमें डाल और मलके जैसी चाहै जलूका बनावे यह जलूका स्त्रियोंके मानको मर्दन करती है ॥ ३८ ॥

बाल्ये चाष्टाङ्गुला योज्या यौवने च दशाङ्गुला ।
द्वादशैव प्रगल्भानां जलौका त्रिविधा मता ॥ ३९ ॥

यह जलूका सोलह वर्षकी स्त्रीके लिये ८ अंगुल लंबी, जवानके लिये १० अंगुल लंबी और स्थिर अवस्थावालीके लिये १२ अंगुलकी काममें आती है ॥ ३९ ॥

धृत्वा सूतमुखे पात्रे मेषीक्षीरं प्रदापयेत् ।
स्थापयेदातपे तीव्रे वासराण्येकविंशतिम् ॥ ४० ॥

किसी हँडियामें पारा रखकर भेंडीका दूध डाले फिर उसे तेज धूपमें रखकर सुखाडाले, इस प्रकार २१ बार करे तो पारा जम जाता है, फिर उसकी बत्तीसी बनाकर अभीष्ट प्रयोग करे ॥ ४० ॥

द्वितीयात्र मया प्रोक्ता जलौका द्रावणे हिता ॥
पुरुषाणां स्थिता मूर्ध्नि द्रावयेद्वनिताकुलम् ॥ ४१ ॥

दूसरी जलूका जो मैंने कही है वह स्त्रियोंको स्खलित करनेमें हित है । मनुष्य यदि उसे अपने शिरमें बांधले तो बहुत स्त्रियोंको स्खलित कर सकताहै ॥ ४१ ॥

मुनिपत्ररसश्चैव शाल्मलीवृन्तवारि च ।
जातीमूलस्य तोयं च शिंशपातोयसंयुतम् ॥ ४२ ॥
श्लेष्मातकफलं चव त्रिफलाचूर्णमेव च ।
कोकिलाक्षस्य चूर्णं च पारदं मर्दयेद्बुधः ॥ ४३ ॥
श्लेष्मातकफलं चैव त्रिफलाचूर्णमेव च ।
कोकिलाक्षस्य चूर्णश्च पारदं मर्दयेद्बुधः ॥ ४४ ॥
जलूका जायते दिव्या सभाजनमनोहरा ।
सा योज्या कामकाले तु कामयेत्कामिनी स्वयम् ॥ ४५ ॥

पारेको खरलमें डालकर अगस्त्यके पत्तोंका रस सेमरके फूलकी डंडीका रस, चमेलीकी जडका रस, सीमलका रस, लसोढाके फल, हरडे, बहेडे और आँवलोंका चूर्ण, तालमखानेका चूर्ण इन प्रत्येककी एक एक दिन पारेमेंभी भाव देवे तो स्त्रियोंको मन हरनेवाली जलूका बनजाती है स्त्रीसंगके समय उसके उपयोगसे स्त्री स्वयं पुरुषको चाहती है ॥ ४२-४५ ॥

त्रिफलाभृंगमहौषधमधुसर्पिश्छागदुग्धगोमूत्रे ।
नागं सप्त निषिक्तं समरसजारितं जलूका स्यात् ॥ ४६ ॥

त्रिफला, भाँगरा, सोंठ, शहद, घी, बकरीका दूध और गोमूत्रमें एक एक बार आगमें पिघलाया हुआ शीशा और उसीके बराबर पारा जारण करनेसे जलूका बन जाती है ॥ ४६ ॥

भानुस्वरदिनसंख्याप्रमाणसूतं गृहीतदीनारम् ।
अङ्कोलराजवृक्षककन्यारसतश्च शोधनं कुर्यात् ॥ ४७ ॥

२६ भाग पारेमें १ भाग सोना मिलाकर अंकोल, अमलतास और ग्वारपाठेसे शोधन करना चाहिये ॥ ४७ ॥

शशिलेखावरवर्णीसकोकिलापामार्गकनकानाम् ।
चूर्णैः सहैकविंशति दिनानि सम्मर्दयेत्सम्यक् ॥ ४८ ॥
निशायाः काञ्जिकं यषं दत्त्वा योनौ प्रवेशयेत् ।
बालमध्यमवृद्धासु योज्या विज्ञाय तत्क्रमात् ॥ ४९ ॥
नीरसानामपि नृणां योषा स्यात्सङ्गमोत्सुका ॥ ५० ॥

बावची, रोचना, तालमखाना, चिरचिरा और धतूरेके बीज इन सबका संमभाग चूर्ण डालकर हलदी और काँजीसे २१ दिन तक भलीभाँति मर्दन करे पीछे पूर्वोक्त प्रमाणकी जलूका बना, और उसे सुखाकर बाल वृद्धा इत्यादि स्त्रियोंमें यथेच्छ उपयोग करनेसे नीरस मनुष्योंके लियेभी स्त्रियां कामातुर होजाती हैं ॥ ४८–५० ॥

रसभागं चतुष्कं च वङ्गभागं च पञ्चमम् ।
सुरसारससंयुक्तं टंकणेन समन्वितम् ॥ ५१ ॥
त्रिदिनं मर्दयित्वा च गोलकं तं रसोद्भवम् ।
लिंगाग्राद्योनिनिक्षिप्तं यावदायुर्वशंकरम् ॥ ५२ ॥

चार भाग पारा पाँचवां भाग वंग और सुहागेको तुलसीके रसमें ३ दिन घोटकर गोली बनालेवे, फिर उसे बत्तीसी बनाकर लिंगके मुखमें रखकर स्त्रीसे संभोगकरे तो जबतक स्त्री जीवे वशमें रहे ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

कर्पूरसूरणसभृङ्गसमेघनादैर्नागं निषिच्य तु मिथो वलयेद्रसेन । लिङ्गास्थितेन वलयेन नितम्बिनीनां स्वामी भवत्यनुदिनं सतुजीवहेतुः ॥५३॥

कपूर जमीकंद भांगरा और चौलाईके रसमें सीसेको बुझाकर फिर पारा मिलाकर छल्ला बनाले इसे इन्द्रीपर धारण करनेसे स्त्रियें वशमें होती हैं ॥ ५३ ॥

टङ्कणपिप्पलिकाभिः सूरणकर्पूरमातुलुङ्गरसैः ।
कृत्वा स्वलिङ्गलेपं योनिं विद्रावयेत्स्त्रीणाम् ॥ ५४ ॥

सुहागा मघपीपल जमीकन्द और कपूरको बिजौरे नींबूके रसमें घिसकर इन्द्रीपर लेप करनेसे स्त्री योनी शीघ्र स्खलित होती है ॥ ५४ ॥

अग्न्यावर्तितनागे हरबीजं निक्षिपेत्ततो द्विगुणम् ।
मुनिकनकनागवल्लीरसेन सिंच्याच्च तन्मध्यम् ॥ ५५ ॥

सीसेको अग्निद्वारा गलाकर अगस्त धतूरा और नागरबेलके रसमें बुझावे फिर उससे दूना पारा मिलावे ॥ ५५ ॥

तक्रेण मर्दयित्वा तीक्ष्णेन मदनवलयं कुर्यात् ।
रतिसमये वनितानां रतिगर्वविनाशनं कुरुते ॥ ५६ ॥

तथा थोडा विष डाल तक्रमें मर्दन कर छल्ला बनाले रति समय,इसके धारण करनेसे प्रौढाकाभी मद मर्दन होता है ॥ ५६ ॥

व्याघ्रीबृहतीफलरससूरणकन्दं च चणकपत्राम्लम् ।
कपिकच्छुवज्रवल्लीपिप्पलिकामाम्लिकचूर्णम् ॥ ५७ ॥
अग्न्यावर्तितनागं नववारं मर्दयेदिमैर्द्रव्यैः ।
स्मरवलयं कृत्वैतद्वनितानां द्रावणं कुरुते ॥ ५८ ॥

सीसेको गला २ कर कटेरी बडी कटेरीके फल जमीकंद चनाखार कौंच बीज हडसंधारी मघपीपल और इमलीका चूर्ण इनके काढेमें ९ वार बुझाकर छल्ला बनाले इसके धारण करनेसे कामिनी शीघ्र स्खलित होती है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

दोषशमनोपायः ।

युवत्या जल्पनं कार्यं तावत्तन्मैथुनं त्यजेत् ।
लघुतां शेफसो ज्ञात्वा पश्चाद्गच्छन् सुखी भवेत् ॥ ५९ ॥

इससे जबतक पारा पच न जाय तब तक स्त्रियोंसे मधुर २ वार्त्तालाप करता रहे, पर मैथुन न करे पारद भक्षणके पूर्व लिंग लघु होता है, और पश्चात् दीर्घ होजाता है । जब फिर लिंग लघु हो तब मैथुन करे, इससे पारा जीर्ण होने पर जो स्त्रीसंग करै तो सुखी होता है ॥ ५९ ॥

पारदभस्मानुपानम् ।

पिप्पली मरिचं शुंठी भारंगी मधुना सह ।
कासश्वासप्रशमनो शूलस्य च विनाशनः ॥ ६० ॥
हरिद्राशर्करायुक्तो रुधिरस्य विकारनुत् ।
त्र्यूषणं त्रिफला वासा कामलापाण्डुरोगजित् ॥ ६१ ॥
शिलाजतु तथैला च शितोपलसमन्वितः ।
मूत्रकृच्छ्रे प्रशस्तोऽयं सत्यं नागार्जुनोदितम् ॥ ६२ ॥
लवंगकुसुमं पत्री हिंगुलं अकलंकरा ।
पिप्पली विजया चैव समान्येतानि कारयेत् ॥ ६३ ॥
कर्पूरादहिफेनानि नागाद्भागार्द्धकं क्षिपेत् ।
सर्वमेकत्र संमर्द्य धातुवृद्धौ प्रदापयेत् ॥ ६४ ॥
सौवर्चलं लवंगं च भूनिंबं च हरीतकी ।
अस्यानुपानयोगेन सर्वज्वरविनाशनः ॥ ६५ ॥
तथा रेचकरः प्रोक्तः सौवर्चलफलत्रिकम् ।
लवंग कुसुमं चैव दरदेन च संयुतम् ॥ ६६ ॥
तांबूलेन समं भक्ष्यं धातुवृद्धिकरो मतः ।
विजयादीप्यसंयुक्तो वमनस्य विकारनुत् ॥ ६७ ॥
सौवर्चलं हरिद्रा च विजया दीप्यकं तथा ।
अनेनोदरपीडां च सद्योजातां विनाशयेत् ॥ ६८ ॥
चतुर्वल्लीपलाशस्य बीजं च द्विगुणो गुडः ।
अस्यानुपानयोगेन कृमिदोषविनाशनः ॥ ६९ ॥
अहिफेनं लवंगं च दरदं विजया तथा ।
अस्यानुपानतः सद्यः सर्वातीसारनाशनः ॥ ७० ॥
सौवर्चलेन दीप्येन अग्निमांद्यहरः परः ।
क्षुद्बोधजनकश्चैव सिद्धनागेश्वरोदितम् ॥ ७१ ॥
गुडूचीसत्त्वयोगेन सर्वपुष्टिकरः स्मृतः ॥ ७२ ॥

पीपल, मिर्च, सोंठ, भारंगी इनके चूर्ण और सहदके साथ पारदभस्म खानेसे खांसी, श्वासको शमन करती है और शूलको नाश करती है। हलदी और शक्कर युक्त खूनके विकारोंको नाश करती है। सोंठ, मिर्च, पीपल, आँवला, हर्र, बहेडा और अडूसाके साथ कामला और पाण्डुरोगको जीतती है। शिलाजीत, इलायची और शक्करके साथ खानेसे मूत्रकृच्छ्र रोगको निश्चय दूर करती है ऐसा सिद्ध नागार्जुन मुनिने कहा है। लौंग, केशर, तालीसपत्र, हिंगुल, अकरकरा, पीपल, भांग समान भाग लेवे कपूर, अफीम और नाग (शीसा) की भस्म आधा भाग इन सबको एकत्रित चूर्ण करके पारद भस्मके साथ धातुवोंकी वृद्धि करनेके लिये खावे। सोचर (काला) नमक, लौंग, चिरायता और हर्रके अनुपानके साथ सम्पूर्ण ज्वरोंको नाश करे। सोचर नमक, त्रिफला, लौंग, केशर और सिंगरफके संग रेचन (जुल्लाब) करे। पानके साथ तथा विदारीकंदके चूर्णके साथ धातु वृद्धि करे। भांग और अजवायनके साथ वमनको नाश करे। सोचर नमक, हलदी, भांग और अजवायनके चूर्णके संग सेवन करनेसे पेटके दर्दको जल्दी नाश करे। चतुर्वल्ली, पलाश (ढाक) बीज इनसे दूना गुड लेवे इस अनुपानके योगसे कृमिदोषको नाश करे। अफीम, लौंग, शिंगरफ और भांग इसके साथ सम्पूर्ण अतीसारोंको शीघ्र नाश करे। सोचरनमक और अजवायनके साथ अग्निमांद्यको नाश करके भूंख बढावे ऐसा सिद्ध नागेश्वरने कहा है। गिलोयके सत्त्वके साथ पारदभस्म सेवन करनेसे पुष्टिकारक होती है ॥ ६०–७२ ॥

तथाच ।

पित्ते शर्करयामलेन च समं वाते च कृष्णायुतं
दद्याच्छ्लेष्मणि शृंगवेरसहितं जंबीरनीरैर्ज्वरे ॥
रक्तोत्थे मधुना प्रवाहरुधिरे स्यान्मेघनादोदके
दद्याच्चाथ कृतातिसारविकृतौ रोगारिसंज्ञं रसम् ॥ ७३ ॥

पित्तरोगोंमें पारेकी भस्म शक्कर और आमलोंके चूर्ण सहित देवे। वायुविकारोंमें पीपलके साथ कफरोगोंमें, अदरखयुक्त ज्वरमें जंबीरीके रसमें देवे। रुधिरविकारोंमें सहतके साथ रुधिरस्राव, प्रवाहिका, प्रदर, अतीसारमें चौलाईके रसके साथ पारेकी भस्म देना चाहिये ॥ ७३ ॥

पारदभक्षणकालः ।

अर्चयित्वा यथाशक्ति देवगोब्राह्मणानपि ।
पर्णखण्डे धृतं सूतमद्याद्योग्याऽनुपानतः ॥ ७४ ॥

प्रभाते भक्षयेत्सूतं पथ्यं यामद्वयाधिके ।
नोल्लंघयेत् त्रियामं तु मध्याह्ने नैव सर्वथा ॥ ७५ ॥
ताम्बूलान्तर्गते सूते विड्बंधो नैव जायते ।
सकणं साऽमृतं भुक्त्वा मलबंधं हरेन्निशि ॥ ७६ ॥

यथाशक्ति देवता, गौ, ब्राह्मणोंका पूजन करके पानपर रखकर खावे अथवा पानमें रखकर यथोचित अनुपानसे खावे । पारेकी भस्म (चन्द्रोदय अथवा रसकपूर) को प्रातःकालमें खावे और दो पहर पश्चात् पथ्य करे परन्तु तीन प्रहर न व्यतीत होने देवे और मध्याह्नमें हमेशा भोजन न करे पानके साथ पारद भस्म सेवन करनेसे मलबन्ध नहीं होता अथवा विष और पीपलके साथ रात्रिमें सेवन करनेसे मलबंध नहीं होता ॥ ७४-७६ ॥

पारदे[1] पथ्यानि ।

हितं मुद्गान्नदुग्धाज्यशाल्यन्नानि सुनिश्चितम् ।
शाके पुनर्नवा चैव मेघनादश्च वास्तुकम् ॥ ७७ ॥
सैंधवं नागरं मुस्ता मूलकानि च भक्षयेत् ।
कुंकुमागुरुलेपं च तथा कर्पूरभक्षणम् ॥ ७८ ॥
गोधूमजीर्णशाल्यन्नं गव्यं क्षीरं घृतं दधि ।
हंसोदकं मुद्गयूषं रसेन्द्रे च हितं विदुः ॥ ७९ ॥
अभ्यंगं गालितैः क्षौमैस्तैलैर्नारायणादिभिः ।
अबलाशीततोयं च मस्तकोपरि सेचयेत् ॥ ८० ॥
तृष्णायां नारिकेलाम्बु मुद्गयूषं सशर्करम् ।
द्राक्षादाडिमखर्जूरं रुच्यमन्यत्फलं भजेत् ॥ ८१ ॥

मूंग, दूध, घी, चावल शाकोंमें गदापुरैना, चौलाई, बथुवा, सैंधवनमक, सोंठ, नागरमोथा, मूली भक्षण करना चाहिये केशर और अगरका लेप तथा कपूरका भक्षण करे गेहूं पुराने चांवल गौका दूध, घी, दही, हंसोदक (तप्तं तप्तांशुकिरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः । समन्तादप्यहोरात्रमगस्त्योदयानिर्विषम् ॥ १ ॥

---

(१) पारदभस्मनिपथ्यम् ॥ घृतसैंधवधान्याकजीरकार्द्रकसंस्कृतम् । तण्डुलीयकधान्याकपटोलाऽलंबुषादिकम् ॥ गोधूमजीर्णशाल्यन्नं गव्यं क्षीरं घृतं दधि । हंसोदकं मुद्गरसः पथ्यवर्गः समासतः ॥

शुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिज्जलम् । नाभिष्यान्दि न वा रूक्षं पानादिष्वमृतोपमम्॥२॥ दिनभर सूर्यकी किरणोंसे गर्म हुआ रातभर चन्द्रमाकी किरणोंसे ठंढा हुआ अगस्त्यके उदय होजानेसे विषदोषरहित शुद्ध धूल तिनका आदि न रहनेसे स्वच्छ, विष्टम्भनाशक, हलका, रूक्षतारहित पीने रसोई बनाने आदि कामोंमें अमृतके तुल्य यह हंसोदक समझना चाहिये) मूंगका यूष, नारायण इत्यादि तैलोंको रेशमी कपडेमें छानकर देहमें मालिश करना स्त्रीद्वारा मस्तकको शीतल जलसे तर कराना चाहिये प्यास लगनेपर चीनी मिलाकर नारियलका जल अथवा सक्करयुक्त मुंगका यूष पीना चाहिये । दाख, अनार, खजूर और रुचिकर दूसरे फलोंका भक्षण करे उपरोक्त पदार्थोंका सेवन पारदभस्मके भक्षणमें पथ्य और हितकारक हैं ॥ ७७–८१ ॥

पारदभक्षणे[1] वर्ज्यपदार्थाः ।

अतियानं चासनं च अतिनिद्रातिजागरम् ।
स्त्रीणामतिप्रसंगं च ध्यानं चापि विवर्जयेत् ॥ ८२ ॥
अतिहर्षं चातिकोपं चातिदुःखमतिस्पृहाम् ।
शुष्कवादं जलक्रीडामतिचिंतां विवर्जयेत् ॥ ८३ ॥
कूष्माण्डं कर्कटीं चैव कारवेल्लं कलिंगकम् ॥
कुसुंभिका च कर्कोटी कदली काकमाचिका ॥ ८४ ॥
ककाराष्टकमेतद्धि वर्जयेद्रसभक्षकः ॥
कुलत्थानतसीतैलं तिलान्माषान्मसूरकान् ॥ ८५ ॥

---

१ पारदभस्मनिकुपथ्यम्–बृहती बिल्वकूष्माण्डं वेत्राग्रं कारवेल्लकम् ॥ माषं मसूरं निष्पावं कुलित्थं सर्षपं तिलम् ॥ १ ॥ लंघनोद्वर्त्तनस्नानताम्रचूडसुरासवान् ॥ आनूपमांसं धान्याम्लं भोजनं कदलीदले ॥२॥ कांस्ये च गुरु विष्टंभि तीक्ष्णोष्णां च भृशं त्यजेत् ॥३॥ कंटारीफलकांजिकं च कमठस्तैलं तथा राजिका निंबूकं कतकं कलिंगकफलं कूष्माण्डकं कर्कटी ॥ केकी कुक्कुटकारवेल्लकफलं कर्कोटिकायाः फलं वृंताकं च कपित्थकं खलु गणः प्रोक्तः ककारादिकः ॥ ४ ॥ देवीशास्त्रोदितः सोऽयं ककारादि गणो मतः ॥ शास्त्रान्तरविनिर्दिष्टः कथ्यतेऽन्यप्रकारतः ॥५॥ कंगुः कंदुककोलकुक्कुटकलक्रोडाः कुलत्थास्तथा कंटारी कटुतैलकृष्णगलकः कूर्मः कलायः कणा ॥ कर्कारु च कटिल्लकं च कतकं कर्कोटकं कर्कटी कालीकांजिकमेषकादिकगणः श्रीकृष्णदेवोदितः ॥ ६ ॥ यस्मिन् रसे च कण्ठोक्त्या ककारादिर्निषेधितः ॥ तत्र तत्र निषेद्धव्यं तदौचित्यमतोऽन्यतः ॥ ७ ॥

कपोतान् कांजिकं चैव तक्रभक्तं च वर्जयेत् ।
कट्वम्लतीक्ष्णलवणं पित्तलं पैत्तिकं च यत् ॥ ८६ ॥
बदरं नारिकेरं च सहकारं सुवर्चलम् ।
वार्त्ताकं राजिकां चैव वातलानि विवर्जयेत् ॥ ८७ ॥
निंदास्त्रीदेवतानां च पापाचरणकं त्यजेत् ॥ ८८ ॥

बहुत चलना, बहुत बैठना, बहुत सोना और अत्यन्त जागरण करना अत्यन्त स्त्रीप्रसंग करना (अर्थात् मैथुन करना तौ सर्वथा वर्जितही है परन्तु स्त्रियोंका अधिक दर्शन और अधिक वार्त्तालापभी न करना चाहिये) और अत्यन्त स्त्रियोंका ध्यान करना वर्जित है बहुत खुशी अत्यन्त क्रोध अतिदुःख और इच्छा इनको न करे व्यर्थ झगडा जलक्रीडा और अतिचिन्ता इनको छोड देवे कुम्हडा, ककडी, करेला, कलौंदा, कुसुम, ककौंटी, केला और मकोय इस ककाराष्टकको पारद भक्षण करनेवाला छोडदेवे । कुलथी, अलसीका तेल, तिल, उडद, मसूर, कबूतरका मांस, कांजी और दहीभात वर्जित है । कडु, खट्टी, तीक्ष्ण, नमकीन अधिक अथवा न्यून पित्त उत्पन्न करनेवाले पदार्थ बेर, नारियल, आम, हुरहुर, बैंगन, राई, और वायुको उत्पन्न करनेवाले पदार्थ वर्जित हैं । स्त्री और देवताओंकी' निंदा पापकर्म इतनी बातोंको पारदको सेवन करनेवाला छोड देवे ॥ ८२--८८ ॥

अजीर्णोत्थरोगाचिकित्सा ।

एवं चैव महान् व्याधी रसेऽजीर्णे तु भक्षयेत् ।
कर्षकं स्वर्जिकाक्षारं कारवेल्लरसप्लुतम् ॥
सौवर्चलरसोपेतं रसेऽजीर्णे पिबेद्बुधः ॥ ८९ ॥

पारेके अजीर्ण होनेपर बडे २ रोग उत्पन्न होते हैं उनके शान्त करनेके लिये सज्जीखारको करेले और हुरहुरके रसमें मिलाकर खावे ॥ ८९ ॥

रसपाकलक्षणम् ।

अनुलोमगतिर्वायुः स्वस्थता सुमनस्कता ।
क्षुत्तृष्णेन्द्रियवैमल्यं रसपाकस्य लक्षणम् ॥ ९० ॥

भलीभांति अपानवायुका चलना चित्तमें स्वस्थता प्रसन्नमन भूँख और प्यास यथार्थ लगना इन्द्रियोंका निर्मल होना । ये लक्षण पारेके पचनेके हैं ॥ ९० ॥

अशुद्धपारदभक्षणे दोषाः ।

संस्कारहीनं खलु सूतराजं यः सेवते तस्य करोति बाधाम् ।
देहस्य नाशं विदधाति नूनं कुष्ठादिरोगाञ्जनयेन्नराणाम् ॥९१॥

जो मनुष्य अशुद्ध पारेका सेवन करते हैं उनको अनेकभांतिके विकार होते हैं। देहका नाश और कुष्ठ तथा रुधिरविकार आदि अनेकरोग उत्पन्न होते हैं ॥९१॥

विकारा यदि जायन्ते पारदान्मलसंयुतात् ।
सेवेत गन्धकं धीमान् पाचितं विधिपूर्वकम् ॥ ९२ ॥

मलयुक्त (अशुद्ध) पारेको भक्षण करनेसे यदि विकार उत्पन्न होवें तो विधिपूर्वक आवलासार गन्धकको शुद्ध करके सेवन करे। अथवा दाख, पेठा, तुलसी, सौंफ, लौंग, तज और नागकेशर सम भाग सबके बराबर गंधक लेकर एकमें मिलाकर इसको दो पहर तक देहमें मर्दन करे ठंढे पानीसे स्नान करे इस प्रकार तीन दिन करनेसे अशुद्ध पारदके विकार दूर होजाते हैं अथवा करेलेकी जडका काढा पीना चाहिये अथवा नागरबेल भांगरा और तुलसीका रस तथा बकरीका दूध प्रत्येक सेर २ भर लेकर सबको मिलाकर सर्वदेहमें मालिस करके ठंढे पानीसे स्नान करे तीन दिन इस प्रकार करनेसे पारदविकार दूर होजाते हैं ॥ ९२ ॥

रसकर्पूरदोषाः ।

सेवितोऽविधिना कुष्ठं संधिवातं कफाधिकम् ।
रसकर्पूरकं कुर्यात्तस्माद्यत्नेन सेवयेत् ॥ ९३ ॥

विधिरहित रसकपूरको सेवन करनेसे कोढ संधिवात (गठिया) और कफवृद्धि करताहै इसलिये इसको अच्छे यत्नसे भक्षण करना चाहिये ॥ ९३ ॥

अथास्य शान्तिः।

माहिषीशकृतो नीरं धान्यकं वा सितायुतम् ।
पिबेन्नीरेण मुक्तः स्याद्रसकर्पूरजैर्गदैः ॥ ९४ ॥

भैंसके गोबरका पानी अथवा सक्करयुक्त धनियांको जलके साथ पीनेसे रसकपूरसे उत्पन्न होनेवाले रोग छूट जाते हैं ॥ ९४ ॥

विकारशान्तिः ।

रससिन्दूरमशुद्धाद्रसाद्धिजातं पारदवद्रोगान् ।
कुर्याच्चेत्तच्छांत्यै घृतमरिचरजः पिबेत्सप्तदिनम् ॥ ९५ ॥

अशुद्ध पारेसे बना हुवा रससिन्दूर तथा (रसकपूर और चन्द्रोदय आदि) पारेके समान रोगोंको उत्पन्न करते हैं उनकी शान्तिके लिये काली मिर्चका चूर्ण घीमें मिलाकर सात दिनतक पीवे ॥ ९५ ॥

पारदविकारउपायाः ।

उद्गारे सति दध्यन्नं कृष्णमीनं सजीकरम् ।
अभ्यंगमनिलक्षोभे तैलैर्नारायणादिभिः ॥ ९६ ॥
अरतौ शीततोयेन मस्तकोपरि सेचनम् ।
तृष्णायां नारिकेराम्बु मुद्गयूषं सशर्करम् ॥ ९७ ॥
रसवीर्यविवृद्ध्यर्थं दधिक्षीरेक्षुशर्कराः ।
शीतोपचारमन्यच्च रसत्यागविधौ पुनः ॥
भक्षयेद् बृहतीं बिल्वं सकृत्साधारणो विधिः ॥ ९८ ॥

पारदभस्म भक्षण करनेसे यदि उद्गार (डकार) का उपद्रव होवे तो दही भात खावे अथवा जीरा मिलाकर काले रंगकी मछली खावे । यदि देहमें वायुके विकार दीखें तो नारायण आदि तैलोंकी मालिश करे । मस्तकपीडा हो तो शीतलजलसे मस्तकका सेचन करे, तृषाका उपद्रव बढे तो नारिकेलका जल पीवे अथवा खांड मिलाकर मूंगका यूष पीवे । पारदभस्म सेवन करनेवालेको दही, दूध, गन्ना, खांड इनका सेवन वीर्य और बलकी वृद्धिके लिये करना चाहिये औरभी शीतल चिकने उपचार करे । जो पारद भक्षण छोडदेवे तो पहले कटेली और बेलका यूष बनाकर अथवा ऐसेही खावे यह साधारण विधि है ॥ ९६–९८॥

एवंते रसराजस्य मारणादिक्रिया मया ।
प्रोक्ता चतुर्थे ह्यध्याये तथा पथ्यादयोऽपि च ॥९९ ॥

इस प्रकार पारदके मारणकी क्रिया इस चौथे अध्यायमें हमने तुम्हारे सन्मुख कहाहै और वैसेही पथ्यादिकोंका वर्णनभी करदिया है ॥ ९९ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
पारदमारणक्रियावर्णनो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातो हिंगुलूत्पत्तिशोधनमारणादिवर्णनं नाम पंचमाध्याय व्याख्यास्यामः ।

अब हम हिंगलू (सिंगरफ) की उत्पत्ति शोधन मारण आदि प्रकारके वर्णन-वाला पांचवां अध्याय कथन करेंगे ॥

शिष्य उवाच ।

श्रुता हि रसराजस्य मारणांताः क्रिया शुभाः ।
किमस्ति हिंगलू विप्र कुत्र चोत्पद्यते कथम् ॥
संस्कारादि क्रियास्तस्य कृपया कथय प्रभो ॥ १ ॥

शिष्य बोला हे प्रभो रसराज (पारद) की मारण पर्यन्त शुभक्रिया सुनी है अब कृपाकरके हिंगलूके विषयमें कहिये हिंगलू क्या वस्तु है और कहांसे किस तरह उत्पन्न होता है तथा उसके संस्कार आदिका कथन कीजिये ॥ १ ॥

हिंगुलनिर्माणविधिः ।

अशुद्धं पारदं भागं चतुर्भागं तु गंधकम् ।
उभौ क्षिप्त्वा लोहपात्रे क्षणं मृद्वग्निना पचेत् ॥ २ ॥
कृत्वाथ खंडशः सम्यक् काचकूप्यां निरुद्धय च ।
वस्त्रमृत्तिकया सम्यक्काचकूपीं प्रलेपयेत् ॥ ३ ॥
सर्वतोंऽगुलिमानेन च्छायाशुष्कं तु कारयेत् ।
वालुकायंत्रगर्भे तु दिनं मृद्वग्निना पचेत् ॥ ४ ॥
क्रमवृद्धयग्निना पश्चात्पचेद्दिवसपंचकम् ।
सप्ताहं तु समुद्धृत्य हिंगुलः स्यान्मनोहरः ॥ ५ ॥

कच्चा पारा १ भाग गन्धक ४ भाग दोनोंको लोहेके बासनमें रखके मन्दाग्नि देवे उन दोनोंके एक होनेपर ठंढा करके देखे जो बंधगया हो तो उसके टुकडे कर आतशी शीशीमें भरे उसके ऊपर १ अंगुल मोटी कपरमिट्टी करके सुखावे और वालुकायंत्रमें १ दिन मन्द अग्निसे पकावे फिर क्रमसे मंद मध्यम और तीक्ष्ण अग्निसे पांच दिन पचावे पीछे सातवें दिन मनोहर हिंगुल (शिंगरफ) निकाल लेवे ॥ २-५ ॥

हिंगुलभेदाः ।

दरदस्त्रिविधः प्रोक्तश्चमारः शुकतुंडकः ।
हंसपादस्तृतीयः स्याद्गुणवानुत्तरोत्तरम् ॥ ६ ॥

हिंगुल ३ प्रकारका है चमार शुकतुंड और हंसपाद इनमें क्रमसे एकसे दूसरेमें अधिक गुण हैं ॥ ६ ॥

हिंगुललक्षणानि ।

चमारः शुक्रवर्णः स्यात्सपीतः शुकतुंडकः ।
जपाकुसुमसंकाशो हंसपादो महोत्तमः ॥
श्वेतरेखाप्रवालाभो हंसपाद इति स्मृतः ॥ ७ ॥

चमार नामका हिंगुल शुक (श्योनाक अथवा लोधके) वर्णका होता है शुकतुंड पीले रंगका होता है । दुपहरियाके फूलके समान लाल वर्णवाला हंसपाद हिंगुल होता है यह परमोत्तम होता है । सफेद रेखावाले मूंगा समान रंगवालेको हंसपाद कहते हैं ॥ ७ ॥

हिंगुलभेदाः ।

सप्तधा चंद्रिकाद्रावैर्लकुचस्यांबुनापि वा ।
हिंगुलो भावितः शुष्को निर्दोषो जायते खलु ॥ ८ ॥

अदरख अथवा बडहलके रसकी सात भावना देकर सुखानेसे शिंगरफ अवश्य निर्दोष होजाता है ॥ ८ ॥

द्वितीयविधिः ।

मेषीक्षीरेण दरदमम्लवर्गैश्च भावितम् ।
सप्तवारं प्रयत्नेन शुद्धिमायाति निश्चितम् ॥ ९ ॥

भेडीका दूध और अम्लवर्गकी सात २ वार भावना देकर सुखानेसे शिंगरफ निःसन्देह शुद्ध होता है ॥ ९ ॥

हिंगुलमारणम् ।

चणकाभानि खंडानि दरदस्य तु कारयेत् ।
शीशजे चायसे पात्रे स्थाप्यं तच्च धमेद्दृढम् ॥ १० ॥
जातायामुष्णतायां वै ततो द्रव्याणि सेचयेत् ।
द्रव्यतुल्यं द्रवद्रव्यमेषास्याद्वह्निभावना ॥ ११ ॥

मेषीक्षीरेण दशधा दशधा क्षीरिजार्कजैः ।
दीप्तवर्गेण दशधा विरेकार्कैश्च पंचधा ॥ १२ ॥
पंचधा दुग्धवर्गेण अंतरास्तस्य भावनाः ।
अयं शतार्कदरदो नानारोगविनाशकः ॥
क्षुद्बोधस्य करो नित्यं योगवाही निगद्यते ॥ १३ ॥

चनेके समान हिंगुलकी डलीके टुकडे कर सीसेके अथवा लोहेके बरतनमें रखके आगके ऊपर गरम करे बरतन लाल होनेपर हिंगुलके बराबर भेडका दूध डालकर जलावे इस प्रकार दशवार जारण करे । इसी प्रकार दशवार खिरनी और आकका दूध जारण करे । दीप्तिवर्गमें दशवार पीलूके अर्कमें पांचवार दुग्धवर्गमें पांचवार इस प्रकार वारंवार भावना देवे यह शतार्क हिंगुल कहाता है अनेक प्रकारके रोगोंको नाश करता है क्षुधाको बढाता है यह योगवाही कहाजाता है ॥ १०-१३ ॥

द्वितीयविधिः ।

वल्लमात्रं तालपिष्टं शरावे स्थापयेत्ततः ।
तस्मिन्कर्षसमं देयं शकलं दरदस्य च ॥ १४ ॥
पूरयेदार्द्रकरसं द्विगुणं तत्र बुद्धिमान् ।
पुष्पाणि शाणमात्राणि परितः स्थापयेत्ततः ॥ १५ ॥
शरावसंपुटे दत्त्वा चुल्ल्यां मध्याग्निना पचेत् ।
घटिकात्रयपर्यन्तं तत उत्तार्य पेषयेत् ॥ १६ ॥
तांबूले गुंजमात्रं तु देयं पुष्टिकरं परम् ।
पांडौ क्षये च शूले च सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ १७ ॥

तीन रत्ती हरितालको पीसकर सकोरेमें रक्खे उसमें १ तोले हिंगुलके टुकडे रखदेवे । बुद्धिमान् वैद्य दो तोले अदरखका रस सकोरेमें डालकर चार मासे लौंग डाले सरावसंपुट करके चूल्हेपर चढाकर ३ घडी तक मध्यम अग्नि देवे पश्चात् उतारकर १ रत्ती नागरबेलपानके साथ भक्षण करे, यह अत्यन्त पुष्टिकारक है पाण्डु, क्षय, शूल तथा सर्वरोगोंमें योजना करने योग्य है ॥ १४-१७ ॥

मतान्तरेण शोधनम् ।

जयंत्याः स्वरसे मूत्रे कांजिके निंबुनीरके ।
दोलायंत्रे त्र्यहं पाच्यं दरदादि विशुध्यति ॥ १८ ॥

हिंगुल, हरिताल, खपरिया, सोनामाखी, रूपामाखी, मनसिल, अभ्रक, नीलाथोथा, सुहागा, सुरमा, विष, शिलाजीत, शंख, गूगुल, मुरदाशंख आदि पदार्थोंमें जिसको शुद्ध करनाहो उसे वस्त्रमें बांध दोलायंत्रमें रखके जयंतीके रसमें ३ दिन गोमूत्रमें तीन दिन कांजी और नींबूके रसमें तीन दिन स्वेदन करे तो हिंगुल और पूर्वोक्त हरितालादि शुद्ध होवें इसी प्रकार डलीका शिंगरफ शुद्ध होताहै भेडीके दूधमें शुद्ध किया हुवा शिंगरफ पीसा जाताहै। बहुत स्थानोंमें पीसाहुवा सिंगरफ काममें नहीं आता केवल डलीदार काममें आताहै इसीसे इस प्रकार शोधन करना श्रेष्ठ है ॥ १८ ॥

हिंगुलपाक तृतीयविधिः।

हिंगुलं द्विपलं शुद्धं बद्धा वस्त्रे चतुर्गुणे ।
षट् पलं कंदरीमूलं सम्यक् संकुटच बुद्धिमान् ॥ १९ ॥
ततस्तस्मिन्परिक्षिप्य गोलमेकं प्रकल्पयेत् ।
एरण्डपत्रैराच्छाद्य मृदा संलेपयेद् दृढम् ॥ २० ॥
पचेत्तद्गोलकं विद्वानुपलैर्दशभिस्ततः ।
एवं सम्यक् प्रकारेण पुटान्येकोत्तरं शतम् ॥ २१ ॥
दत्त्वा प्रतिदिनं खादेल्लवंगस्यानुपानतः ।
गुंजामात्रं गुणैस्तुल्यं प्रागुक्तस्य रसस्य च ॥ २२ ॥

शुद्ध शिंगरफकी डली ८ तोले लेकर चार परतके वस्त्रमें बांधे २४ तोले प्याजको कूटकर उसकी लुगदीके बीचमें वस्त्रमें बंधे हुए सिंगरफको रखके गोला बनावे एरंडके पत्रोंसे लपेट मिट्टी लगाकर धूपमें सुखाकर फिर पांच उपले नीचे और पांच ऊपर रखके अग्निसे फूंकदेवे ठंढा होजानेपर गोलेको निकाल लेवे इस प्रकार १०१ बार आंच देवे प्रति आंचमें चौवीस २ तोले प्याजकी लुगदी भीतर शिंगरफको रखके वस्त्रमें बांध अंडके पत्ते लपेटकर दो अंगुल मोटी मिट्टी चढावे और न तो बहुत मोटे न बहुत पतले दश उपलोंकी आंच देवे इस प्रकारका परिपक्व सिंगरफ चन्द्रोदयसेभी अधिक गुणदायक होताहै कामाग्नि और क्षुधाको बढाताहै। इसमेंसे १ तोला सिंगरफ और १ तोला लौंगको एकसाथ पीसकर दो रत्तीकी मात्रा प्रातःकाल सेवन करे तो पूर्वोक्त चन्द्रोदयके समान गुण करता है ॥ १९-२२ ॥

चतुर्थविधिः ।

पलं गृहीत्वा दरदं वंदालरसभावयेत् ।
हंसपद्यां वटक्वाथे सप्तसप्तदिने पृथक् ॥ २३ ॥
अर्कदुग्धं च सप्ताहं वज्रीदुग्धे तथैव च ।
वर्त्तुलाश्च वटीः कुर्यात्कर्षकर्षप्रमाणतः ॥ २४ ॥
संशोष्य संपुटे दत्त्वा द्विप्रस्थे गोमये पचेत् ।
लवंगैर्भक्षयेद्युक्त्या क्षुधापुष्टिविवृद्धये ॥ २५ ॥

४ पैसेभर शिंगरफकी डलीको ७ दिन हंसपदीके रसमें घोटे तथा वंदाल और वटजटाके रसमें आक और थूहरके दूधमें भी सात २ दिन घोटकर पैसे २ भरकी टिकिया बनाय घाममें सुखाकर शरावसंपुटमें बंद करके २ सेर उपलोंमें फूँक देवे तो एकही आंचमें हिंगुल भस्म होजायगा दो रत्ती लौंगके चूर्णके साथ खानेसे क्षुधा बढती है और शरीर पुष्ट होता है ॥ २३–२५ ॥

पञ्चमविधिः ।

तं हिंगुलं सुतनुखण्डपटे दृढे वै कंचूकमध्यगतसुत्तमकं निवेश्य ।
पश्चात्पलांडुदृढकंदगतोंतरस्थं मृत्स्नाविलेप्यरविशुष्कमनातपेवै ॥ २६ ॥
दत्त्वा वनोपलदशक्रममग्निदग्धं तं शीतलं हि विदधीत दिने द्वितीये ।
एवं विधैः शतपुटैश्च पुटांतकाले वृंताकमध्यगतमेव शतं पुटानि ॥ २७ ॥
देयानि तानि सदृशं शतधा क्रमेण वृंदावनीफलभवांतरमध्यभागे ।
देयं च तच्छतपुटं क्रम एष उक्तः पक्वाम्लवेतसफलोदरवैक्रमेण ॥ २८ ॥
गुंजामितार्द्धमितये सहिपर्णखण्डेभक्ष्यं नरोश्वसनकासज्वरादिकानाम् ।
हन्याद्यथामृगपतिःकरिणेव कामं रामासु वश्यकरदिव्यशरीरकारि॥ २९॥

हिंगुलको पतले मजबूत कपडेके टुकडेमें बाँधे, उस पोटलीके चूकाकी लुगुदीमें गोला बनाकर प्याजके मध्यमें रखदेवै फिर कपरमिट्टी कर घाममें सुखालेवे और सन्ध्यासमय दश आरने उपलोंकी हलकी आँच दे, इस भाँति प्याजकी १ सौ आँच देकर बैंगनेके बीचमें उसे रख दे, फिर इन्द्रायनमें १०० पुट देवे, और पके अमलबेतके भी सौ पुट देवे, इससे हिंगुल भस्म होजाता है । पीछे नागरबेल पानके साथ आधी रत्ती सेवन करनेसे श्वास, खाँसी ज्वर इत्यादि रोग ऐसे नष्ट होते हैं जैसे सिंहके सामने हाथी । इसको सेवन करनेवाला स्त्रियोंको

अत्यन्त प्रिय लगता है और उसका शरीर दिव्य होजाता है, धारणा शक्तिको बढाता है, यह रसायन है वैद्य अपनी बुद्धिकी कल्पनासे अनुपान भेद अनेक रोगोंपर इसे देसकते हैं ॥ २६-२९ ॥

दरदगुणाः ।

तिक्तं कषायं कटुहिंगुलं स्यान्नेत्रामयघ्नं कफपित्तहारि ।
हृल्लासकुष्ठज्वरकामलाश्च प्लीहामवातौ च गदं निहंति ॥ ३० ॥

हिंगुल तीखा, कषैला तथा कडुवा है नेत्ररोग, कफ तथा पित्तको नाश करता है । हल्लास, कुष्ठ, ज्वर, कामला, प्लीहा, और आमवातको दूर करता है ॥३०॥

अन्यगुणाः ।

तिक्तोष्णं हिंगुलं दिव्यं रसगंधसमुद्भवम् ।
मेहकुष्ठहरं रूच्य बल्यं मेधाग्निवर्द्धनम् ॥ ३१ ॥
हिङ्गुलः सर्वदोषघ्नो दीपनोऽतिरसायनः ।
सर्वरोगहरो वृष्यो जारणे लोहमारणे ॥ ३२ ॥
एतस्मादाहृतः सूतो जीर्णगन्धसमो गुणैः ॥ ३३ ॥

पारा तथा गन्धकसे उत्पन्न शिंगरफ तीखा, गरम तथा दिव्य है प्रमेह और कुष्ठको दूर करता है रुचिकारक है बलदायक है बुद्धि और अग्निकी वृद्धि करता है । हिंगुल सर्व दोषोंको नाश करता है जठराग्निको अत्यन्त प्रज्वलित करता है रसायन है सर्वरोगहारक है वीर्यवर्द्धक है जारणमें तथा लोह मारणमें परमोत्तम है इससे निकाले हुए पारक गुण गंधकसे जीर्ण किये पारेके समान हैं ॥३१-३३॥

अशुद्धहिंगुलदोषाः ।

अशुद्धोदरदः कुर्यात्कुष्ठं क्लैब्यं क्लमं भ्रमम् ।
मोहं च शोधयेत्तस्मात्सिद्धवैद्यस्तु हिंगुलम् ॥ ३४ ॥

अशुद्ध हिंगुल कुष्ठ, नामर्दी, क्लम, (विना परिश्रमके थकावट) भ्रम और मोह उत्पन्न करता है । इसालिये सद्वैद्य शिंगरफका शोधन अच्छी रीतिसे करे ॥ ३४ ॥

अस्य शान्तिः ।

उत्पद्यते यदाव्याधिर्दरदस्य निषेवणात् ।
तदा सूतकवत्सर्वाः कुर्याद्वैद्यः प्रतिक्रियाः ॥ ३५ ॥

जब अशुद्ध हिंगुल सेवन करनेसे रोग उत्पन्न होवे तो पारेके समान विकार-शान्ति वैद्य करे ॥ ३५ ॥

हिंगुलोर्विषये प्रोक्ता यथा पृष्टा त्वया क्रिया ।
सिन्दूरस्यापि ज्ञातव्यं यतः स सूतसम्भवः ॥ ३६ ॥

हिंगुलके विषयमें जैसे तुमने पूंछा वह सुनादिया अब तुमको सिंदूरके विषयमें भी जानना चाहिये क्योंकि सिन्दूर पारेसेही हुआ है ॥ ३६ ॥

सिन्दूरोत्पत्तिः ।

महागिरिषु चाल्पीयः पाषाणान्तःस्थिरो रसः ।
शुष्कः शोणः स निर्दिष्टो गिरिसिंदूरसंज्ञया ॥ ३७ ॥

हिमालय आदि बडे २ पर्वतोंके छोटे २ पत्थरके टुकडोंमें जो पारा सूर्यकी किरणोंसे सूखकर लाल हो जाता है उसे सिंदूर कहते हैं ॥ ३७ ॥

नामानि गुणाश्च ।

सिन्दूरं रक्तरेणुश्च नागगर्भं च सीसकम् ।
सीसोपधातुः सिंदूरं गुणैस्तत्सीसवन्मतम् ॥
संयोगजप्रभावेण तस्याप्यन्ये गुणा स्मृताः ॥ ३८ ॥

सिन्दूर, रक्तरेणु, नागगर्भ और सीसक ये सीसेके नाम हैं यह सिन्दूर सीसेका उपधातु है शीशाके समानही गुणभी कहे गये हैं परन्तु संयोगप्रभावसे औरभी गुण कहे हैं ॥ ३८ ॥

औषधार्हसिन्दूरम् ।

सुरंगोऽग्निसहः सूक्ष्मः स्निग्धः स्वच्छो गुरुर्मृदुः ।
सुवर्णाकरजः शुद्धः सिंदूरो मंगलप्रदः ॥ ३९ ॥

सुन्दर वर्णवाला अग्नि सहनेवाला सूक्ष्म, चिकना, स्वच्छ, भारी, नरम सुवर्णकी खानसे उत्पन्न शुद्ध ऐसा सिन्दूर मंगल देनेवाला है ॥ ३९ ॥

शोधन ।

दुग्धाम्लयोगतस्तस्य विशुद्धिर्गदिता बुधैः ॥ ४० ॥

पण्डितोंने दूध और खटाईके योगसे सिन्दूरकी शुद्धि कही है ॥ ४० ॥

द्वितीयविधिः ।

सिंदूरं निंबुकद्रावैः पिष्ट्वा घर्मे विशोषयेत् ।
ततस्तंदुलतोयेन यथाभूतं विशुद्ध्यति ॥ ४१ ॥

सिन्दूरको नींबूके रसमें घोटकर घाममें सुखावे पश्चात् चावलोंके पानीसे घोटकर सुखानेसे सिन्दूर शुद्ध होता है ॥ ४१ ॥

सिन्दूरगुणाः ।

सिन्दूरमुष्णं वीसर्पकुष्ठकंडूविषापहम् ।
भग्नसंधानजननं व्रणशोधनरोपणम् ॥ ४२ ॥

सिन्दूर गरम है, विसर्प, कोढ तथा खाजको दूर करता है, टूटी हड्डियोंको जोडता घावको शुद्ध करता और भरता है ॥ ४२ ॥

किञ्च ।

सिंदूरमारणं तद्वत्सत्त्वपातस्तथैव च ।
भक्षणस्य प्रयोगोऽपि न इष्टः कुत्रचिन्मया ॥ ४३ ॥

सिन्दूरका शोधन, सत निकलना, तथा खानेका प्रयोग किसी ग्रन्थमें नहीं देखा इससे हमभी नहीं लिखते ॥ ४३ ॥

अपिच ।

सिन्दूरस्य प्रयोगो हि न दृष्टः कुत्रचित्पृथक् ।
तस्माद्युक्तस्थले योज्य उपदेशो गुरोरिति ॥ ४४ ॥

किसी ग्रन्थमें सिन्दूरका अलग प्रयोग लिखा हुआ नहीं देखागया इससे मल्हम और लेप आदिमें जहां आवश्यकता पडे वहां गुरुके उपदेशके अनुसार काममें लाना चाहिये ॥ ४४ ॥

किञ्च ।

गिरिसिन्दूरकं यत्तु गिरौ पाषाणजं भवेत् ।
किञ्चिद्धिङ्गुलतुल्यं तद्रसबन्धे हि तद्विदुः ॥
धातुवादेऽपि तत्पूज्यं नेत्ररोगघ्नमीरितम् ॥ ४५ ॥

पर्वतोंमें पाषाणोंसे गिरिसिन्दूर उत्पन्न होताहै, कोई कोई गुण उसके हिंगुलके समान हैं, रसके बाँधनेमेंभी इसको लेना चाहिये और नेत्रसम्बन्धी अनेक रोगोंको यह अच्छा करता है ॥ ४५ ॥

तथाच ।

सिन्दूराच्चापि भवति पारदो हिङ्गुलोर्यथा ।
परं तन्न प्रयोक्तव्यं शोधनेन विना क्वचित् ॥ ४६ ॥

जैसा हिंगुलसे पारा निकलता है ऐसा सिन्दूरसेभी निकलता है, पर विना सब संस्कारोंसे शोधन किये हुए यह हानिकारक होता है इससे खानेकी औषधोंमें नहीं डालना चाहिये ॥ ४६ ॥

रोपणादिक्रियायां हि सिन्दूरं युज्यते सदा ।
न भोक्तव्यं कदाचिद्धि रसज्ञानविचक्षणैः ॥ ४७ ॥

रोपण मर्हम आदिमेंही सिन्दूर डाला जाता है, इससे बुद्धिमानोंको चाहिये कि खानेमें इसका कभी उपयोग न करें ॥ ४७ ॥

एवं ते दरदस्याथ सिन्दूरस्यापि वै क्रिया ।
पञ्चमेऽस्मिञ्शुभाध्याये विधिवत्परिकीर्तिता ॥ ४८ ॥

इस प्रकार सिंगरफ और सिन्दूर इन दोनोंकी क्रिया इस पांचवें अध्यायमें कही गयी ॥ ४८ ॥

इति श्रीरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे हिंगुल-सिन्दूरवर्णनं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातो गन्धपाषाणवर्णनं नाम षष्ठाध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

अब हम गन्धकवर्णन नामक छठे अध्यायका व्याख्यान करते हैं ।

शिष्य उवाच ।

गन्धकेन विना नाथ पारदस्य न संस्कृतिः ।
अतस्तस्य समुत्पत्तिः शोधनं चाति कथ्यताम् ॥ १ ॥

शिष्य बोला-हे स्वामी ! गन्धकके विना पारेका संस्कार नहीं हो सकता, इसलिये गन्धककी उत्पत्ति और शोधन कहिये ॥ १ ॥

गन्धकोत्पत्तिः । श्रीगुरुरुवाच ।

एकदा चोदधेस्तीरे सर्वरत्नविभूषिते ।
श्वेतद्वीपे सखीभिर्हि पार्वत्याः क्रीडने रजः ॥ २ ॥
प्रवृत्तं तेन वस्त्राणि रक्तवर्णानि जज्ञिरे ।
त्यक्त्वा तानि नवीनानि परिधाय गता ततः ॥ ३ ॥
सखीभिः सह कैलासं वस्त्राण्यब्धौ गतानि वै ।
वीचिविक्षोभवशतः क्षीराब्धौ प्रापुरञ्जसा ॥ ४ ॥

देवासुरैर्महावीर्यैर्मथ्यमाने महोदधौ ।
सुधया सह तद्रक्तं जातं गन्धकरूपकः ॥
जारणे मारणे योज्यो रसराजस्य तद्गुणः ॥ ५ ॥

गुरु बोले-किसी समय नाना प्रकारके रत्नोंसे शोभित श्वेतद्वीपमें सखियोंके साथ खेलतीहुई पार्वतीजीका रज प्रवृत्त हुआ। उससे उनके वस्त्र लाल होगये, उनको वहीं छोड दूसरे स्वच्छ वस्त्र पहन वह सहेलियोंके साथ वहांसे कैलासको चली गई। और वह छोडे हुए वस्त्र समुद्रकी लहरियोंसे क्षीरसमुद्रमें चले गये। जब बडे पराक्रमी देव तथा दैत्योंसे समुद्र मथा गया तब वही रज अमृतके साथ गन्धकरूपसे उत्पन्न हुआ जो पारेके जारण और मारणमें काम आता है, क्योंकि उसमें पारेकेसे ही गुण हैं ॥ २-५ ॥

नामानि ।

गन्धको गन्धपाषाणः शुकपुच्छः सुगन्धकः ।
सौगन्धिकः शुल्बरिपुः पामारिर्नवनीतकः ॥ ६ ॥

संस्कृतमें गन्धकके नाम गन्धक, गन्धपाषाण, शुकपुच्छ, सुगन्धक, सौगन्धिक, शुल्बरिपु, पामारि तथा नवनीतक ॥ ६ ॥

शोधितगन्धकगुणाः ।

शुद्धो गन्धो हरेद्रोगान्कुष्ठमृत्युज्वरादिकान् ।
अग्निकारी महानुष्णो वीर्यवृद्धिं करोति हि ॥ ७ ॥

शोधा हुआ गन्धक कोढ, मरण, ज्वर आदि रोगोंको दूर करता है, अग्निको दीप्त करताहै, बहुत गर्म है, वीर्यको बढाता है ॥ ७ ॥

किञ्च ।

गन्धश्चातिरसायनः सुमधुरः पाके कटूष्णान्वितः
कण्डूकुष्ठविसर्पदर्पदलनोदीप्तानलः पाचनः ।
आमोन्मथशोधनो विषहरः सूतेतिवीर्यप्रदो
गौरीपुष्पभवस्तथा कृमिहरः स्वर्णाधिकं वीर्यकृत् ॥ ८ ॥

रसायनोंमें सबसे अधिक रसायन गन्धक है, मीठा, परिपाकमें कडुआ, गर्म है। खुजली, कोढ और विसर्पका नाश करताहै, जाठराग्निको बढाता है, पाचन है, आमको मथकर शुद्ध करता है, विषको अच्छा करताहै, पारेके योगसे बलकी

वृद्धि करता है, यह गन्धक पार्वतीजीके रजसे उत्पन्न हुआ है, पेटके कीडोंको दूर करता है, सुवर्णभस्मसे भी अधिक बलकारक है ॥ ८ ॥

गन्धकभेदाः ।

स चापि त्रिविधो वत्स शुकचञ्चुनिभो वरः ।
मध्यमः पीतवर्णः स्याच्छुक्लवर्णोऽधमः किल ॥ ९ ॥

हे शिष्य ! वह तीन प्रकारका होता है सबसे अच्छा लाल, पीला मध्यम और सुफेद खराब होता है ॥ ९ ॥

ग्रन्थान्तरे लक्षणानि ।

चतुर्धा गन्धको ज्ञेयो वर्णैः श्वेतादिभिः खलु ।
श्वेतोऽत्र खटिका प्रोक्तो लेपने लोहमारणे ॥ १० ॥
तथा चामलसारः स्याद्यो भवेत्पीतवर्णवान् ।
शुकपिच्छः स एव स्याच्छ्रेष्ठो रसरसायने ॥ ११ ॥
रक्तश्च शुकतुण्डाख्यो धातुवादविधौ वरः ॥
दुर्लभः कृष्णवर्णश्च स जरामृत्युनाशनः ॥ १२ ॥

सुफेद आदि वर्णोंसे गन्धक चार प्रकारका है । खडियानामसे प्रसिद्ध सुफेद गन्धक मकानोंको पोतने और लोहेको मारनेमें काम आता है, पीला आमलासार कहा जाताहै । हरा रस और रसायनमें उपयोगी है, तोतेकी चोंचके समान लाल गन्धक धातुओंके विचारके विधिमें उत्तम है कालागन्धक नहीं मिलसकता, यदि वह मिल तो वृद्धावस्था और मृत्युको नाश करता है ॥ १०–१२ ॥

किञ्च ।

गन्धको द्विविधः प्रोक्तो लोणीयश्चाम्लसारकः ।
योग्यश्चैवाम्लसारो हि रसमार्गे गुणात्मकः ॥ १३ ॥

लोणियां और आमलासार इन भेदोंसे गन्धक दो प्रकारका है, रसकी विधिमें आमलासार ही श्रेष्ठ है, क्योंकि इसमें अनेक गुण हैं ॥ १३ ॥

गन्धशोधनविधिः ।

पयःस्विन्नो घटीमात्रं वारिधौतो हि गन्धकः ।
गव्याज्यविद्रुतो वस्त्राद्गालितः शुद्धिमृच्छति ॥ १४ ॥

एवं संशोधितः सोयं पाषाणानम्बरे त्यजेत्।
घृते विषं तुषाकारं स्वयं पिण्डत्वमेव च ॥ १५ ॥
इति शुद्धो हि गन्धस्तु नापथ्ये विकृतिं व्रजेत्।
अपथ्यादन्यथा हन्यात्पीतं हालाहलं यथा ॥ १६ ॥

आमलासार गन्धक पानीमें धोकर घडीभरतक दूधमें भिगाना चाहिये, दूध गन्धककी अपेक्षा लगभग पचगुना लेते हैं। प्रथम गन्धककी पीसकर घीमें गलाना चाहिये, फिर साफ कपडेसे छानकर दूधमें छोडदे, वह जमजायगा। रेतमिट्टी आदि कपडेमें ही रहजावेंगे, और गन्धकका विष उस दूधमें मिलजायगा। तत्पश्चात् गन्धककों दूधसे निकालकर पानीसे धोवे और सुखाकर रक्षापूर्वक रखछोडे, ऐसा शुद्ध गन्धक कभी विकार नहीं करता। यदि विधिपूर्वक शुद्ध न हो तो हालाहल विषके समान मनुष्यको तत्काल मार देता है ॥ १४-१६ ॥

प्रकारान्तरम्।

गन्धको द्रावितो भृङ्गरसे क्षिप्तो विशुद्ध्यति।
तद्रसे सप्तधा भिन्नो गन्धकः परिशुद्ध्यति ॥
अथवा काञ्जिके तद्वच्छुद्धः स्यात्पूर्ववत्पटात् ॥ १७ ॥

उक्त प्रकारसे गन्धकको घीमें गलाकर सात बार भँगरेके रसमें डालनेसे शुद्ध होता है। या किसी बरतनमें काँजी भरकर उसका मुख कपडेसे बांधदे, फिर उस कपडेपर घीके बराबर गन्धकके छोटे छोटे टुकडे छोडदे, ऊपरसे लोहेका तवा रख आँच जलावे, तवा गरम होनेपर जब गन्धक पतला होकर कांजीमें गिर जाय तब उसे निकाल लेवे और धोकर रखदे तथा अवसरमें उसका उपयोग करे ॥ १७ ॥

शुद्धगन्धकात्तैलाकर्षणम्।

अर्कक्षीरैः स्नुहीक्षीरैर्वस्त्रं लेप्यं तु सप्तधा।
गन्धकं नवनीतेन पिष्ट्वा वस्त्रं लिपेद्घनम् ॥ १८ ॥
तद्वर्तिं ज्वालितामंशे धृत्वा कुर्यादधोमुखीम्।
तैलं पतेदधोभाण्डे ग्राह्यं योगेषु योजयेत् ॥ १९ ॥

किसी नवीन गज सवागज कपडेको सात सात बार आँक और थूहरके दूधमें भिगो भिगोकर सुखालेवे पीछे उस कपडेमें मक्खनके साथ पिसे हुए गन्धकका

खूब लेपकर बत्ती बनावे फिर उस बत्तीको जलाकर किसी चिमटे आदिसे पकड-कर नीचेको लटकादे, उसके नीचे कोई स्वच्छ पात्र रखदे तो उसमें तेल टपकेगा। उसको अनेक रोगोंमें अनुपानके योगसे योजित करे तो खांसी दमा आदि अनेक रोग नष्ट होंय और देह बलवान् हो ॥ १८ ॥ १९ ॥

आदित्यास्ते च पयसि दद्याद्गन्धकजं रजः ।
तज्जातदधिजं सर्पिर्गन्धतैलं नियच्छति ॥
गन्धतैलं गलत्कुष्ठं हन्ति लेपाच्च भक्षणात् ॥ २० ॥

सन्ध्यासमय दूधमें गन्धकका चूर्ण डालकर दही जमाले, जम जानेपर उसे मथकर मक्खन निकालकर उसका घी बनावे यही गन्धकका तेल कहाता है, इसको लगाने और खानेसे गलितकुष्ठतक अच्छा होजाता है ॥ २० ॥

गन्धकदुर्गन्धनिवारणम् ।

विचूर्ण्य गन्धक क्षीरे घनीभावावधिं पचेत् ।
ततः सूर्यावर्तरसं पुनर्दत्वा पचेच्छनैः ॥ २१ ॥
पश्चाच्च पातयेत्प्राज्ञो जले त्रिफलसम्भवे ।
जहाति गन्धको गन्धं निजं नास्तीह संशयः ॥ २२ ॥

गन्धकका चूरा कर दूधमें गाढा होनेतक पकावे, पीछे धीमी आँचसे काले भाँगरेके रसमें पकावे । त्रिफलाके काढेमें डालनेसे गन्धकका दुर्गन्ध निस्सन्देह जाता रहता है ॥ २१ ॥ २२ ॥

गन्धकानुपानम् ।

इत्थं विशुद्धस्त्रिफलाज्यभृङ्गमध्वन्वितः शाणमितोऽवलीढः ।
गृध्राक्षितुल्यं कुरुतेऽक्षियुग्मं करोति रोगोज्झितदीर्घमायुः॥ २३ ॥
शुद्धं गन्धं निष्कमात्रं तु दुग्धैः सेव्यं मासं शौर्यवीर्यप्रवृद्धौ ।
षण्मासात्स्यात्सर्वरोगप्रणाशो दिव्या दृष्टिर्दीर्घमायुः सुरूपम्॥ २४॥

इस प्रकार शुद्ध गन्धक त्रिफला घी और सहतके साथ चार मासे खानेसे गीधकीसी तेज दृष्टि होती है, रोगहीन होकर चिरायु हो । यदि दूधके साथ एक महीनेतक निष्कभर खायाजावे तो बल और पराक्रम बढे । और यही यदि छः महीने खायाजाय तो सभी रोग नष्ट हों, आँख दिव्य हो और सुन्दर रूप हो जावे ॥ २३ ॥ २४ ॥

मोचाफलेन त्वग्दोषं चित्रकेन महाबलम्।
आटरूषकषायेण क्षयकासाञ्जयेद्भृशम् ॥ २५ ॥
मन्दानलत्वं जयति त्रिफलाक्काथसंयुतः।
ऊर्ध्वगान्सकलान्रोगान्हन्ति शीघ्रं सुगन्धकः ॥ २६ ॥

यदि गन्धक मोचाफलके साथ खायाजाय तो त्वचाके दोषोंको हटावे, चीतेके साथ खानेसे बहुत बलको करता है, अडूसेके साथ सेवन करनेसे खाँसी और श्वासको दूर करे। त्रिफलाके काढेके साथ मदाग्निको अच्छा करता है, और देहके ऊपरी भागके सभी रोगोंको आतिशीघ्र अच्छा करता है ॥ २५ ॥ २६ ॥

चूर्णीकृत्य पलानि पञ्च नितरां गन्धाश्मनो यत्नत-
स्तच्चूर्णं त्रिगुणे तु मार्कवरसे छायाविशुष्कं कृतम् ॥
पश्चाच्चूर्णमथाभयामधुघृतं प्रत्येकमेषां पलम्
वृद्धो यौवनमेति मासयुगलं खादन्नरः प्रत्यहम् ॥ २७ ॥
सद्गन्धाश्मविचूर्णितं पिबति यस्तैलेन कर्षोन्मित-
मभ्यङ्गोष्णजलावसेचनरतः काले यथा प्रत्यहम् ॥
सप्ताहात्रितयान्निहंति सव्रणाः पामादिसर्वारुजो
नित्याभ्यासवशाद्विनष्टसकलक्लेशोपतापः पुमान् ॥ २८ ॥

पांच पल गन्धकके चूरेको भँगरेके रसमें खूब पीसकर छायामें सुखावे, फिर उसमें छोटी हरड मिलाकर शहद और मधुके साथ दो महीनेतक नित्य खावे तो बूढा भी जवान होजावे, और तेलके साथ यदि नित्य दश मासे खावे, मालिस करै और गर्म पानीसे न्हावे तो २१ ही दिनोंमें घाव, खुजली इत्यादि रोग नष्ट हों। यदि सदा इसका अभ्यास कियाजावे तो किसी प्रकारका दुःख नहीं रहता ॥ २७ ॥ २८ ॥

प्रकारान्तरम्।

यो वाऽप्युग्रमतिः सुचूर्णितमिदं गन्धाश्मकृष्णासमं
पथ्यातुल्यमपि प्रपूजितगुरुर्भूतेशपूजारतः ॥
आहारादिषु यन्त्रणादिरहितः स्यात्पुष्टिवीर्याधिकः
प्रोत्फुल्लाम्बुजनेत्रयुग्मविलसच्चामीकरो भासुरः ॥ २९ ॥

बराबर हरडों और पीपलोंके साथ गन्धकके चूर्णका जो सेवन करे उसे चाहिये कि अपने गुरुकी पूजा करके शिवजीकी पूजा करे उसे आहार विहार आदिमें कुछ भी बाधा न होगी, पुष्टि और बल बढेगा, फूले कमलके समान नेत्रोंकी शोभा होकर सुवर्णके समान कान्ति होगी ॥ २९ ॥

गन्धकरसायनम् ।

शुद्धो बलिर्गोपयसा विभाव्यस्ततश्चतुर्जातगुडूचिकाभिः ॥
पथ्याक्षधात्र्यौषधभृङ्गराजैर्भाव्योष्टवारं पृथगार्द्रकेण ॥ ३० ॥
सिद्धे सितां योजय तुल्यभागां रसायनं गन्धकसंज्ञितं स्यात् ।
धातुक्षयं मेहगणाग्निमान्द्यं शूलं तथा कोष्ठगतांश्च रोगान् ॥ ३१ ॥
कुष्ठान्यथाष्टादशरोगसंख्यान्निवारयत्येव च राजयोग्यम् ।
कर्षोन्मितं सेवितमेतिमर्त्यो वीर्यं च पुष्टिं बलवान्प्रदीप्तिम् ॥ ३२ ॥
वमनं रेचनं पूर्वं शुद्धौ चैव समाचरेत् ।
जाङ्गलानि तु मांसानि छागलानि प्रयोजयेत् ॥ ३३ ॥

शुद्ध गन्धकको पहिले गायके दूधमें भावना दे फिर चातुर्जात, गिलोय, हरड, बहेडा, आँवला, सोंठ, भांगरा अदरखका रस इन औषधोंकी आठ आठ भावना देनी चाहिये, फिर गन्धकके बराबर चीनी मिलावे, यह गन्धक रसायन हो जाताहै, इसकी मात्रा आधा या पौन तोला है, यह धातुदौर्बल्य, बीसों प्रकारके प्रमेह, जाठराग्निकी क्षीणता, शूल और पेटके भीतरके दर्द, सब प्रकारके कोढोंको दूर करताहै, राजाओंके सेवन करने योग्य है । यह बल और वीर्यकी पुष्टि करता, अग्निकी दीप्ति करताहै । औषध सेवन करनेके पहिले कय और जुलाब देकर शरीरको शुद्ध करना चाहिये वनके पशुओं तथा बकरीके मांस खाना चाहिये ॥३०--३३॥

गन्धकद्रुतिः ।

कलांशव्योषसंयुक्तं शुद्धगन्धं विमर्दयेत् ।
अरत्निमात्रे वस्त्रे तद्विप्रकीर्य विवेष्टय तत् ॥ ३४ ॥
सूत्रेण वेष्टयित्वा च यामं तैले निमज्जयेत् ।
धृत्वा संदंशतो वर्तिं मध्ये प्रज्वालयेच्च ताम् ॥ ३५ ॥
द्रुतो निपतितो गन्धो बिन्दुशः काचभाजने ।
तां द्रुतिं प्रक्षिपेत्पत्रे नागवल्ल्यास्त्रिबिन्दुकाम् ॥ ३६ ॥

वल्लेन प्रमितं शुद्धं सूतेन्द्रं च विमर्दयेत्।
अङ्गुल्याथ सपत्रां तां द्रुतिसूतं च भक्षयेत् ॥ ३७ ॥
करोति दीपनं तीव्रं क्षयं पाण्डुं च नाशयेत्।
कासं श्वासं च शूलार्तिं ग्रहणीमतिदुर्धराम् ॥
आमं विशोषयत्याशु लघुत्वं प्रकरोति च ॥ ३८ ॥

सोलहवां भाग त्रिकुटा मिलाके गन्धकको खरल करे फिर हाथभर कपडेके टुकडेपर उसको फैलाकर बत्ती बनावे, उसे सूतसे लपेटकर १ पहर तेलमें डुबो रखे, फिर उसे संडसीसे पकडकर बीचमें जलादेवे तो गन्धक पिघलकर काचके बर्तनमें बूँद बूँदकर टपकेगा उसमेंसे ३ बूँद पानके पत्तेमें रख और तीन रत्ती शोधा हुआ पारा अंगुलीसे घोटकर उसे खावे तो जाठराग्निको दीप्त कर तेज करता है, क्षय, पाण्डुरोग, खांसी, दमा, बडी ग्रहणी, और आमका नाश होता है, और देहको हलका बना देता है ॥ ३४-३८ ॥

वातारितैलसंयुक्तं त्रिफलागुग्गुलेन तु।
गन्धकं रससंयुक्तं जराव्याधिविनाशनम् ॥ ३९ ॥

त्रिफला और गूगल मिले हुए तिल तेलमें मिलाकर गन्धककी मालिश करे तो वातव्याधि दूर होती है अथवा गूगलके साथ खानेसे वायुके विकार शान्त होते हैं और शुद्ध पारेके संयोगसे गन्धक खावे तो बुढापा और व्याधियां दूर हों॥३९॥

मासमात्रप्रयोगेण शृणु वक्ष्यामि तद्गुणान्।
अर्शो भगन्दरश्चैव तथा श्लेष्मसमुद्भवाः ॥ ४० ॥
नश्यन्ति व्याधयः सर्वे मासेनैकेन गन्धकात्।
षण्मासस्य प्रयोगेण देवतुल्यो भवेन्नरः ॥ ४१ ॥

यदि १ महीना इसका प्रयोग किया जावे तो उसके गुणोंको मैं कहता हूं बवासीर और कफसे उत्पन्न हुए सभी रोग नष्ट होजाते हैं, और जो कहीं ६ महीने सेवन किया जाय तो मनुष्य देवताओंके समान (अजर और अमर) होजाता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

हंसवर्णाश्च ये केशा बलिश्चैव प्रलम्बिनी।
चला दन्ता मन्ददृष्टिः बलशुक्रादिसंक्षयः ॥ ४२ ॥

निर्जित्य यौवनं याति भ्रमरा इव मूर्धजाः ।
दिव्यदृष्टिर्महाप्राणो वराह इव कर्णयोः ॥ ४३ ॥

यदि बाल पककर हंसोंके समान सुफेद होगये हों, चमडेमें लंबी २ बरवटें पडगयी हों, दांत हिलते हों, दृष्टि कम होगयी हो बल तथा शुक्र आदिका नाश होगया हो इन सबको जीतकर युवावस्थाको मनुष्य प्राप्त होताहै; बाल भौरोंके समान काले काले होजाते हैं, देवताओंकीसी दिव्यदृष्टि होती है, और सूअरके समान तेज कान सुननेवाला होजाताहै ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

चक्षुषा तार्क्ष्यतुल्योऽसौ बलेन बलविक्रमः ।
दृढदन्तो वृद्धकायो द्वितीय इव शङ्करः ॥
तस्य मूत्रपुरीषेण शुल्बं भवति काञ्चनम् ॥ ४४ ॥

आँख देखनेमें गरुडके समान, विष्णुके समान बली, मजबूत दाँतवाला वह मनुष्य होजाता है, (इसमें कुछ अत्युक्ति नहीं कि) वह दूसरा महादेवही सा होता है ऐसे पारेके योगसे तांबा सोना हो जाता है ॥ ४४ ॥

गन्धकस्तुल्यमरिचः षड्गुणात्रिफलान्वितः ।
शम्याकमूलजरसैर्मर्दितोऽखिलरोगहा ॥ ४५ ॥
द्विनिष्कप्रमितो गन्धः पीततैलेन शोधितः ।
पश्चान्मरिचतैलाभ्यामपामार्गजलेन च ॥ ४६ ॥
पाचयित्वा बलिः सर्वदेहलिप्तः प्रयत्नतः ।
घर्मे तिष्ठेत्ततो रोगी मध्याह्ने तक्रभक्तकम् ॥ ४७ ॥
भुञ्जीत रात्रौ सेवेत वह्निं प्रातः समुत्थितः ।
महिषीछगणैर्देहं संलिप्य स्नानमाचरेत् ॥ ४८ ॥
शीतोदकेन पामादि खर्जूकुष्ठं प्रशाम्यति ॥ ४९ ॥

गन्धकके बराबर काली मिर्च हों और छः गुनी त्रिफलासे युक्त हो उन्हें शम्याककी जडके रसमें घोटे तो वह सभी रोगोंको नाश करता है अथवा दो निष्क (टंक) गन्धकको सरसोंके तेलमें शोधन करे फिर मिर्च और अपामार्गका रस मिलाकर तेल पकालेवे इस तेलकी मालिश करके धूपमें बैठे और दही भात खावे । रातको आगसे सेंके फिर सबेरे महिषीकी छाछ तथा गोबर

मलकर ठंढे पानीसे स्नान करे तो पामा खर्जू और कोढ आदि इसके सेवन करनेसे ३ दिनमें शान्त होजाते हैं ॥ ४८-४९ ॥

गन्धकलेपः ।

शम्याकमूलस्वरसैः संघृष्टो गन्धकोत्तमः ।
लिप्तो देहे ध्रुवं खर्जूकुष्ठपामादिमर्दनः ॥ ५० ॥

अमलतासकी जडके रसमें उत्तम गन्धकको घोटकर देहमें मालिश करै तो वह खुजली कोढ और पामा आदिका नाश करता है ॥ ५० ॥

गंधकस्य धातुवेधकं कज्जलम् ।

पीते च गंधके सूतं रक्तं चित्ररसैर्ध्रुवम् ।
वज्रीक्षीरेण संपिष्टं वङ्गस्तम्भकरं परम् ॥ ५१ ॥

पीला गन्धक, पारेकी कज्जली, लाल चन्दन चीता तथा थूहरके दूधमें घोटनेसे वंगका चांदी होजाता है ॥ ५१ ॥

गन्धकेन हतं शुल्वं दरदेन समं कुरु ।
मातुलुङ्गरसे पिष्ट्वा त्रिपुटान्म्रियते फणी ॥ ५२ ॥
सिन्दुराभं भवेन्नागं ताम्रं भवति काञ्चनम् ॥ ५३ ॥

गन्धकसे मारे हुए ताँबेके बराबर हिङ्गुल मिलाकर बिजौरेके रसमें पीस खरल करै, फिर सीसेके पत्रोंपर लेपकर पुट देवे, इस रीतिसे तीन पुट देनेसे सिन्दूरके समान भस्म होजायगा, इसको जब ताँबेमें डालो सोना होजायगा ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अशुद्धगन्धकदोषाः ।

अशुद्धगन्धः कुरुते च कुष्ठं तापं भ्रमं पापरुजां तथैव ।
रूपं सुखं वीर्यबलं निहन्ति तस्माद्विशुद्धो विनियोजनीयः ॥ ५४ ॥

अशुद्ध गन्धक कोढ, दाह, घुमरी तथा दूसरे पाप रोगोंको करता है । सुन्दर रूप, सुख, बल और पराक्रमका नाश करता है इससे शुद्धही गन्धकका उपयोग करना श्रेष्ठ है ॥ ५४ ॥

गन्धकभक्षणे वर्ज्याणि ।

लवणाम्लानि शाकानि द्विदलानि तथैव च ।
स्त्रियश्चारोहणं यानं पदा चैतानि वर्जयेत् ॥ ५५ ॥

गन्धकके सेवन करनेवाले मनुष्यको चाहिये कि वह खारे[1] व खट्टे पदार्थ, हरे शाक द्विदल अन्न (अरहर आदि) स्त्रीसङ्ग, घोडे आदिकी सवारी, पैदल चलना इत्यादि छोडदे, अर्थात् उष्ण पदार्थोंका सेवन न करे ॥ ५५ ॥

गन्धकस्य क्रिया चैव समासेन मयेरिता ।
अध्यायेऽस्मिंस्त्वया धार्या सावधानतयात्मज ॥ ५६ ॥

हे वत्स ! इस प्रकार संक्षेपसे गन्धककी क्रिया मैंने इस अध्यायमें तुझसे कही है उसको सावधानतासे ध्यानमें रखना ॥ ५६ ॥

इति श्रीपाण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
गन्धपाषाणवर्णनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातोऽभ्रकशोधनमारणवर्णनं नाम सप्तमाध्यायं व्याख्यास्यामः॥

अब हम अभ्रकके शोधन मारण वर्णवाले सातवें अध्यायका कथन करते हैं ।

गुरुरुवाच ।

गगनस्यापि संशुद्धिर्मारणं सत्त्वपातनम् ।
ज्ञातव्यं वै त्वया पुत्र तदर्थं वर्ण्यते क्रिया ॥ १ ॥

गुरु कहने लगे हे पुत्र ! अभ्रककी शुद्धि और मारग तथा सत्त्वपातन यह सब तुमको जानना चाहिये इससे इनकी क्रियाका वर्णन करना चाहिये ॥ १ ॥

तत्रादावष्टौ महारसाः ।
अभ्रवैक्रान्तमाक्षीकविमलाद्रिजसस्यकम् ।
चपलो रसकश्चेति ज्ञात्वा कार्यो हि संग्रहः ॥ २ ॥

अभ्रक, वैक्रान्त, तमेरी, सोनामक्खी, रूपामक्खी, शिलाजीत, चंपल और खपरिया यह आठ महारस हैं, वैद्यको चाहिये कि जानकर इनका संग्रह करै ॥ २ ॥

केषांचिद्वै मते तात रसाश्चेमे प्रकीर्तिताः ॥ ३ ॥

हे पुत्र किन्हींके मतमें ये रस कहे गये हैं ॥ ३ ॥

---

१ चपल धातु शीशे और वङ्गमेंसे निकलता है ।

रसाः ।

द्विधा सूतस्त्रिधा गन्धोऽष्टधा खं तालमष्टधा ।
भिन्नाञ्जनं च कासीसं गैरिकं च रसा इमे ॥ ४ ॥

दो प्रकारका पारा तीन प्रकारकी गन्धक, आठ प्रकारके अभ्रक, आठही प्रकारकी हरताल, तथा सुरमा, कसीस और गेरू ये रस हैं ॥ ४ ॥

परञ्चोपरसाश्चेमे यथोक्तं रसवादिभिः ।
एक एव रसो ज्ञेयो बहुधोपरसाः स्मृताः ॥ ५ ॥

परन्तु यह सब उपरस हैं जैसा रसके वक्ताओंने कहा है रस केवल पारा है, उपरस तो बहुत हैं । पारा और गन्धकको हम पहले कहचुके अब यहां अभ्रक आदिको लिखते हैं ॥ ५ ॥

तत्रादावभ्रकस्यैव समुत्पत्त्यादिकं शृणु ॥ ६ ॥

उनमें पहले अभ्रकहीकी उत्पत्ति सुनो ॥ ६ ॥

पुरा वधाय वृत्रस्य वज्रिणा वज्रमुद्धृतम् ।
विस्फुलिङ्गास्ततस्तस्य गगने परिसर्पतः ॥ ७ ॥
ते निपेतुर्घनध्वानाच्छिखरेषु महीभृताम् ।
तेभ्य एव समुत्पन्नं तत्तद्गिरिषु चाभ्रकम् ॥ ८ ॥

प्राचीन समयकी बात है कि देवशत्रु वृत्रासुरको मारनेके लिये इन्द्रने अपना वज्र उठाया, उस समय उसके अग्निकण आकाशमें फैलगये फिर वे मेघोंके शब्दोंसे पर्वतोंकी चोटियोंमें गिरे, उनहीसे उन उन पर्वतोंमें अभ्रक हो गया ॥ ७ ॥ ८ ॥

तद्वज्रं वज्रजातत्वादभ्रमभ्ररवोद्भवात् ।
गगनात्पतितं यस्माद्गगनं च ततोऽभवत् ॥ ९ ॥

वज्रसे उत्पत्ति होनेसे उसका नाम वज्र मेघशब्दसे उत्पन्न होनेसे 'अभ्र' और आकाशसे गिरनेसे गगन नाम हुआ ॥ ९ ॥

श्वेताभ्रकोत्पत्तिः ।

कदाचिद्गिरिजा देवी हरं दृष्ट्वा मनोहरम् ।
मुमोच यत्तदा वीर्यं तज्जातं शुभ्रमभ्रकम् ॥ १० ॥

किसी समय मनको हरलेनेवाले श्रीशिवजीको देखकर वीर्यत्याग करतीथी वही सुफेद अभ्रक होगया ॥ १० ॥

अभ्रकजातयः ।

ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रभेदात्तस्याच्चतुर्विधम् ।
क्रमेणैव सितं रक्तं पीतं कृष्णं च वर्णतः ॥ ११ ॥

अभ्रक, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन भेदोंसे चार प्रकारका है । वह क्रमसे सुफेद वर्णका ब्राह्मण, लाल क्षत्रिय, पीला वैश्य, काला शूद्र कहाताहै॥११॥

वर्णानुसारकार्याणि ।

प्रशस्यते सितं तारे रक्तं तत्र रसायने ।
पीतं हेमनि कृष्णं तु गदे शुद्धतयापि च ॥ १२ ॥

सफेद अभ्रक चाँदीके कामम अच्छी होती है, लाल रसायनमें, पीली सुवर्णमें पीली सोनेके कानमें, और काली औषधके प्रयोगमें शुद्धहुई लेनी चाहिये ॥१२॥

कृष्णाभ्रकभेदाः ।

पिनाकं दर्दुरं नागं वज्रं चेति चतुर्विधम् ।
कृष्णाभ्रं कथितं प्राज्ञैस्तेषां लक्षणमुच्यते ॥ १३ ॥

पिनाक, दर्दुर, नाग तथा वज्र इस प्रकार विद्वानोंने अभ्रकके चार प्रकार कहे हैं ॥ १३ ॥

पिनाकाभ्रकलक्षणम् ।

मुञ्चत्यग्नौ विनिक्षिप्तं पिनाकं दलसंचयम् ।
अज्ञानाद्भक्षणं तस्य महाकुष्ठप्रदायकम् ॥ १४ ॥

आँचमें छोडनेसे जो कई पर्तोंको छोडे उसे पिनाक अभ्रक कहते हैं । विना जाने यदि कोई उसे खावे तो कुष्ठी हो जावे ॥ १४ ॥

दर्दुराभ्रकलक्षणम् ।

दर्दुरं त्वग्निनिक्षिप्तं कुरुते दर्दुरध्वनिम् ।
गोलकान्बहुशः कृत्वा तत्स्यान्मृत्युप्रदायकम् ॥ १५ ॥

दर्दुर अभ्रक आगमें डालते ही मेंडककासा शब्द करता है, इसके खानेसे पेटमें बहुत गोले हो जाते हैं जिनसे अन्तमें मृत्यु हो जाती है ॥ १५ ॥

नागाभ्रकलक्षणम् ।

नागं तु नागवद्वह्नौ फूत्कारं परिमुञ्चति ।
तद्भक्षितमवश्यं तु विदधाति भगन्दरम् ॥ १६ ॥

नाग नामका अभ्रक आगमें डालनेसे सर्पकीसी फूंकार छोडता है, यदि उसे खावे तो अवश्य भगन्दर रोग होजाय ॥ १६ ॥

वज्राभ्रकलक्षणम् ।

वज्रं तु वज्रवत्तिष्ठेन्न चाग्नौ विकृतिं व्रजेत् ।
सर्वाभ्रेषु वरं वज्रं व्याधिवार्धकमृत्युजित् ॥ १७ ॥

वज्र नामका अभ्रक आगमें वज्रकी भांति स्थिर रहता है कोईभी विकार उसमें नहीं होता, सभी अभ्रकोंमें यही वज्र नामक उत्तम है, यह रोग वृद्धपना और मृत्युतक जीतता है ॥ १७ ॥

अत्र केचित् ।

वज्राभ्रक आँचमें डालनेसे वज्रकी भाँति स्थिर रहती है कुछ भी विकार उसमें नहीं होता । यह वज्रनामक अभ्रक सब अभ्रकोंमें श्रेष्ठ है, रोग वृद्धावस्था और मृत्युका जय करनेवाला है ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

लक्षणान्तरम् ।

यदंजननिभं क्षिप्तं न वह्नौ विकृतिं व्रजेत् ।
वज्रसंज्ञं हि तद्योज्यमभ्रं सर्वत्र नेतरत् ॥ १८ ॥

जो काजलके समान काला हो, आँचमें डालनेसे जिसमें कुछ भी विकार न हो उसको वज्राभ्रक कहते हैं, यह सभी रोगोंमें उपयोग करने योग्य है, दूसरा नहीं ॥ १८ ॥

दिग्विभागेनाभ्रकगुणाः ।

अभ्रमुत्तरशैलोत्थं बहुसत्त्वं गुणोत्तरम् ।
दक्षिणाद्रिभवं स्वल्पसत्त्वमल्पगुणोत्तरम् ॥ १९ ॥

उत्तरके पर्वतोंसे उत्पन्न हुआ अभ्रक बहुत बलवान् और श्रेष्ठ गुणोंवाला होता है दक्षिण पर्वतोंसे उत्पन्न हुआ दुर्बल और कमगुणवाला होता है ॥ १९ ॥

भूमिलक्षणम् ।

अभ्रग्रहे तस्य खनिं भिषग्भिस्तत्खानयित्वा पुरुषप्रमाणम् ।
तद्वारवत्सत्त्वफलप्रदं स्याद्गुणाधिकं स्वल्पगुणं ततोऽन्यत् ॥ २० ॥

अभ्रक निकालनेके लिये वैद्योंको पोरसेभर खान खुदवानी चाहिये, जब गारेके समान निकलने लगे तो उत्तम अभ्रक जानना, यह बहुत सत्त्व और गुणयुक्त है। इसके विपरीत हो तो कमगुणवाली समझना ॥ २० ॥

राजहस्तादधस्ताद्यत्तत्स्थितं भारवत्तरम् ।
खननेऽभ्रं हितं ग्राह्यं मारणार्थं गुणाऽधिकम् ॥ २१ ॥

प्रायः चार गज नीचे खोदनेसे जो बहुत भारी अभ्रक मिले उत्तम गुणवाली और शीघ्रफलप्रद है उसको भस्मके लिये लेना चाहिये, इससे विरुद्धका त्याग करना चाहिये ॥ २१ ॥

कृष्णाभ्रगुणाधिक्यम् ।

तथाभ्रं कृष्णवर्णाभं कोटिकोटिगुणाधिकम् ॥
स्निग्धं पृथुदलं वर्ण संयुक्त भारतोऽधिकम् ।
सुखनिर्मोचपत्रं च तदभ्रं शस्तमीरितम् ॥ २२ ॥

काले रंगका अभ्रक करोडों गुण अधिक है (इसकी पहिचान यह है) चिकनी, बडे परतेवाली, देखनेमें सुन्दर, भारी, विना परिश्रम जिसके पत्रे निकल जावें, वह अभ्रक उत्तम कही है ॥ २२ ॥

यैरुक्तं युक्तिनिर्मुक्तैः पत्राभ्रकरसायनम् ।
तैर्दिष्टं कालकूटाख्यं विषं जीवनहेतवे ॥ २३ ॥

जिन युक्तिशून्योंने पत्राभ्रकको रसायन कहा है उन्होंने कालकूट विषको प्राणधारणका कारण माना है ॥ २३ ॥

सत्त्वार्थं सेवनार्थं च योजयेच्छोधिताभ्रकम् ।
अन्यथा त्वगुणं कृत्वा विकरोत्येव निश्चितम् ॥ २४ ॥

सत्व निकालने और सेवन करनेके लिये भली भांति शोधे हुए अभ्रकको देना चाहिये। नहीं तो दोष उत्पन्न करके विकार करती है ॥ २४ ॥

अशोधिताभ्रमारणदोषाः ।

पीडां विधत्ते विविधां नराणां कुष्ठं क्षयं पाण्डुगदं च शोफम् ।
हृत्पार्श्वपीडां च करोत्यशुद्धमभ्रं हि तद्वद्गुरुवाह्निहृत्स्यात् ॥ २५ ॥

विना शुद्ध किया हुआ अभ्रक नाना प्रकारकी पीडा कुष्ठ, क्षय, पाण्डुरोग, सूजन, हृदय और पसुलियोंमें पीडा करती है, भारी है, जठराग्निको कम करती है ॥ २५ ॥

निश्चन्द्रिकं मृतं व्योम सव्यं सर्वगदेषु च ।
सेवितं चन्द्रिकायुक्तं मेहं मन्दानलं चरेत् ॥ २६ ॥

मारी हुई अभ्रक जो चन्द्रकरहित हो जाय तो सब रोगोंमें सेवन करने योग्य है । यदि चन्द्रिकासहित सेवन की जाय तो प्रमेह मन्दाग्नि करती है ॥ २६ ॥

अभ्रकशोधनम् ।

वज्राभ्रकं वह्नितप्तं निक्षिपेत्सप्तसप्तधा ।
गोदुग्धे त्रिफलाक्काथे कांजिके सुरभीजले ॥
शुद्धिमायाति वै वह्नौ प्रक्षिप्तं वा त्रिधा त्रिधा ॥ २७ ॥

वज्राभ्रकको अग्निमें तपा तपाकर गायके दूध, त्रिफलाके क्काथ, कांजी और गोमूत्रमें सात सात बार अथवा (लघुकल्प करना हो तो) तीन तीन बार बुझावे इससे शुद्ध होती है ॥ २७ ॥

प्रकारान्तरम् ।

अथवा बदरीक्काथे ध्मातमभ्रं विनिक्षिपेत् ।
मर्दितं पाणिना शुष्कं धान्याभ्रादतिरिच्यते ॥ २८ ॥

अथवा अभ्रकको गर्म कर बेरके काढेमें डालदे और निकालकर हाथोंसे खूब मले तौ धान्याभ्रकसे भी गुणकारक होता है ॥ २८ ॥

तथा च ।

आदौ सुतापितं कृत्वा गगनं सप्तधा क्षिपेत् ।
निर्गुण्डीसुरसे सम्यग्गिरिदोषं प्रशान्तये ॥ २९ ॥

अभ्रकको खूब तपा तपाकर सात बार संभालूके रसमें बुझावे तो पर्वतके मिट्टी आदिके दोष उसमें नहीं रहते ॥ २९ ॥

धान्याभ्रकविधिः ।

चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं बद्धा कम्बलके श्लथम् ।
त्रिरात्रं कांजिके स्थाप्यं तत्क्लिन्नं मर्दयेद्दृढम् ॥ ३० ॥
तन्नीर एव यत्नेन यावत्सर्वं स्रवेत्ततः ॥
कम्बलाद्गलितं श्लक्ष्णं मारणादौ प्रशस्यते ॥ ३१ ॥

अभ्रकका चूरा और धानोंको कम्बलमें ढीला बांधकर तीन रात कांजीमें भिगोवे, फिर गीले ही उसको पानीसे भली भाँति मले इससे अभ्रकके रवा कम्ब-

लसे छूटकर पानीमें आजाते हैं। यह धान्याभ्रक कहा जाता है और मारणादिक कर्ममें श्रेष्ठ है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

प्रकारान्तरम् ।

चूर्णाभ्रं शालिसंयुक्तं वस्त्रे बद्धं हि कांजिके ।
निर्यातं मर्दनाद्यत्तद्धान्याभ्रमिति कथ्यते ॥ ३२ ॥

धानयुक्त अभ्रकके टुकडोंको वस्त्रमें बांधकर कांजीमें भिगोवे और खूब मले उससे जो महीन अभ्रक निकलता है उसे धान्याभ्रक कहते हैं ॥ ३२ ॥

सचन्द्रिकं च किट्टाभं व्योम न ग्राहयेद्रसः ॥
ग्रसितश्च नियोज्योऽसौ लोहे चैव रसायने ॥ ३३ ॥

चन्द्रिकासहित कीटी सरीखे अभ्रकको पारा नहीं खाता यदि पारा इस खाय ले तो लोहे और रसायनमें काममें लाने योग्य है ॥ ३३ ॥

मारणम् ।

अङ्गारोपरि विन्यस्तं ध्मातमेव दलीकृतम् ।
निक्षिपेत्कांजिके कृत्स्नमभ्रकं वह्निसंज्ञिकम् ॥ ३४ ॥
ततोऽस्य कांजिकस्थस्य चिरं घर्मे विधारणम् ।
पेषणं च विधातव्यं पौनःपुन्येन पण्डितैः ॥ ३५ ॥
चाङ्गेरीस्वाङ्गनिर्यासैरप्येव विधिमाचरेत् ।
तण्डुलीयकमूलस्य रसेनापि ततः परम् ॥ ३६ ॥
ततोऽस्मिन् खदिरांगारैर्नीते नीतेऽग्निवर्णताम् ।
क्षिपेत् पुनः पुनः क्षीरे यथा निश्चन्द्रिकं भवेत् ॥ ३७ ॥

अभ्रक मारनेकी साधारण विधि यह है कि काली अभ्रकको अंगारोंपर रख गर्म गर्म ही जुदे जुदे पत्ते कर कांजीमें भिगोवे फिर उसके बर्त्तनको धूपमें रखदे और वहांसे निकालकर खूब पीसे फिर चूकाके रसमें भिगोकर पीस डाले, इसके पीछे चौलाईके जडके रसमें भिगोकर और दो तीन दिन धूपमें रखकर पीसे, फिर टिकिया बाध तथा सुखाकर खैरके कोयलोंमें खूब गर्म कर निश्चन्द्रक होने तक रक्खे पीछे दूधमें भिगोवे ॥ ३४–३७ ॥

मारणस्य विध्यन्तरम् ।

धान्याभ्रं गुडतुल्यं च श्रेष्ठक्षीरेण मर्दितम् ।
कुर्यात्सुचक्रिकां शुष्कां सम्यग्गजपुटे पचेत् ॥ ३८ ॥

ततो धत्तूरपत्तूरकुमारीशशिवाटिका ।
प्रत्येकं सुरसेनैव पुटादाशु मृतिं व्रजेत् ॥ ३९ ॥

धान्याभ्रक और गुड बराबर लेकर गायके दूधमें घोट तथा टिकिया बनाकर उन्हें धूपमें सुखाले और उनको गजपुटमें पकावे फिर धतूरेके पत्तोंके रस और गजपीपल, गुआरपाठा तथा कुमोदनीके रसकी भावना अलग अलग देकर गज-पुटमें फूके तो अभ्रककी शीघ्र निश्चन्द्रक भस्म होवे ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

गन्धर्वपत्रतोयेन गुडेन सह भावितम् ।
अधोर्द्ध्वं वटपत्राणि निश्चन्द्रं त्रिपुटैः खगम् ॥ ४० ॥

रेंडीके पत्रोंमें रस और गुडके पानीसे भावना देकर अभ्रकका गोला बनावे, उस ऊपर और नीचे बरगद्के पत्तोंसे लपेटकर गजपुटमें फूंकदेवे इस प्रकार तीन तीन बार करनेसे अभ्रककी निश्चन्द्रक भस्म होजाती है ॥ ४० ॥

चतुर्थविधिः ।

केनाख्यस्य तृणस्यापि रसेनापि प्रमर्दितम् ।
पुटितं दशधा भस्म निश्चन्द्रं जायते ध्रुवम् ॥ ४१ ॥

धान्याभ्रकको केनानामक तृणके रसमें घोटकर दश पुट देनेसे अवश्य निश्च-न्द्रक भस्म होजाता है ॥ ४१ ॥

पंचमविधिः ।

धान्याभ्रकस्य भागैकं भागार्द्धं टंकनस्य च ।
पिष्ट्वा तदन्धमूषायां रुद्ध्वा तीव्राग्निना पचेत् ॥ ४२ ॥
विचूर्ण्य योजयेद्योगे भेषजानामसंशयः ॥ ४३ ॥

एक भाग धान्याभ्रक और आधा भाग सुहागा लेकर दोनोंको पीस अन्ध-मूषामें रख बन्द करके तेज आँच देवे ठंडा होनेपर निकाले और पीसकर औषधि-योंके साथ देवे ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

षष्ठविधिः ।

कृत्वा धान्याभ्रकं तच्च शोधयित्वा विमर्दयेत् ।
वेष्टयेदर्कपत्रे च सम्यग्गजपुटे क्षिपेत् ॥ ४४ ॥

पुनर्मर्द्यं पुनः पाच्यं सप्तवारान् पुनः पुनः ।
ततो वटजटाक्काथैस्तद्वद्देयं पुटत्रयम् ॥
म्रियते नात्र सन्देहः प्रयोज्यः सर्वकर्मसु ॥ ४५ ॥

उक्त प्रकारसे धान्याभ्रक करके एक दिन करौंदेके रसमें खरल करे फिर छोटी छोटी टिकियां बांध धूपमें सुखावे और आँकके पत्तोंके बीचमें उनको एक ठीकरेमें दो तीन सेर आरणे उपलोंकी आंच सात बार दे; यदि इतनेसे शुद्धि न हो तो सात बार फिरभी उक्त प्रकारसे आंच दे । फिर वडकी जटाओंके क्वाथसे तीन पुट देवे, यदि अधिक लाल करना हो तो वडकी जटाओंके क्वाथमें घोटकर कई बार गजपुटमें फूंकदे इस प्रकार करनेसे अभ्रककी उत्तम भस्म बनजाती है और काममें देने योग्य होजाती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

सप्तमविधिः ।

धान्याभ्रकस्य भागौ द्वौ भागैकं शुद्धगन्धकम् ।
वटक्षीरेण संमर्द्य ह्यन्धमूषां निरोधयेत् ॥
पचेद्गजपुटेनैव वारमेकमृतं भवेत् ॥ ४६ ॥

धान्याभ्रकके दो भाग शुद्ध गन्धक एक भाग, इन दोनोंको वडके दूधमें खरल कर अंधमूषामें सम्पुटके भीतर रक्खे फिर गजपुटकी आंच दे तो एकही आंचमें भस्म होजायगी ॥ ४६ ॥

अष्टमविधिः ।

धान्याभ्रं कासमर्दस्य रसेन परिमर्दितम् ॥ ४७ ॥
पुटितं दशवारं तु म्रियते नात्र संशयः ।
तद्वन्मुस्तारसेनापि तन्दुलीयरसेन च ॥ ४८ ॥

परवरके रसमें धान्याभ्रकको खूब घोटकर दश आँच देनेसे अभ्रक भस्म होजाता है । नागरमोथा और चौलाईके रसमें घोटकर दश पुट देनेसेभी अभ्रक भस्म होती है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

नवमविधिः ।

पीतामलकसौभाग्यपिष्टं चक्रीकृताभ्रकम् ।
पुटितं षष्टिवाराणि सिन्दूराभं प्रजायते ॥
क्षयाद्यखिलरोगघ्नं भवेद्रोगापनुत्तये ॥ ४९ ॥

हरताल आवलेका रस और सुहागा धान्याभ्रकमें मिलाकर पीसे और चकती बनाकर साठ वार आँच दे तो सिन्दूरके रंगकी भस्म हो जाती है, इसके सेवनसे क्षय आदि रोग नष्ट होजाते हैं ॥ ४९ ॥

दशमविधिः ।

धान्याभ्रकं समादाय मुस्ताक्राथैर्दिनत्रयम् ॥ ५० ॥
तद्वत्पुनर्नवानीरैः कासमर्दरसैस्तथा ।
नागवल्लीदलरसैः सूर्यक्षारैः पृथक् पृथक् ॥ ५१ ॥
दिनेदिने मर्दयित्वा क्राथैर्वटजटोद्भवैः ।
गत्वा पुटत्रयं पश्चात् त्रिपुटैः स्नुग्जटाजलैः ॥ ५२ ॥
त्रिगोक्षुरकषायेण त्रिःपुटेद्वानरीजलैः ।
मोचाकन्दरसैः पाच्यं त्रिवारं कोकिलाक्षकैः ॥ ५३ ॥
रसैः पुटेत्ततो धेनुक्षीरैरष्टपुटेन्मुहुः ।
दध्ना घृतेन मधुना स्वच्छया सितया तथा ॥ ५४ ॥
एकमेकं पुटं दद्यादभ्रमेवं मृतं भवेत् ।
सर्वरोगहरं व्योम जायते योगवाहकम् ॥ ५५ ॥
कामिनीमददर्पघ्नं शस्तं मरणनाशनम् ।
वृष्यमायुष्करं भुक्तं प्रजावृद्धिकरं परम् ॥ ५६ ॥

धान्याभ्रक लेकर तीन दिन मोथेके काढेमें मले, फिर पुनर्नवा, विषखपरा, परवल, पानके रस और शोरा इन प्रत्येकमें तीन तीन पुट दे। पीछे बडकी जटाके रसके तीन पुट देकर थूहरके दूध, गोखुरूके काढे, कौंच, कदलीकन्द और तालमखानेके रसमें एक एक करके तीन पुट देकर दूधकी आठ पुट दे, फिर दही, मक्खन, शहत, सफेद चीनी इन सबकी एक एक पुट[1] दे। इस रीतिसे उक्त औषधियोंके पुट देनेसे अभ्रककी सर्वोत्तम भस्म होजाती है। कैसा ही रोग क्यों न हो अनुपानके संग सेवन करनेसे वह अच्छा हो जाता है। मनुष्य इसके सेवनसे स्त्रियोंके दर्पको हरलेता है, मृत्युका पराजय करता बलवान् होता और सन्तानोंको बढाता है ॥ ५०-५६ ॥

---

१ पुट देनेमें प्रायः १ दिन खरल कर सुखाके पुट देते हैं ।

एकादशविधिः ।

पुनर्नवां कुमारीं च चपलां वानरीं तथा ।
मुशलीं चेक्षुवल्लीं च तथा तामलकीरसैः ॥ ५७ ॥
प्रत्येकैकेन पुटयेत्सप्तवारं पुनः पुनः ।
अर्कसेहुण्डदुग्धेन प्रदेयाः सप्तभावनाः ॥ ५८ ॥
एवं तन्म्रियते वज्रं सर्वरोगहरं परम् ॥ ५९ ॥

सांठ, घीकुवार, पीपल, कौंच, मूसली, पौंडा, भूमिआँवला इनके रसोंकी सात सात भावना देकर आँक और थूहरके दूधकी सात सात भावना देवे। और सभी भावनाओंमें आरने उपलोंकी आँचमें फूँकता जावे तो अभ्रकभस्म होजाता और सब रोगोंको हरता है ॥ ५७-५९ ॥

द्वादशविधिः ।

वटमूलत्वचः क्वाथैस्ताम्बूलीपत्रसारतः ।
वासामत्स्याक्षिकाभ्यां वा मीनाक्ष्यासकठिल्लया ॥ ६० ॥
पयसा वटवृक्षस्य मर्दितं पुटितं घनम् ।
भवेद्विंशतिवारेण सिन्दूरसदृशं घनम् ॥ ६१ ॥

अभ्रकको बडके जडकी छालके काढे, पानके पत्रोंके रस, अडूसा, मछेछी, सफेद कनेर, लाल पुनर्नवा और बडके दूधकी अलग २ पुट देकर आँच दे, ऐसी २० पुट देनेसे सिन्दूरके समान लालभस्म होजाता है ॥ ६० ॥ ६१ ॥

त्रयोदशविधिः ।

दुग्धत्रयं कुमार्यम्बु गङ्गापुत्रं नृमूत्रकम् ।
वटाङ्कुरमजारक्तमेभिरभ्रं सुमर्दितम् ॥ ६२ ॥
शतधा पुटितं भस्म जायते पद्मरागवत् ॥ ६३ ॥

आक, थूहर और बडका दूध, घीकुआरका रस, नागरमोथा, मनुष्यका मूत्र, बडकी जटाओंका रस और बकरीके लोहूमें अलग अलग काले धान्याभ्रकको खूब घोटके एक सौ पुट देनेसे उसकी पुखराज मणिके समान भस्म हो जाता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

चतुर्दशप्रकारः ।

अभ्रकं त्रिफलाशुद्धं क्षिपेच्छुक्ते चतुर्गुणे ।
चत्वारिंशद्दिनान्येव स्थापयेत्तत्र बुद्धिमान् ॥ ६४ ॥
पलार्द्धं पारदं शुद्धं पलं बब्बूरजं नवम् ।
कुसुमं च समादाय मर्दयेद्भिषगुत्तमः ॥ ६५ ॥
उभयोर्गुटिकामेकां कृत्वा तत्रैव निक्षिपेत् ।
दंडेन चालयेन्नित्यं त्रिदिनं नाधिकं ततः ॥ ६६ ॥
मर्यादादिवसे पूर्णे खल्वे क्षिप्त्वा विमर्दयेत् ।
घनत्वमागतं दृष्ट्वा चाक्रिकां कारयेद्बुधः ॥ ६७ ॥
घर्मे संशोष्य विधिना ततो गजपुटे पचेत् ।
पुनः शुक्तान्तरेणैव मर्दयेदेकवासरे ॥ ६८ ॥
वन्योपलैः पचेदेवं कुर्याद्वारत्रयं ततः ।
भस्मीभूतमिदं खादेद्गुञ्जामात्रं निरन्तरम् ॥ ६९ ॥
अन्धोऽपि दिव्यदृष्टिः स्यात्तीव्रो वह्निश्च जायते ।
वातपित्तकफातंकाँस्तथैव रुधिरामयान् ॥ ७० ॥
प्रमेहान्नाशयेत्सर्वान्नात्र कार्या विचारणा ।
अतीव पुष्टिजनकं व्रणतृष्णानाशनं परम् ॥ ७१ ॥
कुष्ठप्लीहोदरग्रन्थिकृमिक्ष्वेडविनाशनम् ॥ ७२ ॥

बुद्धिमान् वैद्य अभ्रकको हड बहेडे और आँवलोंमें शुद्ध कर उससे चौगुने काँजीमें ४० दिन तक रखै, आधा पल पारा शोधा हुआ और पल भर बबूरके नये फूल लेकर घोटे, फिर उन दो चीजोंकी टिकिया बनाकर उसी कांजीमें छोडदेवे और तीन दिन तक बराबर डंडेसे हिलाताजाय अधिक नहीं। पीछे खरलमें डाल घोटे, जब गाढा होजावे तो टिकिया बनाले और धूपमें सुखाकर विधिसे गजपुटमें उसे फूंके, फिर दूसरे काँजीसे १ दिन घोटे और तीन बार आरने उपलोंसे उन्हें फूँकले, वह अभ्रक जब भस्म होजावे तो रत्तीभर रोज खावे इससे अन्धेकी भी आँख तेज होसकती हैं और जाठराग्नि दीप्त होजाती है । वात पित्त कफ और रुधिरविकार इक्कीस प्रकारके प्रमेह नष्ट होजाते हैं इसमें

सन्देह नहीं । यह बडा पौष्टिक, घाव और प्यासको दूर करनेवाला, कुष्ठ तापतिल्लीको दूर करनेवाला पेटमें गाँठसी पडजाना कीडे तथा विषदोषका नाशकारक है ॥ ६४-७२ ॥

पंचदशविधिः ।

वज्रार्कोद्भवदुग्धधेनुसलिलैर्ब्राह्मीरुदन्तीबला
वासाचित्रकशाल्मलीबलवराकूष्मांडिका दाडिमी ।
जातीगोक्षुरशंखपुष्पलतिकामेदामृतावर्वरी
द्राक्षामलकराक्षसीतुलसिकामुण्डीविशालामदा ॥ ७३ ॥
गोजिह्वासलिलैर्विदारिलतिकाशृङ्ग्युग्रगन्धाजटा
शतपुष्पातपनोद्भवैश्च रसकैः संवेष्टयेद्वैद्यराट् ।
रात्रौ संपरिपाचयेद्गजपुटे सप्तैव वारान् पृथक्
न्यग्रोधस्य जटारसस्य सततं केशेशतोयस्य च ॥ ७४ ॥
भावश्चैव पुटाश्च विंशतिमिता घृष्टा कपित्थस्य वै
चिंचिण्या फलकोद्भवैश्च सलिलैः श्रीमत्पुटेनांचितैः ॥
पश्चान्निम्बुरसेन धेनुपयसा समिश्र्य गौडस्य च
दध्ना खण्डघृतस्य रम्यमधुना वारांश्च पंचादश ॥
पश्चाचन्द्रिकयोर्भिवार्जितमथाभ्रं वै सुशुद्धं भवे-
द्रक्तं रम्यतरं सुसेव्यमवनीशानां गणैः सर्वदा ॥ ७५ ॥

वज्राभ्रकमें आकके दूध, गोमूत्र, ब्राह्मी, रुद्रवन्ती, खरेटी, अडूसा, चित्रक, सेमलके रस, नागरबेल, हरड, बहेडा, आंवला, पेठेका रस, अनारके पत्ते, चमेली, गोखुरू, शंखाहुली, मेदा, गिलोय, वनतुलसी, दाख, मूली, भटेउर, तुलसी, गोरखमुंडी, इन्द्रायण, धायके फल, गोभीका रस, विदारीकन्द, काकडासिंगी, वच, जटामांसी, सौंफ और जमालगोटेके रसमें भावना देकर टिकिया बनावे, दिनमें उन्हें सुखालेवे उन्हें किसी हांडीमें रख सात कपड मिट्टीकर सातही रात गजपुटमें फूंकदे । प्रत्येक बार ठंडा होने पर निकालकर ऊपर कहेहुए रसोंमें घोटे तब गजपुटमें फूंके फिर बडकी जटाओंके तथा भांगरेके रसमें सात सात भावना देकर गजपुटमें फूंके इसी प्रकार कैथ और इमलीके रसकी तथा कोदोंके काढेकी पुट देकर गजपुटमें फूंके । फिर नींबूके रस और गायका दूध, गुड, दही, चीनी,

घी और शहदकी अलग अलग पन्द्रह पुट दे इस विधिसे अभ्रककी चन्द्रकरहित शुद्ध रक्तवर्ण और राजाओंके सेवन योग्य भस्म होजाता है ॥ ७३-७५ ॥

षोडशविधिः ।

शुद्धधान्याभ्रकं मुस्ता शुण्ठीषड्भागयोजितम् ।
मर्दयेत्काञ्जिकेनैव दिनं चित्रकजै रसैः ॥ ७६ ॥
ततो गजपुटे दद्यात्तस्मादुद्धृत्य मर्दयेत् ।
त्रिफलावारिणा तद्वत्पुटेदेवं पुटैस्त्रिभिः ॥ ७७ ॥
बलागोमूत्रमुसली तुलसी सूरणद्रवैः ।
मर्दितं पुटितं वह्नौ त्रिस्त्रिवेलं व्रजेन्मृतिम् ॥ ७८ ॥

नागरमोथा और सोंठका चूर्ण ६ भाग मिलाकर शोधित धान्याभ्रकको १ दिनभर कांजीमें खरल करे और गजपुट देकर फूँकदे । फिर चित्रकके रसमें उसे घोट गजपुटमें फूंके । जब ठंढा होजाय तो त्रिफलाके रसमें घोटकर इसी प्रकारसे तीन बार फूंके । फिर बला (खरेंटी) के रस गोमूत्र, मूसलीके काढे, तुलसीके पत्तोंके रस, और जमीकन्दके रसको अभ्रकमें अलग अलग डालकर खरल करनेसे तथा प्रत्येक रसके तीन तीन पुट देनेसे अभ्रकका उत्तम भस्म होजाता है ॥ ७६-७८ ॥

सप्तदशविधिः ।

नागबला भद्रमुस्ता दुग्धं तु वटकस्य च ।
यद्वा वटजटातोयैर्हरिद्रावारिणा पुटेत् ॥ ७९ ॥
मञ्जिष्ठाक्काथतोयेन सर्वैरेभिर्यथाक्रमम् ।
पुटितं भावनायोगाद्वरमेतत्पुटेन्मुहुः ॥
जायते ह्यरुणं चाति भस्म वज्राभ्रकोद्भवम् ॥ ८० ॥

वज्राभ्रकको गुलसकरी, नागरमोथा, बडका दूध, या बडकी जटाओंका रस, हलदीका पानी, मँजीठका काढा इन औषधोंकी क्रमसे भावना दे और प्रत्येक औषधिका उत्तम पुट दे, इससे वज्राभ्रकका सुन्दर लाल भस्म होजाताहै॥७९-८०॥

अष्टादशविधिः ।

ततो धान्याभ्रकं कृत्वा पिष्ट्वा मत्स्याक्षिकारसैः ।
चक्रीकृत्य विशोष्याथ पुटे दत्त्वाभ्रके पुटे ॥ ८१ ॥

पुटेदेव हि षड्वारं पुनर्नवरसैः सह ।
कलांशं टंकणेनापि सम्मर्द्य चक्रिकाकृतम् ॥ ८२ ॥
ऊर्ध्वभागे पुटेत्तद्वत्सप्तवारं प्रयत्नतः ।
एवं वासारसेनापि तन्दुलीयरसेन च ॥ ८३ ॥
प्रपुटेत्सप्तवाराणि पूर्वप्रोक्तविधानतः ।
एतत्सिद्धं घनं सर्वयोगेषु विनियोजयेत् ॥ ८४ ॥

धान्याभ्रक करके उसको मछेछी नामक औषधके रसमें खरल करे,फिर उसकी टिकिया बना धूपमें उन्हें सुखा, सकोरोंके बीचमें रखके गजपुटमें फूंकदे । पीछे गदहपुरैनाके रसकी छः पुट देकर अभ्रकका सोलहवां भाग सुहागा डाले, फिर उसको खरल कर टिकिया बनाले, उन्हें गजपुटमें फूंके । इस प्रकार सात पुट दे । अडूसेके रस और चौलाईके रसकी भी सात सात भावना दे बस उत्तम अभ्रक-भस्म सिद्ध होजावेगा उसे अनुपानभेदसे अनेक रोगोंमें देवे ॥ ८१--८४ ॥

ऊनविंशविधिः ।

सुकुट्टिताभ्रं किल खल्वमध्ये तप्तं निषिञ्चेत्पयसा गवां वै ।
तल्लोहपात्रे मृदुवह्निपक्वं घृतेन किञ्चिच्च विलोडयित्वा ॥ ८५ ॥
शालीविमिश्रं किल वस्त्रमध्ये बद्ध्वा दृढं पोटलिमम्बुपात्रे ।
विघृष्य तोयान्तरसंस्थितं तद्धान्याभ्रकं सिद्धिमुपैति पश्चात्८६
खल्वे सुरम्ये किल घर्षयित्वा जले चतुःषष्टिवनस्पतीनाम् ।
घर्मेऽथ संशोष्य दिनान्तकाले वनोत्पलानां पुटमाचरेच्च ॥
एवंविधं मारितमभ्रकं च सदोपयुञ्जीत भिषक्क्रियासु ॥ ८७ ॥

बज्राभ्रकको खरलमें कूटकर गर्म करै और उसे गायके दूधमें बुझावे, फिर उसे किसी कढाई आदिमें घृत डालकर मन्दी आँचसे भूंजे । फिर उसमें अभ्रकसे दूने धान मिलाकर किसी मजबूत कपडेसे बाँध उस थैलीको पानीमें भिगोदे । फिर उस अभ्रकको खूब धो दूसरे पानीमें रखदे और थैलीको खूब मले, अनुमानसे ४—५ घंटेमें इस क्रियासे थैलीसे सब अभ्रक पानीमें आजाता है । और शुद्ध धान्याभ्रक हो जाता है । पीछे उस अभ्रकको सुन्दर खरलमें आगे कही जानेवाली औषधियोंके रसमें घोट, धूपमें सुखाकर रातमें सुन्दर सूखेहुए आरने उपलोंकी आँचमें फूँके इस प्रकार सिद्ध किये हुए अभ्रकभस्मको वैद्य उपयोगमें लावे ॥ ८५–८७ ॥

दुग्धं रवेर्वै वटदुग्धवज्रिकुमारिकाणामनिलारितिक्ताः ।
मुस्तागुडूचीविजयात्रिकंटवर्ताकिनीपर्णियुगं च गुल्मम् ॥ ८८ ॥
सिद्धार्थको वै खरमञ्जरीणां वटप्ररोहं ह्यजशोणितं च ।
बिल्वाग्निमन्थोग्निसतिन्दुकानां हरितकीपाटलिकासमूहैः ॥ ८९ ॥
गोमूत्रधात्रीकलिभंभकुम्भीतालीसपत्रं च सतालमूली ।
वृषाश्वगन्धामुनिभृङ्गराजरम्भाजलं सार्द्रसुसप्तपर्णम् ॥ ९० ॥
धत्तूरलोध्रं च सदेवदारु वृन्दासदूर्वाद्वयकासमर्दैः ।
मरीचकं दाडिमकाकमाची सशंखपुष्पी नतनागवल्ली ॥ ९१ ॥
पुनर्नवामण्डुकपर्णिका च इन्द्रायणी भार्गिसदेवदाली ।
कपित्थलिङ्गीकटुकिंशुकानां कोषातकीमूषकपर्ण्यनन्ता ॥
मीनाक्षिकाकारवितैलपर्णी कुम्भी तथार्द्रा च शतावरीणाम् ॥ ९२ ॥

आक, बड और थूहरका दूध, घीकुआरका रस, अंडीकी जडका रस, कुटकी, मोथा, गिलोय, भाँग, गोखुरू, कटेरी, शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, सफेद सरसों, खरमंजरी, बडकी जटा, बकरेका लोहू, बेल, अरणी, चित्रक, तेंदू, हरड, पाढलकी जड, गोमूत्र, आँवले, बहेडा, जलकुंभी, तालीसपत्र, मूसली, अडूसा, असगंध, अगस्तियाका रस, भाँगरा, केलेका रस, सतोना, धतूरा, लोध, देवदारु, तुलसी, दोनों दूब, कसौंदी, मिर्च, अनारदानेका रस, मकोय, शंखपुष्पी, बालछड, पानका रस, सोंठ, मण्डूकपर्णी, इंद्रायण, भारंगी, देवदाली, कैथ, शिवलिङ्गी, कटुवल्ली, ढाकका रस, तोरई, मूषकपर्णी, जवासा, मछेछी, कलौंजी, तैलपर्णी, पंचांगुलका रस, टुंटक, गुड, सुहागा, मालती, सप्तपर्णी, नागबला, अतिबला, महाबला, शतावर, कौंचकी जडका रस, गाजर, गर्जर, प्याज, लहसन, उटंगण, अमरबेल, हिलमोचिका, दुद्धी, पातालगरुडी, जटामांसी, दूध, दही, घृत, शहत, खाँड, धाय, पालंकिका इन ९० औषधि तथा पदार्थोंसे कोई कोई वैद्य अभ्रकको घोट तथा सुखाकर भावना देते हैं कोई यथाक्रम ६० औषधियोंसे और कोई ८० संख्याही तकके पदार्थोंसे घोटते हैं पर हम तो " अधिकस्याधिकं फलम् " समझते हैं ॥ ८८-९२ ॥

एभिश्चतायैः स्थितखल्वमध्ये विघर्षयेच्छुभ्रकभवं तथैव ।
वन्योत्पलानां पुटमग्निशीतं पुनः पुनःखल्वतले विघर्षेत् ॥ ९३ ॥

एभिः क्रियां षोडशवारमेकं वल्लीजलानां पुटमारभेच्च ।
निश्चन्द्रगोपारुणरङ्गतुल्यं भस्मामृतं दिव्यरसायनं च ॥ ९४ ॥
नानानुपानैरजरामरत्वं शरीरिणां सेव्यमिदं वरिष्ठम् ।
गुणैः सहस्रावधि सेवकानां समस्तरोगघ्नमिदं प्रसिद्धम् ॥ ९५ ॥

उक्त औषधियोंके रसमें अभ्रकको खरलमें खूब घोटे सूखजानेपर जङ्गली उपलोंकी आगमें फूंके, और उसे निकालकर ठंढा होनेपर घोटे और फिर आंच दे इसी प्रकार हरएक औषधिके सोलह पुट देवे और रस निकालने योग्य औषधिका तो रस डाले तथा क्राथयोग्य औषधिके क्राथका पुट देवे इस विधिसे यह अभ्रक चन्द्रकरहित भस्म होजाताहै । तथा उत्तम लाल होजाताहै यह अमृतके तुल्य उत्तम रसायन है । और अलग २ अनुपानोंके साथ सेवन करनेसे देहको अजर अमर करताहै इसलिये मनुष्योंको इस उत्तम रसका सेवन करना चाहिये । अपने अनेकगुणोंसे यह रस रोगियोंके सम्पूर्ण दोषोंको दूर करता है ॥ ९३-९५ ॥

कार्यपरत्वेन पुटसंख्या ।

दशादिसुशतान्तः स्यात्पुटो वै व्याधिनाशने ।
शतादिस्तु सहस्रान्तः पुटो देयो रसायने ॥ ९६ ॥

दशसे लेकर सौ पुटतक शोधा हुआ अभ्रक रोगोंको दूर करताहै यदि सौसे लेकर हजारपुट विधिपूर्वक दी गई हो तो यह रसायन होजाता है ॥ ९६ ॥

भावनापुटयोर्निर्णयः ।

सहस्रपुटपक्षे तु भावना पुटनं भवेत् ।
मर्दनं तु तथा न स्यादिति वैद्यवरा जगुः ॥ ९७ ॥

वैद्योंका मत है कि सौ पुटोंतक तो औषधियोंकी भावना दे और घोटे पर हजार पुटोंमें मर्दन न करे ॥ ९७ ॥

अभ्रकभस्मपरीक्षा ।

निश्चन्द्रं च सुसूक्ष्मं च लोचनांजनसन्निभम् ।
तदा मृतमिति प्रोक्तमभ्रकं चान्यथामृतम् ॥ ९८ ॥

चमकरहित खूब महीन आंखमें लगानेवाले काजलकेसी भस्म होजाय तो उसे सिद्ध जानना, नहीं तो कच्ची ही समझना चाहिये ॥ ९८ ॥

किञ्च ।

मृतं निश्चन्द्रतां यातमभ्रकं चामृतोपमम् ।
सचन्द्रं विषवज्ज्ञेयं मृत्युकृद्बहुरोगकृत् ॥ ९९ ॥

जो अभ्रक अच्छी तरह चन्द्रकरहित होजाय वह भस्म अमृतके समान जानना यदि चमकदार ही रहजाय तौ विषके तुल्य मृत्यु और रोगके देनेवाली होती है ॥ ९९ ॥

अमृतीकरणम् ।

त्रिफलात्वक्कषायस्य पलान्यादाय षोडश ।
गोघृतस्य पलान्यष्टौ मृताभ्रस्य पलानि दश ॥ १०० ॥
एकीकृते लोहपात्रे विपचेमृन्दुवह्निना ।
द्रव्ये जीर्णे समादाय योगवाहे प्रयोजयेत् ॥
अन्येषामपि धातूनाममृतीकरणं त्विदम् ॥ १०१ ॥

त्रिफलाकी छालका काढा १६ पल, गायका घृत ८ पल, मारा हुआ अभ्रक १० पल, इन सबको इकट्ठा कर लोहेकी कढाईमें धीमी आंचसे पकावे, जब पानी और घी जल जाय खाली अभ्रक ही रहजाय तो उसे उतार और ठंढा कर रख छोडे और योगोंमें उन २ अनुपानोंके साथ देनेसे यह अभ्रकका अमृतीकरण कहा जाता है इसी रीतिसे और धातुओंका भी अमृतीकरण समझना चाहिये कोई वैद्य मक्खन तथा घृतमें भी अमृतीकरण कहते हैं ॥ १०० ॥ १०१ ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

किञ्च ।

तुल्यं घृतं मृताभ्रेण लोहपात्रे विपाचयेत् ।
घृतं जीर्णं ततश्चूर्णं सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ १०२ ॥

अभ्रकके भस्मकी बराबर गायका घी लेकर लोहेकी कढाईमें चढावे और उसे पकावे, घीके जलजानेपर जब चूर्ण बाकी रहजाय तब उसे सब कामोंमें लावे॥१०२॥

अभ्रकभस्मगुणाः ।

रोगान्हत्वा दृढबलचयं वीर्यवृद्धिं विधत्ते
तारुण्याढ्यं रमयति शतं योषितां नित्यमेव ।
दीर्घायुष्काञ्जनयति सुतान् सिंहतुल्यप्रभावान्
मृत्योर्भीतिं हरति सततं सेव्यमानं मृताभ्रम् ॥ १०३ ॥

उत्तम अभ्रकका भस्म सदा सेवन करनेवालेके सब रोगोंका नाशकर शरीरमें प्रबल पराक्रम करता है, शुक्रको बढाता है, पूर्णयुवती एकसौ स्त्रियोंसे क्रीडा

करसकता है, चिरञ्जीवा और सिंहके समान पराक्रमी पुत्रोंको उत्पन्न करता है और मरनेका भय दूर करता है ॥ १०३ ॥

किञ्च ।

गौरीतेजः परमममृतं वातपित्तक्षयघ्नं
प्रज्ञाबोधि प्रशमितजरं वृष्यमायुष्यमग्र्यम् ।
बल्यं स्निग्धं रुचिदमकफं दीपनं शीतवीर्यं
तत्तद्योगैः सकलगदहृद्व्योम सूतेन्द्रबीजम् ॥ १०४ ॥

अभ्रक श्रीपार्वतीजीका तेज है, श्रेष्ठ अमृत है, वात पित्त और क्षयका नाश करता है, बुद्धिकी स्फूर्ति तथा वृद्धावस्थाका नाश करता है, बल तथा आयुको बढानेवाला है, देहमें कोमलता लानेवाला, भोजनमें इच्छा करानेवाला, कफका नाश करनेवाला, जाठराग्निको प्रज्वलित करनेवाला, ठंढे वीर्यवाला है, अलग २ अनुपानोंसे सम्पूर्ण रोगोंको नाश करता है और पारेको बाँधता है ॥ १०४ ॥

वयःस्तम्भकारी जरामृत्युहारी बलारोग्यधारी महाकुष्ठहारी ।
मृतोऽयं रसः सर्वरोगेषु योज्यः सदा सूतराजस्य वीर्येण तुल्यः॥ १०५॥

देहदार्ढ्यस्य सिद्ध्यर्थं त्रिगुञ्जं भक्षयेद्घनम् ।
नातःपरतरं किञ्चिज्जरामृत्युविनाशनम् ॥ १०६ ॥

भली भाँति मरा हुआ अभ्रक अवस्था स्थिर करनेवाला, वृद्धावस्था तथा मृत्युको हरनेवाला, शक्ति तथा आरोग्यताकारक बडे कुष्ठको दूर करनेवाला, सब रोगोंमें दिया जासकता है और पारेके भस्मके बराबर इसमेंभी गुण हैं शरीरके दृढ करनेके लिये ३ रत्ती अभ्रक खाना चाहिये, इससे बढकर बुढापा और मृत्युनाशक दूसरा औषध नहीं है ॥ १०५॥ १०६॥

मृताभ्रकं कामबलप्रदं च विषं मरुच्छ्वासभगन्दराख्यम् ।
मेहभ्रमं पित्तकफं च कासं क्षयं निहन्त्येव यथानुपानात् ॥ १०७ ॥

अच्छी तरह भस्म हुआ अभ्रक काम और बलको देता । विष, वायुविकार, श्वास, बवासीर, प्रमेह, चित्तभ्रम, पित्त, कफ, खाँसी और क्षयको अनुपान-भेदसे दूर करता है ॥ १०७ ॥

शुद्धाभ्रं ननु वल्लकद्वयमितं कृष्णामधुभ्यां युतं
मेहश्वासविषं च कुष्ठमतुलं वातं च पित्तं कफम् ॥

कासक्षीणक्षतक्षयं ग्रहणिकापाण्डुं भ्रमं कामलां
गुल्माद्यं च तथानुपानविधिना मृत्युं च जेजीयते ॥ १०८ ॥

शुद्ध अभ्रककी भस्म १ रत्तीसे ६ रत्तीतक पीपल और शहतके साथ सेवन करनेसे प्रमेह श्वास (दमा), विष, कोढ, वात, पित्त, कफ, खाँसी, दुबलापन, क्षय, घाव, संग्रहणी, पाण्डुरोग, भ्रम, कामला और गोलेका नाश करता है तथा अनुपानके साथ खानेसे मौतकोभी जीतती है ॥ १०८ ॥

प्रकारांतरम् ।

अभ्रकं च निशायुक्तं पिप्पलीमधुना सह ।
विंशतिं च प्रमेहाणां नाशयेन्नात्र संशयः ॥ १०९ ॥
अभ्रकं हेमसंयुक्तं क्षयरोगविनाशनम् ।
रौप्यहेमाभ्रकं चैव धातुवृद्धिकरं परम् ॥ ११० ॥
गोक्षीरशर्करायुक्तं पित्तरोगविनाशनम् ।
शैलेयपिप्पलीचूर्णमाक्षिकैः सर्वमेहहृत् ॥ १११ ॥
अभया गुडसंयुक्तं वातरक्तं नियच्छति ।
स्वर्णयुक्तं क्षयं हन्ति धातुवृद्धिं करोति च ।
रक्तपित्तं निहन्त्याशु चैलाशर्करया सह ॥ ११२ ॥

सबेरे हलदी, पीपल, तथा शहतके साथ अभ्रकभस्म खानेसे बीस प्रकारके प्रमेह नष्ट होते हैं सोनेके वर्कोंके साथ खानेसे क्षय नष्ट होता है । चांदी सोना और अभ्रकका भस्म मिलाकर खानेसे धातुकी वृद्धि होती है । चीनी या मिश्री मिले हुए गायके दूधके साथ खानेसे पित्तरोगोंको, शिलाजीत, पीपल और सोना-मक्खीके भस्मके साथ खानेसे सब प्रमेहोंको, हरड तथा गुडके साथ वातरक्तको नष्ट करती है सोनेके वर्कोंके साथ क्षयको दूर करै और धातुको बढावे, छोटी इलायची और चीनीके साथ खानेसे रक्तपित्तको हरती है ॥ १०९–११२ ॥

सितामृतासत्त्वयुतं मेहं नाशयते ध्रुवम् ।
वरामधुघृतैः साकं शुक्रकृन्नेत्ररोगहृत् ॥ ११३ ॥
एलागोक्षुरभूधात्रीशर्करासहितं तथा ।
गोदुग्धेन युतं हन्ति मूत्रकृच्छ्रं प्रमेहकम् ॥ ११४ ॥

त्रिसुगन्धवराव्योषशर्करानागकेशरैः ।
माक्षिकेण निहन्त्याशु पाण्डुरोगं क्षयं ज्वरम् ॥ ११५ ॥

अभ्रक[1] मिश्री और गिलोयके सतके साथ खायाजाय तो अवश्य प्रमेहका नाश करता है। त्रिफला शहत और घीके साथ शुक्रकी वृद्धि और नेत्ररोगोंका हरण करता है। इलायची, गोखुरू, भूमिआँवला, गायका दूध और मिश्रीके साथ खानेसे सूजाक तथा प्रमेहको अच्छा करताहै तज, पत्रज, इलायची, हर्ड, बहेडा, आँवला, सोंठ, मिर्च, पीपल, मिश्री तथा नागकेशरके चूर्णके साथ शहद मिलाकर खावे तो पाण्डुरोग क्षय तथा जीर्णज्वरका नाश करता है॥ ११३–११५ ॥

किञ्च।

वेल्लव्योषसमन्वितं घृतयुतं वल्लोन्मितं सेवितं
दिव्याभ्र क्षयपाण्डुसंग्रहणिकाशूलं च कुष्ठामयम् ।
जूर्तिं श्वासगदं प्रमेहमरुचिं कासामयं दुर्द्धरं
मन्दाग्निं जठरव्यथां परिहरेच्छोषामयान्निश्चितम् ॥ ११६ ॥

१ रत्ती अभ्रकका भस्म वायविडंग, सोंठ, मिर्च, पीपल तथा गायके घीके साथ खावे तो क्षय, पांडुरोग, संग्रहणी, शूल, कोढ, जूडी, श्वास, प्रमेह, खाँसी, मन्दाग्नि, उदररोग, शोष इन रोगोंको निश्चय दूर करै ॥ ११६ ॥

अभ्रकसत्त्वविधिः ।

ऊर्णा सर्जरसश्चैव क्षुद्रमीनसमन्वितम् ।
एतत्सर्वं तु सञ्चूर्ण्य च्छागदुग्धेन पिण्डिकाः॥
कृता ध्माताः खराङ्गारैः सर्वसत्त्वं निपातयेत् ॥ ११७ ॥

ऊन, राल, छोटी मछली इनको पीसकर चूर्ण बनावे फिर गायके दूधसे सानकर उसकी टिकिया बनाले उनको तेज कोयलोंकी आँचमें बंकलनलसे फूँके तो सत्त्व निकलजावेगा ॥ ११७ ॥

अभ्रकसत्त्वपातनम् ।

पादांशं टंकणोपेतं मुसलीपरिमर्दितम् ।
रुंध्यात्कोष्ठ्यां दृढं ध्मातं सत्त्वरूपं भवेद्घनम् ॥ ११८ ॥
कासमर्दघनाधान्यवासानां च पुनर्भुवः ।
मत्स्याक्ष्याः काकवल्याश्च हंसपद्या रसैः पृथक् ॥ ११९ ॥

पिष्ट्वा पिष्ट्वा प्रयत्नेन शोषयेद्धर्मयोगतः ।
पलं गोधूमचूर्णस्य क्षुद्रमत्स्याश्च टंकणम् ॥ १२० ॥
प्रत्येकमष्टमांशेन दत्त्वा रुद्ध्वा विमर्दयेत् ।
मर्दने मर्दने सम्यक् शोषयेद्रविरश्मिभिः ॥ १२१ ॥
पंचाजं पंचगव्यं च पंचमाहिषमेव च ।
क्षिप्त्वा गोलान्प्रकुर्वीत किंचित्तिंदुकतोऽधिकान् ॥ १२२ ॥
अधःपातनकोष्ठ्यां हि ध्मात्वा सत्त्वं निपातयेत् ।
कोष्ठ्या किट्टं समाहृत्य विचूर्ण्य रवकान्हरेत् ॥ १२३ ॥
तत्किट्टं स्वल्पटंकेन गोमयेन विमर्द्य च ।
गोलान्विधाय संशोष्य धमेद्भूयोऽपि पूर्ववत् ॥ १२४ ॥
भूयः किट्टं समाहृत्य मृदित्वा सत्त्वमाहरेत् ॥ १२५ ॥

४ चार सेर अभ्रकमें १ एक सेर सुहागा मिलाकर केलेके कंदके जलमें मर्दन करे फिर सुखाकर कोष्ठीयंत्रमें आध्मापित करे तो अभ्रक सत्त्वके आकारका घन होजाता है । फिर कसौंदी, मोथा, धनियाँ, वासा, पुनर्नवा (साठी), मत्स्याक्षी, काकवल्ली, हंसपदी इन औषधियोंके रसमें अलग २ घोटकर धूपमें सुखाता जाय, फिर ४ चार तोले गेहूँका आटा, छोटी मछली और सुहागा यह दोनों अभ्रकसे आठवाँ आठवाँ हिस्सा मिलाकर खरल करे । फिर बकरीकी मेंगन, मूत्र, दूध, दही, घृत लेकर इनकी अलग २ भावना देकर गोल २ टिकिया बनालेवे और उनको कोष्ठीयंत्रमें रखकर आध्मापित करे तो नीचे सत्त्व निकल जायगा सत्त्वके ऊपर कोष्ठीमें जो किट्ट जमाहुआ हो उसको तोडकर अभ्रकके सत्त्वके कणके निकाललेवे । फिर उस बची हुई किट्टमें थोडा सुहागा और गोबर मिलाकर टिकिया बनावे सूखनेपर पहलेकी तरह कोष्ठीयंत्रमें आँच देवे । इसी प्रकार तीन बारमें सब सत्त्व पतन होगा (सहत, चरबी, घी, तेल) इनमें गरम करके बुझानेसे सत्त्वके कनके नरम होकर मिल जाते हैं ॥ ११८–१२५ ॥

अन्यः प्रकारः ।

चूर्णीकृतं गगनपत्रमथारनाले धृत्वा दिनैकमवरास्थितसूरणं वा ।
भाव्यं रसैस्तदनु मूलरसैः कदल्याः पादांशटंकणयुतं शफरीशमिश्रम् १२६

पिण्डीकृतं तु बहुधा महिषीमलेन संशोष्य कोष्ठगतमाशु धमेन्महाग्नौ ।
सत्त्वं पतत्यतिरसायनजारणार्थं योग्यं भवेत्सकलरोगचयं निहन्ति॥ १२७

अब अभ्रकसत्त्वपातनका और भी प्रकार कहते हैं । अभ्रकके चूर्णको एक दिन कांजीके और एक दिन सूरण (जमीकंद) के रसमें भिगोय देवे तत्पश्चात् केलाकन्दके रसमें भावना देकर चौथा हिस्सा सुहागा और छोटी मछली मिलाकर भैंसके गोबरके साथ छोटी २ गोली बनाकर धूपमें सुखालेवे तदनन्तर उन गोलियोंको कोष्ठिकामें रख बंकनाल धोंकनीसे खूब तेज आँच देवे तो सत्त्व निकलेगा । यह जारणयोग्य अत्यंत रसायन है इसके सेवनसे अनेक प्रकारके रोग नष्ट होजाते हैं ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

तत्रान्यमतम् ।

गुडः पुरस्तथा लाक्षा पिण्याकं टंकणं तथा ।
ऊर्णा सर्जरसश्चैव क्षुद्रमीनसमान्वितम् ॥ १२८ ॥
एतत्सर्वं तु संचूर्ण्य छागदुग्धेन पिंडिकाः ।
कृत्वा ध्माताः खरांगारैः सत्त्वं मुंचन्ति निश्चितम् ॥
पाषाणमृत्तिकादीनां व्योमसत्त्वस्य का कथा ॥ १२९ ॥

अभ्रक सत्त्वपातनमें किसीका मत है कि, गुड, गुग्गुल, लाख, खल, सुहागा, ऊन, राल, छोटी मछली इन सबको पीस अभ्रक मिलाय बकरीके दूधमें चकती बांध धूपमें सुखालेवे फिर घडेमें रख बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो सत्त्व निकलकर नीचे बैठजायगा । इस विधिसे पत्थर और मिट्टी तकका सत्त्व निकलसकता है और अभ्रकके सत्त्व निकलनेकी तो कौन बडी बात है ॥ १२८ ॥ १२९ ॥

अथ सत्त्वस्यैकीकरणम् ।

कणशो यद्भवेत्सत्त्वं मूषायां प्रणिधापयेत् ।
मित्रपंचकयुग् ध्मातमेकीभवति घोषवत् ॥ १३० ॥

अभ्रकका जो सत्त्व है उसके छोटे २ कणोंको इकट्ठा कर उनमें मित्रपंचक मिलाय मूषामें रख तेज आंच देवे तो सत्त्वके रवा मिलकर काँसेके तुल्य होजाते हैं ॥ १३० ॥

अथाभ्रकसत्त्वपातनस्यान्योऽपि प्रकारः ।

अब अभ्रकके सत्त्वपातनका औरभी प्रकार कहते हैं ।

मृताभ्रं कदलीकंदे सप्ताहं भावयेद्बुधः।
सूरणस्य रसेऽप्येवं मुस्ताक्वाथे तथैव च ॥ १३१ ॥
संशोष्यास्मिन्प्रदातव्यं चतुर्थांशं च टंकणम्।
गुंजागुग्गुलुलाक्षा च ऊणास्वर्जी तथैव च ॥ १३२ ॥
रालकं लघुमत्स्यं च यवक्षारं खलं तथा।
सूरणश्चैव गंडूपस्त्रिफला चित्रकी तथा ॥ १३३ ॥
क्षीरकंदं च धत्तूरं लांगली पाटला तथा।
बला वै गंधपाषाणं मक्षिकिट्टं च गोक्षुरः ॥ १३४ ॥
चत्वारो लवणान्येवं मधु साँखलमेव च।
शशकस्यास्थि दातव्यं कपोतोद्भवविट् तथा ॥ १३५ ॥
त्रिकुटा सर्षपाश्चैव तथैव तैलजीवनम्।
महिष्या दधिदुग्धे च घृतमूत्रे तथैव च ॥ १३६ ॥
सर्वान् संमेल्य तुल्यांशान् ह्यभ्रके मेलयेत्पुनः।
टंकत्रयमिता गुटिकाः कार्या वैद्यवरेण च ॥ १३७ ॥
शोषयित्वा च सूर्याग्नौ कोष्ठीयंत्रे विपाचयेत्।
प्रध्माय बंकनालेन सत्त्वं चाधः प्रपातयेत् ॥ १३८ ॥
सत्त्वं निष्कृष्य चाप्येवं त्रिवारं विधिना पुनः।
सत्त्वं पतति तत्सर्वं तप्तकांचनसन्निभम् ॥ १३९ ॥
मृतो यदि न लभ्येत तदा धान्याभ्रकं भजेत्।
सत्त्वं तस्य तु कांस्याभं श्वेतवर्णं भविष्यति ॥ १४० ॥

अब अभ्रकके सत्त्वपातनका अन्य प्रकार कहते हैं। मरे हुए अभ्रकको सात दिन केलाके रसमें घोटे इसी प्रकार जमीकंदके रसमेंभी सात दिन पर्यंत तदनंतर सात दिन मोथेके क्काथकी भावना देकर धूपमें सुखाकर चौथा हिस्सा सुहागा फुलाकर डाले और चिरमिठी, गूगल, लाख, ऊन, सज्जी, राल, छोटी मछली, खल, जमीकंद, केंचुआ, हरड, बहेडा, आंवला, चित्रक, क्षीरकंद, धतूरेके बीज, कलिहारी, पाढ, बलबीज, गंधक, मोम, गोखरू, सेंधानोन, संचरनोन,

बिडनोन, साँभरनोन, शहत, साँखला, शशेकी हड्डी, कबूतरकी बीठ, सोंठ, पीपल, मिर्च, गोखुरू, सरसों, तेलजीवन, भैंसका दूध, दही, घृत, मूत्र इन सबको समान भाग लेकर कूट पीसकर बारीक करलेवे । फिर तीन २ टंककी टिकरी बना धूपमें सुखालेवे और उन टिकरियोंको कोष्ठीयन्त्रमें रख उत्तम कोयलोंकी आंच देवे बंकनाल धोंकनीसे धोंके तो नरम सत्त्व निकल नीचे बैठजायगा, उसको निकाल खंगरको तोड चुंबकसे सत्त्वको निकाललेवे और फिर पहले कहा हुआ मसाला डालकर धोंके इसी प्रकार तीन बार करनेसे सब सत्त्व निकल आवेगा यदि मरा हुआ अभ्रक न मिले तो अन्याभ्रककाही सत्त्व निकाले लेकिन यह सत्त्व कांसेके तुल्य निकलेगा ॥ १३१-१४० ॥

अथाभ्रकसत्त्वशोधनम् ।

अथसत्त्वकणांस्तांस्तु मुस्ताक्काथाम्लकांजिकैः ।
शोधनीयं गुणोपेतं मूषामध्ये निरुध्य च ॥ १४१ ॥
सम्यक्पक्कं समाहृत्य द्विवारं प्रधमेत्ततः ।
इति शुद्धं भवेत्सत्त्वं योग्यं रसरसायने ॥ १४२ ॥

अब अभ्रक सत्त्वके शोधन करनेकी विधि कहते हैं । अभ्रकसत्वके कणोंको मोथेके क्काथ, अम्लवर्ग और कांजीमें शोधकर मूषामें रक्खे और उसमें कपरमिट्टी करके आँच देवे और फिर उसे निकालकर पहले कही हुई औषधियोंमें शुद्ध कर मूषामें रख आँच देवे तो अभ्रकका सत्त्व शुद्ध होकर पारेका बाँधनेवाला और रसायनके योग्य होताहै ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

अथाभ्रकसत्त्वमारणम् ।

सूततुल्यं व्योमसत्त्वं तयोस्तुल्यं च गंधकम् ।
कुमारीस्वरसैर्मर्द्यं यंत्रे सैकतके पचेत् ॥ १४३ ॥
दिनद्वयांते संग्राह्यं भक्षयेन्माषमात्रकम् ।
क्षयं शोषं तथा कासं प्रमेहं चापि दुष्करम् ॥ १४४ ॥
पांडुरोगं च कार्श्यं च जयेच्छीघ्रं न संशयः ॥ १४५ ॥

अब अभ्रकसत्त्वके मारणकी विधि कहते हैं । अभ्रकसत्त्व और पारा समान भाग लेवे और इन दोनोंके समान गंधक लेकर घीकुआरके रसमें घोटे और वालुकायंत्रमें पकावे दो दिनके अनन्तर उस सत्त्वको निकालकर प्रतिदिन एक

एक मासा सेवन करे तो क्षय, शोष, खांसी, प्रमेह, पांडुरोग, कृशता इन सबको शीघ्र ही नाश करता है ॥ १४३-१४५ ॥

दिव्याभ्ररसायनं रसरत्नसमुच्चयात्।
सत्त्वस्य गोलकं ध्मातं सस्यसंयुक्तकांजिके ॥ १४६ ॥
निर्वाप्य तत्क्षणेनैव कुट्टयेल्लोहमारया।
संप्रताप्य घनस्थूलकणान् क्षिप्त्वाथ कांजिके ॥ १४७ ॥
तत्क्षणेन समाहृत्य कुट्टयित्वा रजश्चरेत्।
गोघृतेन च तच्चूर्णं भर्जयेत्पूर्ववत्त्रिधा ॥ १४८ ॥
धात्रीफलरसैस्तद्वद्धात्रीपत्ररसेन वा ॥
भर्जने भर्जने कार्यं शिलापट्टेन पेषणम् ॥ १४९
ततः पुनर्नवावासारसैः कांजिकमिश्रितैः।
प्रपुटेद्दशवाराणि दशवाराणि गंधकैः ॥ १५० ॥
एवं संशोधितं व्योमसत्त्वं सर्वगुणोत्तरम्।
यथेष्टं विनियोक्तव्यं जारणे च रसायने ॥ १५१ ॥

अब हम रसरत्नसमुच्चय ग्रन्थमें लिखी हुइ दिव्याभ्ररसायनकी विधि कहते हैं। अभ्रकसत्त्वके गोलेको वार वार अग्निमें तपाकर धान्ययुक्त कांजीमें बुझावे तदनन्तर उस गोलेको कांजीसे अलग निकाल लोहेके खरलमें खूब कूटे और कूटनेपर भी जो बडे २ टुकडे रहजावें उनको फिर भी धानयुक्त कांजीमें बुझावे और उस कांजीसे शीघ्र ही निकाल खरलमें छोड रेतके समान बारीक करे तत्पश्चात् उस अभ्रक चूर्णको गायके घृतमें भूने और पहलेकी भाँति कांजीमें भिगोवे इसी प्रकार तीन बार गोघृतमें, तीन बार आँवलोंके रसमें और तीन बार आँवलोंके पत्तोंके रसमें भूने पर जब २ भूने तब २ एक पत्थरकी शिलपर पीस लिया करे। तत्पश्चात् पुनर्नवा, वासा और कांजी इनको मिलाकर दश पुट देवे। इसी रीतिसे गंधकके भी दश पुट देवे तो दिव्याभ्ररसायन सिद्ध होता है। यह शुद्ध किया हुआ दिव्याभ्ररसायन उत्तम गुणोंसे युक्त होता है, वैद्य इस सत्त्वके अपनी इच्छाके अनुसार पारेके जारणमें और रसायनमें युक्त करे ॥ १४६-१५१ ॥

अथ सत्त्वस्य मृदूकरणम्।

मधुतैलवसाज्येषु द्रावितं परिवापितम्।
मृदु स्याद्दशवारेण सत्त्वं लोहादिकं खरम्॥ १५२॥

अब सत्त्वके मृदु करनेकी विधि लिखते हैं। अभ्रकसत्त्वको शहत, तेल, चर्बी, घृत इनमें गला २ कर बुझानेसे सत्त्व और लोह आदि कठिन धातु भी नरम होजाते हैं॥ १५२॥

अथाभ्रकसत्त्वभस्मविधिः।

पट्टचूर्णं विधायाथ गोघृतेन परिप्लुतम्।
भर्जयेत्सप्तवाराणि चुल्लीसंस्थितखर्परे॥ १५३॥
अग्निवर्णं भवेद्यावद्वारं वारं विचूर्णयेत्।
तृणं क्षिप्त्वा दहेद्यावत्तावद्वा भर्जनं चरेत्॥ १५४॥
ततः सगंधकं पिष्ट्वा वटमूलकषायतः।
पुटेद्विंशतिवारेण वाराहेण पुटेन च॥ १५५॥
पुनर्विंशतिवाराणि त्रिफलोत्थकषायतः।
त्रिफलामुंडिकाभृंगपत्रपथ्योक्षभृंगकैः॥ १५६॥
भावयित्वा प्रयोक्तव्यं सर्वरोगेषु मात्रया।
सत्त्वाभ्रात्किंचिदपरं निर्विकारं गुणाधिकम्॥ १५७॥
एवं चेच्छतवाराणि पुटपाकेन साधितम्।
गुणवज्जायतेऽत्यर्थं परं पाचनदीपनम्॥ १५८॥
क्षुधां करोति चात्यर्थं गुंजार्द्धमितसेवया।
तत्तद्रोगहरैर्योगैः सर्वरोगहरं परम्॥ १५९॥

अब अभ्रकसत्त्वके भस्म बनानेकी विधि कहते हैं। अभ्रकके मृतसत्त्वको किसी शिलापर खूब बारीक पीस गौका घी मिलादेवे तदनन्तर उसको कडाईमें छोड-कर सात बार भूने, भूनते २ जब अग्निके तुल्य सुर्ख होजाय अथवा तिनका लगाते ही जल उठे तब तक भूने और जब ठीक २ भून जावे तब कडाईसे अलग निकालकर फिर शिलापर अच्छे प्रकार पीसे। इसी भाँति सात बार भूनकर गंधक मिला बडकी जडोंके काढेमें घोटकर बाराहपुटमें फूँक देवे इसी रीतिसे बीस

बाराहपुट देवे तथा बीस पुट त्रिफलाके काढेके देकर त्रिफला, गोरखमुंडी, भाँगरेके पत्ते, अडूसा और मूलीके रसोंकी भावना देवे तो दिव्य भस्म सिद्ध होवे इस सिद्धभस्मको सब रोगोंमें मात्रासे सेवन करना चाहिये । इस अभ्रकसत्त्वका भस्मसे अधिक और गुणोंमें उत्तम तथा दोषरहित कोई दूसरी औषधि नहीं है । यदि इस भस्मको १०० सौ वार पुटपाककी रीतिसे सिद्ध करे तो बहुतही गुणकारक होवे । यह पाचन, दीपन और भूँखको बढानेवाली है इसकी मात्रा आधी रत्ती है उन २ रोगोंके नाश करनेवाले योगोंके साथ यदि इस अभ्रकसत्त्व-भस्मको मात्रासे सेवन करे तो सब प्रकारके रोग नष्ट होजाते हैं । इस भस्मके अनुपान पूर्वोक्त अभ्रकके तुल्य जानने चाहिये ॥ १५३–१५९ ॥

द्रुतयो नैव निर्दिष्टाः शास्त्रे दृष्टा अपि ध्रुवम् ।
विना शंभोः प्रसादेन न सिध्यन्ति कदाचन ॥ १६० ॥

शास्त्रमें अभ्रककी द्रुतिका प्रकार नहीं लिखा है और हमने किसीको करते भी नहीं देखा । यद्यपि इसके बनानेकी प्रकार किन्ही २ ग्रथोंमें लिखा है तोभी विना शिवजीकी प्रसन्नताके सिद्ध नहीं होती । ऐसा होनेपर भी हम आगे द्रुतिका प्रकार इसलिये लिखते हैं कि, कदाचित् भाग्यवश शिवजीकी प्रसन्नतासे सिद्ध ही होजावे ॥ १६० ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

अथाभ्रकद्रुतिविधिः ।

अगस्त्यपत्रनिर्यासैर्मर्दितं धान्यकाभ्रकम् ।
सूरणोदरमध्ये तु निक्षिप्तं लेपितं मृदा ॥ १६१ ॥
गोष्ठभूमिं खनित्वा तु हस्तमात्रां हि पूरयेत् ।
मासा निस्सारितं तत्तु जायते पारदोपमम् ॥ १६२ ॥

धान्याभ्रकको अगस्तियाके पत्तोंके रसमें घोटकर जमीकंदके भीतर भरदेवे और उसका मुख जमीकंदकेही टुकडेसे बन्द करदेवे । ऊपरसे कपरमिट्टी करके गोष्ठ (गौओंके बाँधनेके स्थान) में एक हाथ जमीन खोदके गाड देवे और फिर उसे एक मासके बाद निकाले तो वह अभ्रक पारेके समान पतला हो जावेगा ॥६१॥६२॥

द्वितीयः प्रकारः ।

स्वरसेन वज्रवल्ल्याः पिष्टं सौवर्चलान्वितं गगनम् ।
पक्वं शरावसंस्थं बहुवारं भवति रसरूपम् ॥ १६३ ॥

अब द्रुतिका दूसरा प्रकार कहते हैं । वज्रवल्लीके रसमें संचरनोन मिलाकर धान्याभ्रकको पीसे तदनन्तर शरावसंपुटमें रख अग्निमें पकावे इसी प्रकार कई बार करनेसे पारेके तुल्य पतला हो जाता है ॥ १६३ ॥

तृतीयः प्रकारः

निजरससंपरिभावितकंचुकिकंदोत्थचूर्णपरिवापात् ।
द्रुतमास्तेऽभ्रकसत्त्वं तथैव सर्वाणि लोहानि ॥ १६४ ॥

अब तीसरी विधि कहतेहैं । कंचुकी शाकके चूर्णको उसीके रसकी भावना देकर अभ्रकसत्त्वमें डाले तो वह पतला हो जाता है इसी प्रकार सर्व लोहोंकीभी द्रुति होती है ॥ १६४ ॥

चतुर्थः प्रकारः ।

शुद्धकृष्णाभ्रपत्राणि पीलुतैलेन लेपयेत् ।
घर्मे शोष्याणि सप्ताहं लिप्त्वा लिप्त्वा पुनः पुनः ॥ १६५ ॥
मर्दितं चाम्लवर्गेण तद्वच्छोष्याणि चाथ वै ।
स्नुह्यर्कार्जुनवह्नीनां कटुतुंब्याः समाहरेत् ॥ १६६ ॥
क्षारं क्षारत्रयं चैतदष्टकं चूर्णितं समम् ।
वज्रकंदं क्षीरकंदं बृहती कंटकारिका ॥ १६७ ॥
वनवृंताकमेतेषां द्रवैर्भाव्यं दिनत्रयम् ।
अनेन क्षारकल्केन पूर्वपत्राणि लेपयेत् ॥ १६८ ॥
आतपे कांस्यपात्रे च धृत्वा धृत्वा पुनः पुनः ।
एवं दिनत्रयं कुर्याद्द्रुतिर्भवति निर्मला ॥ १६९ ॥

अब चतुर्थ प्रकार कहते हैं । शुद्ध किये हुए काले अभ्रकके पत्रोंपर पीलूके तेलका लेप करके धूपमें सुखालेवे इसी प्रकार सात दिन तक बार २ पीलूके तेलका लेप कर धूपमें सुखावे और पीछे पारदके प्रकरणमें कहे हुए अम्लवर्गकी औषधोंसे घोटकर उसी प्रकार सुखावे तदनन्तर थूहर, आक, अर्जुनवृक्ष, चित्रक, कडवी तूंबी इनके खार तथा सज्जीखार, जवाखार, सुहागा इन आठोंका बारीक चूर्ण करलेवे और वज्रकंद, क्षीरकंद, बडी कटेरी, वनका बैंगन इनके रसमें उस क्षारचूर्णको मिलाकर घोटे जब ठीक २ घुटजावे तो अभ्रकके पत्रोंपर इसका लेप करके काँसेकी थालीमें रखकर धूपमें सुखालेवे इसी प्रकार तीन दिन

तक बारंबार क्षार कल्कका लेप करके सुखावे तो पारेकी तरह अभ्रककी निर्मल द्रुति होजाती है ॥ १६५–१६९ ॥

पञ्चमप्रकारः ।

कर्कोटीफलचूर्णं तु मित्रपंचकसंयुतम् ।
एतत्तुल्यं च धान्याभ्रमम्लैर्मर्द्यं दिनावधि ॥
अथ मूषागतं ध्मातं तद्द्रुतिर्भवति ध्रुवम् ॥ १७० ॥

अब पंचम प्रकार कहते हैं । ककोडाके फलके चूर्णको मित्रपंचक अर्थात् घृत, शहत, गुग्गुल, घुंघची, गुड इनमें मिलालेवे और इसीके बराबर धान्याभ्रकको मिलाय एक दिन अम्लवर्गकी औषधोंमें खरल कर मूषामें रख भट्ठीमें बंकनाल धोंकनेसे खूब धोंके तो निश्चयसे अभ्रककी द्रुति होवे ॥ १७० ॥

षष्ठप्रकारः ।

धान्याभ्रकं च गोमांसमभ्रपादं च सैंधवम् ।
स्नुह्यर्कपयसां द्रावैर्मुनिजैर्मर्दयेत्र्यहम् ॥ १७१ ॥
तद्गोलं कदलीकंदे क्षिप्त्वा बाह्ये मृदा लिपेत् ।
करीषाग्नौ त्र्यहं पाच्यं द्रुतिर्भवति निर्मला ॥ १७२ ॥

अब छठा प्रकार कहते हैं । थूहर और आकके दूध तथा अगस्तियाके रसमें धान्याभ्रक, गौका मांस और अभ्रकका चतुर्थांश सेंधानमक डालकर तीन दिन पर्यंत घोटकर गोला बनालेवे और उस गोलेको केलाकंदमें रख कपरमिट्टी करके तीन दिन जंगली उपलोंकी आँच देवे तो अभ्रककी स्वच्छ द्रुति सिद्ध होजावे ॥ १७१ ॥ १७२ ॥

सप्तमप्रकारः ।

अभ्रकं नरतैलेन भावितं च सुचूर्णितम् ।
गोपेन्द्रलेपिता मूषा ध्मनाद्द्रुतिमाप्नुयात् ॥ १७३ ॥

अब साँतवां प्रकार कहते हैं । अभ्रकको रामकपूरके तेलकी भावना देकर पीसलेवे और उसे मूषामें रक्खे तदनंतर मूषामें बीरबहूटीके रक्तका लेपकर अग्निमें रख धोंकनेसे अभ्रककी द्रुति होती है ॥ १७३ ॥

अष्टमप्रकारः ।

श्वेताभ्रकं च संचूर्ण्य गोमूत्रेण तु भावयेत् ।
कदलीफलसंयुक्तं भावयेत्तद्विचक्षणः ॥ १७४ ॥

धमेत्तदंधमूषायां त्रिवारं च पुनः पुनः ।
द्रुतं भवति तद्वज्रं नात्र कार्या विचारणा ॥ १७५ ॥
अनेनैव प्रकारेण कुर्याद्द्रुतिमथोत्तमाम् ॥ १७६ ॥

अब आठवां प्रकार कहते हैं । सफेद अभ्रकका बारीक चूर्ण बनाकर गौके मूत्र और केलेके कंदकी भावना देकर अंधमूषामें रख अग्निपर रक्खे और इस प्रकार तीन वार भावना देकर बार २ धौंके तो अभ्रककी द्रुति होजाती है । इत्यादि पूर्वोक्त प्रकारोंसे अभ्रककी उत्तम द्रुति होती है ॥ १७४-१७६ ॥

अथानेकधातुद्रुत्येकीकरणम् ।

कृष्णागरुनाभिशिलारसोनसितरामैठरिमा द्रुतयः ।
सोष्णे मिलन्ति मर्द्याः श्रीकुसुमपलाशबीजरसैः ॥ १७७ ॥

अब अनेक धातुओंसे बनाई हुई द्रुतियोंके एकमें मिलानेका प्रकार कहते हैं । काला अगर, कस्तूरी, लहसन, सफेद हींग इनको और सब द्रुतियोंको एकमें मिलाकर खरलमें घोटकर धूप वा आँचमें कुछ गर्म कर लौंग और ढाकके बीजोंके रसमें घोटे तो सब द्रुति मिलकर एक होजाती हैं ॥ १७७ ॥

अभ्रकासिद्धेः काठिन्यं दर्शयति ।

भाग्यं विनाभ्रद्रुतयो जायन्ते न कदापि हि ।
विना शम्भोः प्रसादेन न सिध्यन्ति कदाचन ॥ १७८ ॥
तथापि शास्त्ररूढत्वात्कदाचिद्भाग्ययोगतः ॥ १७९ ॥

यद्यपि उत्तम प्रारब्ध और श्रीशिवजीकी कृपा विना अभ्रककी द्रुति अर्थात् द्रावण सिद्ध नहीं होती तोभी शास्त्रमें इस द्रुतिका विधान होनेसे कदाचित् भाग्यवश सिद्ध होजावे इस हेतु मैंने भी यहां इसका विधान कहा है ॥१७८॥१७९॥

अथाभ्रकविद्धाक्रिया ।

श्वेताभ्रं श्वेतकाचं च विषसैंधवटंकणम् ।
स्नुहीक्षीरैर्दिनं मर्द्यं तेन वंगस्य पत्रकम् ॥ १८० ॥
लेप्यं पादांशकल्केन चांधमूषागतं धमेत् ।
यावद्द्रावयते वंगं पूर्वतैले च ढालयेत् ॥ १८१ ॥
वार्यादिलेपमेकं च सप्तवाराणि कारयेत् ।

पुत्रजीवोत्थतैलेन ढालयेत्सप्तवारकम्।
तद्वंगं जायते तारं शंखकुन्देन्दुसन्निभम् ॥ १८२ ॥

अब अभ्रकवेधी क्रिया कहते हैं। थूहरके दूधमें सफेद अभ्रक, सफेद काच, सिंगिया विष, सेंधा नोन और सुहागा मिलाकर एक दिन अच्छे प्रकार घोटकर राँगेके पत्रोंपर लेप करदेवे और उन लेप किये हुए पत्रोंको अंधमूषामें रख धोंकनीसे धोंके जब वंग गलनेलगे तब पहले उसको तेलमें ढालदे और फिर पहले कहाहुआ लेप करके आँचमें गर्म करके (पुत्रजीव) जीयापोताके तेलमें ढालदेवे इसी प्रकार सात बार करनेसे वह शंख, कुन्द और चन्द्रमाके तुल्य सफेद चाँदी होजाताहै॥१८१॥१८२॥

द्वितीयप्रकारः।

पीताभ्रं गंधकं सूतं रक्तपुष्पं चतुर्थकम्।
वज्रीक्षीरेण संयुक्तं वंगं तारायते क्षणात् ॥ १८३ ॥

अब दूसरा प्रकार कहते हैं। हरताल, अभ्रक, गंधक, पारा और लाल फूलोंको बारीक पीसकर थूहरके दूधमें घोटे तत्पश्चात् रांगको गलाकर उसमें छोडे तो उत्तम चाँदी बनजाती है ॥ १८३ ॥

अथ पुटिताभ्रकगुणाः।

अभ्रस्त्वष्टादशपुटाद्वातहा द्विगुणेन च।
पित्तघ्नस्त्रिगुणेनैव कफहा मेहशोफहा ॥ १८४ ॥
अम्लपित्तामवातादिरोगे स्याद्गजकेसरी।
अभ्रं शतपुटादूर्ध्वं बीजसंज्ञां ध्रुवं लभेत् ॥ १८५ ॥
वीर्यौजःकान्तिमूलश्च सबीजो देहधारकः ॥ १८६ ॥

अब पुट दिये हुए अभ्रकके गुण कहते हैं। अठारह पुटकी अभ्रक वातरोगोंको नाश करतीहै और छत्तीस पुटकी अभ्रक पित्तरोगोंको नाश करती है। चौअन पुटकी अभ्रक कफरोग प्रमेह और सूजनको हरती है तथा अम्लपित्त और आमवातादि हाथीरूप रोगोंके नाश करनेमें सिंहके समान है। सौ पुटके अनन्तर शास्त्रकारोंने इस अभ्रकका बीज नाम रक्खा है यह सबीज अभ्रक वीर्य पराक्रम और शरीरमें कान्ति तथा देहका धारण करनेवाला है ॥ १८४–१८६ ॥

अथाभ्रककल्पम्।

निश्चंद्रमभ्रकं भस्म धात्रीव्योषविडंगकम्।
निष्कैकं भक्षयेत्प्राज्ञो वर्षमेकं निरंतरम् ॥ १८७ ॥

द्वितीये तु पुनर्वर्षे भक्षयेद्गुटिकाद्वयम् ।
एवं संवत्सरेणैव गुटिकैकां प्रवर्द्धयेत् ॥ १८८ ॥
त्रिवर्षस्य प्रयोगोयमभ्रकस्य प्रकीर्तितः ।
अनेन क्रमयोगेन व्योम्नः शतपलं नरः ॥ १८९ ॥
अद्याद्भवेन्न संदेहो वज्रकायो महाबलः ।
मासत्रयेण रक्ताख्यं क्षयकासं सुदारुणम् ॥ १९०
पंचकासांश्च हृद्गुल्मग्रहण्यर्शोभगंदरम् ।
आमवातं तथा शोषं पांडुरोगं सुदारुणम् ॥ १९१ ॥
मृत्युकल्पं महाव्याधिं वातपित्तकफोद्भवम् ।
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि नृणां पथ्याशिनां ध्रुवम् ॥ १९२ ॥

अब अभ्रककल्पकी विधि कहते हैं चमक रहितअभ्रककी भस्म, आँवले, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग इन सबको सम भाग लेकर पीसे और चार २ मासेकी गोलियाँ बनावे, एक वर्ष पर्यन्त प्रतिदिन एक एक गोली सेवन करे। और जब दूसरे वर्षका प्रारम्भ हो तो प्रतिदिन दो गोली सेवन करना चाहिये। तीसरें वर्षमें तीन गोली नित्य सेवन करना चाहिये। अर्थात् प्रतिवर्ष एक गोलीकी वृद्धि करके सेवन करना उचित है। यदि पूर्वोक्त विधिसे१०० सौ पल (चार सौ तोले) अभ्रक विधिपूर्वक सेवन करे तो उस मनुष्यका शरीर वज्रके तुल्य दृढ होजावे यदि पथ्यसे भोजन करनेवाले मनुष्य तीन महीने तक इसका प्रयोग करे तो रक्तविकार, क्षयी, पांच प्रकारकी प्रबल खाँसी, हृदयरोग, गोला, संग्रहणी, बवासीर, भगंदर, आमवात, शोष अर्थात् सूखना पांडुरोग, मृत्युके तुल्य महाव्याधि, वात, पित्त और कफसे प्रकट अठारह प्रकारके कुष्ठ आदि समस्त रोग दूर होवें ॥ १८७-१९२ ॥

अभ्रकसेवने पथ्यानि ।

क्षाराम्लं द्विदलं चैव कर्कटी कारवेल्लकम् ।
वृंताकं च करीरं च तैलं चाभ्रे विवर्जयेत् ॥ १९३ ॥

अब अभ्रकके सेवनमें अपथ्य पदार्थ कहते हैं। खार और अम्ल अर्थात् खट्टे पदार्थ, दो दलके अन्न चना अरहर, मसूर, मूंग आदि ककडी, करेला, बैंगन, करीलका शाक (ककाराष्टक) और तेल इन सबको अभ्रक सेवन करनेवाला मनुष्य त्याग करे ॥ १९३ ॥

अपक्वाभ्रकसेवनेदोषाः।

चन्द्रिकादियुतमभ्रकं हठाज्जीवितं च झटिति प्रणाशयेत्।
व्याघ्ररोम इव चोदरस्थितं वा तनौ वितनुते गदान्बहून् ॥१९४॥

यदि अपक्व अर्थात् कच्चे अभ्रकका सेवन करे तो जैसे उदरमें रहनेसे व्याघ्रके रोम शरीरमें अनेक प्रकारके रोग उत्पन्न करते हैं इसी प्रकार जो अभ्रक पकानेमें चमकदार रहगया है अर्थात् ठीक २ नहीं पका वह अनेक रोगोंको पैदा करताहै और बलात् प्राणोंको शीघ्र ही नाश करता है ॥ १९४ ॥

तद्दोषशान्त्यर्थमुपायः।

उमाफलं वने पिष्ट्वा सेवते यो दिनत्रयम्।
अशुद्धाभ्रकदोषेण विमुक्तः सुखमेधते ॥ १९५ ॥

यदि आमलोंको जलमें पीसकर तीन दिन सेवन करे तो अपक्व अभ्रकके भक्षणसे उत्पन्न दोषोंसे निवृत्त होकर सुखको प्राप्त होवे ॥ १९५ ॥

अथोपसंहारः।

एवं वै सप्तमेऽध्याये गगनस्य क्रिया शुभा।
वार्ता तद्विषयिण्यन्या तथा चात्र प्रकीर्तिता ॥ १९६ ॥

इस प्रकार इस सातवें अध्यायमें अभ्रककी उत्तम क्रिया और उसके विषयमें अन्य अनुपानादि भी वर्णन किये गये ॥ १९६ ॥

इति श्रीटकसालनिवासिपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे गगनवर्णनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः।

अथातो हरितालशोधनमारणप्रकरणं नामाष्टमाध्यायं वाख्यास्यामः।

अब हम हरितालशोधन मारण प्रकरण नामक आठवें अध्यायका वर्णन करते हैं

श्रूयतामधुना तात तालकस्यापि सत्क्रिया।
मारणं शोधनं चैव तदुत्पत्तिस्तथैव च ॥ १ ॥

हे तात ! अब हरितालकी भी श्रेष्ठक्रिया सुनो और उसकी उत्पत्ति, शोधन तथा मारणका प्रकार भी सुनो ॥ १ ॥

शुद्धं तथा मृतं तालं यो जानाति स वैद्यराट् ।
कुष्ठादीनपि संजित्य यशो वै लभते परम् ॥ २ ॥

शुद्ध और मारण की हुई हरितालको जो जानता है वह वैद्यराज कुष्ठ आदि रोगोंको जीतकर संसारमें परमयशको प्राप्त होता है ॥ २ ॥

हरितालोत्पत्तिः ।

संध्यायां नारसिंहेन हिरण्यकशिपुर्हतः ।
तच्छर्दितमभूत्तालस्तत्कक्षां लेखनाश्रितः ॥ ३ ॥

संध्याकालमें नरसिंह भगवान्‌ने हिरण्यकशिपुको नाश किया उसको जो कय हुई वह हरिताल होगया सो कि उसकी काँखमें रहती थी ॥ ३ ॥

हरितालभेदाः ।

हरितालं द्विधा प्रोक्तं पत्राख्यं पिंडसंज्ञितम् ।
तयोराद्यं गुणैः श्रेष्ठं ततो हीनगुणं परम् ॥ ४ ॥

पत्राख्य और पिंडसंज्ञक भेदोंसे हरिताल दो प्रकारका होता है, इनमेंसे पत्राख्य (तबाकिया) गुणोंमें श्रेष्ठ है और पिंडसंज्ञक गुणोंमें हीन है ॥ ४ ॥

तत्र मतान्तरम् ।

हरितालं चतुर्धोक्तं पिंडाख्यं पत्रसंज्ञिकम् ।
गोदन्तं वक्रदालं च क्रमाद्गुणकरं परम् ॥ ५ ॥

हरिताल चार प्रकारका होता है, पिंडाख्य, पत्रसंज्ञक, गोदंती और वक्रदाल इन चारोंमेंसे यथाक्रमसे एक दूसरेसे अधिक गुणकारी है ॥ ५ ॥

पिंडताललक्षणम् ।

निष्पत्रं पिण्डसदृशं स्वल्पसत्त्वं तथा लघु ।
स्त्रीपुष्पहारकं स्वल्पगुणं तत्पिण्डतालकम् ॥ ६ ॥

यह पिंडनामक हरिताल पत्रोंकरके रहित गोलेके तुल्य थोडे सत्ववाली, हलका स्त्रियोंके रजोधर्मको बन्द करनेवाला और अल्प गुणवाला है ॥ ६ ॥

पत्रताललक्षणम् ।

स्वर्णवर्णं गुरु स्निग्धं सपत्रं चाभ्रपत्रवत् ।
पत्राख्यतालकं विद्याद्गुणाढ्यं तद्रसायनम् ॥ ७ ॥

पत्रसंज्ञक हरिताल अभ्रकके तुल्य पत्तोंवाला रंगमें सुवर्णके समान भारी, चिकना और अनेक गुणोंसे युक्त रसायन है ॥ ७ ॥

गोदंतीहरिताल लक्षणम्।

दीर्घखंडमतिस्निग्धं गोदंताकृतिकं गुरु।
नीलरेखान्वितं मध्ये पीतं गोदंततालकम् ॥ ८ ॥

गोदन्त हरितालकी बनावट गौके दांतकी समान होती है यह लंबे लंबे टुकडोंवाला, अत्यंत स्निग्ध (चिकना) भारी और मध्यमें नील तथा पीत रंगकी रेखाओंसे युक्त होता है ॥ ८ ॥

वकदालीताललक्षणम्।

अतिस्निग्धं हिमप्रख्यं सपत्रं गुरुतायुतम्।
तत्तालं वकदालं स्यादिन्द्रकुष्ठहरं त्विदम् ॥ ९ ॥

वकदाल उस हरितालका नाम है कि, जिसके पत्ते हिम (बर्फ) के तुल्य सफेद हों और अतिचिक्कण तथा भारी हो इसके सेवनसे इन्द्रकुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

मारणे ग्राह्यं हरितालम्।

पिण्डतालं मृतौ त्याज्यं पत्रालं मृत्यवे हितम्।
गोदन्तं तु गलत्कुष्ठे श्वेते कुष्ठेऽन्तिमं विदुः ॥ १० ॥

मारणकर्ममें पत्र (तबकिया) हरिताल लेना चाहिये, पिंडनामक ताल नहीं लेना और गलत्कुष्ठमें गोदन्त तथा श्वेत कुष्ठमें वकदाल लेना हितकारी है ॥१०॥

हरितालगुणाः।

हरितालं कटु स्निग्धं कषायोष्णं हरेद्विषम्।
कंडूकुष्ठार्शरोगासृक्कफपित्तमरुद्व्रणान् ॥ ११ ॥

हरिताल स्वादमें कटु और कसैला है चिकना तथा गरम है, विषदोष, खुजली, कुष्ठरोग, बवासीर, रक्तविकार और वात, पित्त, कफसे उत्पन्न हुए दोष तथा फोडा ये सब शुद्ध हरितालके सेवनसे दूर होजाते हैं ॥ ११ ॥

अशुद्धहरितालदोषाः।

अशुद्धं तालमायुघ्नं कफमारुतमेहकृत्।
तापस्फोटांगसंकोचं कुरुतेऽतः प्रशोधयेत् ॥ १२ ॥

अशुद्ध हरितालके सेवनसे आयुका नाश, कफ और वायुसे उत्पन्न प्रमेह रोग, ज्वर, हडकल, अंगसंकोच इन रोगोंकी उत्पत्ति होती है, इस हेतु इसका शोधन अवश्य ही करना चाहिये ॥ १२ ॥

नामभेदकथनम् ।

हरितालीति विख्याता त्रिषु लोकेषु विश्रुता ।
शृणु तस्याः परं नाम हंसराज इति श्रुतम् ॥
तया संभक्षितस्तालः सुधारूपः प्रजायते ॥ १३ ॥

हरिताली यह तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है उसीका दूसरा नाम हंसराज भी है इसके साथ हरितालके सेवनसे चन्द्रमाके तुल्य सुन्दर रूप हो जाता है ॥ १३ ॥

हरितालशोधनविधिः ।

कूष्मांडत्रितये स्विन्नं तालं शुद्धयति नान्यथा ॥ १४ ॥

पहले एक कूष्मांडमें हरितालको पकावे जब वह कूष्मांड गलजावे तो दूसरेमें पकावे, वह भी जब गलजावे तब तीसरेमें इस प्रकार तीन कूष्मांडोंमें पकानेसे हरितालकी शुद्धि होजाती है। इसकी विधि यह है कि, हरितालको एक स्वच्छ कपडेमें बाँधकर पोटली बनालेवे तत्पश्चात् किसी कूष्मांड (पेठा--कूम्हडा) में चार या पांच अंगुलकी टाँकी लगाकर उसमें हरितालकी पोटलीको रखदेवे और उसी टांकीसे बंद करके एक खपरेमें नीचेके भागकी तरफसे रखकर नीचे चार पहरकी आँच देवे जिससे सब कुम्हडा गलजावे जब चार अंगुल कुम्हडा गलनेसे शेष रहजावे तब उस पोटलीको उससे अलग निकालकर दूसरे कुम्हडेमें पकावे, जब वह भी चार अंगुल बाकी रहजावे तब तीसरेमें पहलेकी तरह पकावे, तत्पश्चात् उस हरितालकी पोटलीको पेठेसे अलग निकालकर शुद्ध जलसे धोलेवे तो अत्युत्तम शुद्ध हरिताल सिद्ध होजाताहै ॥ १४ ॥

द्वितीय प्रकारः ।

तालकं कणशः कृत्वा बद्धा पोटलिकां ततः ।
दोलायन्त्रेण यामैकं सचूर्णे कांजिके पचेत् ॥ १५ ॥
यामैकं दोलया तद्वत्कूष्मांडकरसे ततः ।
तिलतैले पचेद्यामं यामं च त्रैफले जले ॥
दोलायन्त्रे चतुर्यामं पक्कं शुद्धयति तालकम् ॥ १६ ॥

अब हरितालके शुद्ध करनेकी दूसरी विधि कहते हैं। हरितालके छोटे २ टुकडोंको कपडेमें बांधकर पोटली बनालेवे उस पोटलीको दोलायन्त्रके द्वारा

कांजीमें एक प्रहर तक पकावे तदनन्तर कुम्हडेके रसमें एक प्रहर तक पकावे और फिर तिलके तेलमें एक प्रहर तथा त्रिफलाक काढेमें एक प्रहर पकावे, इस प्रकार चारों वस्तुओंमें चार प्रहर पर्यंत पकानेसे हरितालका उत्तम शोधन होजाता है ॥ १५ ॥ १६ ॥

तृतीयप्रकारः ।

स्विन्नं कूष्माण्डतोये वा तिलक्षारजलेऽपि वा ।
तोये वा चूर्णसंयुक्ते दोलायन्त्रेण शुद्ध्यति ॥ १७ ॥

अब हरिताल शुद्ध करनेकी तीसरी विधि कहते हैं । कुम्हडेके पानी या तिल अथवा क्षारणमें कही हुई औषधाके जल वा चूनेके जलसे यदि दोलायन्त्रके द्वारा हरिताल औटाया जावे तो शुद्ध होजाताहै ॥ १७ ॥

चतुर्थप्रकारः ।

शोधयेत्परया युक्त्या एतत्पत्रीकृतं शुभम् ।
वस्त्रेण पोटलीं बद्ध्वा कांजिके शोधयेत्र्यहम् ॥ १८ ॥
कूष्मांडरसमध्ये तु त्र्यहं दुग्धेन शोधयेत् ।
वटदुग्धे त्र्यह शोध्यं तालकं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ १९ ॥

अब हरितालक शोधनेकी चौथी विधिको कहते हैं । पहले हरितालके छोटे २ पत्र बनाकर वस्त्रमें बांधकर पोटली बनालेवे फिर कुम्हडेका रस, दूध और वटवृक्षके दूधमें तीन २ दिन पकानेस शुद्ध होजाता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

पञ्चमप्रकारः ।

तालकं कणशः कृत्वा दशांशेन च टंकणम् ।
जंबीरोत्थद्रवैः क्षाल्यं कांजिकैः क्षालयेत्पुनः ॥
स्वेद्यं वा शाल्मलीतोयैस्तालकं शुद्धिमाप्नुयात् ॥ २० ॥

हरितालके छोटे २ टुकडे बनाकर और उसमें हरितालका दशवाँ भाग सुहागा मिलाकर पहले जंबीरी नीम्बूके रसमें पुनः कांजीमें औटावे तत्पश्चात् सेमलके रसम आटौनस हरिताल शुद्ध होजाता है ॥ २० ॥

संशुद्धतालगुणाः ।

शोधितं हरिताल तु कान्तिवीर्यविवर्द्धनम् ।
कुष्ठादिपापरोगघ्नं जरामृत्युहरं परम् ॥ २१ ॥

अच्छे प्रकार शुद्ध किया हुआ हरिताल शरीरमें कान्ति और बलका बढानेवाला और पापसे उत्पन्न कुष्ठादिरोगोंको नाश करनेवाला है, तथा वृद्धावस्था और मृत्युको दूर करता है ॥ २१ ॥

हरितालमारणाविधिः ।

पत्राख्यं तालकं शुद्धं पौनर्नवरसेन तु ।
खल्वे विमर्दयेदेकं दिनं पश्चाद्विशोधयेत् ॥ २२ ॥
संशोष्य गोलकं कृत्वा चक्राकारमथापि वा ।
ततः पुनर्नवाक्षारैः स्थाल्यामर्द्धं प्रपूरयेत् ॥ २३ ॥
तत्र तद्गोलकं धृत्वा पुनस्तेनैव पूरयेत् ।
आकण्ठं पिठरं तस्य पिधाय रोधयेन्मुखम् ॥ २४ ॥
स्थालीं चुल्ल्यां समारोप्य क्रमाद्वह्निं विवर्द्धयेत् ।
एवं तु म्रियते तालं मात्रा तस्यैव रक्तिका ॥
अनुपानान्यनेकानि यथायोग्यं प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥

अब हरितालके मारणकी विधि कहते हैं । पहिले कही हुई विधिके अनुसार शुद्ध किये हुए पत्र अर्थात् तबकिया हरितालको पुनर्नवा (पथरचटा-साँठ) के रसमें एक दिनभर खरलमें घोटे तत्पश्चात् उसको सुखाकर गोला वा टिकिया बनालेवे पुनः साँठके खारसे आधी हँडीया भरकर उन टिकियोंको उसी हाँडीमें रखदेवे ऊपरसे उसी खारको हांडियामें पूर्ण भरदेवे पुनः हंडीके मुखमें कपरमिट्टी करके चूल्हे पर चढा देवे और क्रमसे मंद, मध्यम, तेज आँच देवे तो हरितालकी सफेद भस्म सिद्ध होजाती है । इसके सेवन करनेकी मात्रा एक रत्ती है, वैद्यको उचित है कि, इसको उचित अनुपानके साथ यथायोग्य रोगोंमें देवे ॥ २२-२५॥

द्वितीयप्रकारः ।

स्वर्णपत्रं शुद्धतालं पलानां दशसंज्ञकम् ।
कौमारीद्रवप्रस्थेन मर्दयेत्तालकं शुभम् ॥ २६ ॥
निंबुप्रस्थरसे चैव बाणपुंखरसैः पुनः ।
प्रस्थं वज्रीरसेनैवमर्कस्य च रसैः पृथक् ॥ २७ ॥
मर्दयेच्च दृढं खल्वे यावद्भवति गोलकम् ।
गोलकं शोषयेत्पश्चाद्धर्मे सप्त दिनानि वै ॥ २८ ॥

पलाशभस्ममृद्भाण्डे क्षिप्त्वोपरि च गोलकम् ।
दत्त्वोपरिपुनर्भस्म भाण्डवक्त्रं निरुंधयेत् ॥ २९ ॥
चुल्ल्यामारोपयेद्यत्नात्तावकं ज्वालयेत्क्रमात् ।
मन्दमध्यदृढाग्नीनां यामानां च द्विषष्टिकम् ॥ ३० ॥
स्वांगशीतलमादाय शुभ्रं तालं मृतं ध्रुवम् ।
तंदुलं तंदुलार्द्धं वा नागवल्लीदलैर्भजेत् ॥ ३१ ॥
अष्टादशापि कुष्ठानि ज्वरमष्टविधं हरेत् ।
पथ्यं मकुष्ठं चणकं लवणस्नेहवर्जितम् ॥ ३२ ॥

अब हरितालके मारणका दूसरा प्रकार कहते हैं। सुवर्णके समान रंगवाले शुद्ध किये हुए तबकिया हरितालको दश पल लेकर १ प्रस्थ (६४ तोले) घीकुवारके रसमें घोटे तत्पश्चात् १ एक प्रस्थ नींबूके रसमें घोटे इसी प्रकार १ एक प्रस्थ बाणपुंख अर्थात् सरफोंकाके रसमें १ एक प्रस्थ थूहरके दूध और १ एक प्रस्थ आकके दूधमें घोटे जब घोटते २ गोला बननेके योग्य होजावे तब उसका गोला बनाकर ७ सात दिन पर्यन्त धूपमें सुखालेवे फिर मिट्टीके एक बडे बरतनमें ढाककी भस्मको भरकर उस भस्मके ऊपर गोलाको रखदेवे और फिर भी उस गोलेके ऊपर इतनी भस्म भरे कि जिससे वह मिट्टीका पात्र पूर्ण भरजावे, पीछे पात्रके मुखको बंद करके चूल्हेके ऊपर चढाकार ६२ प्रहर तक मंद, मध्य और तेज आँच देकर पकावे जब बासठ प्रहर व्यतीत हो जावे तब उतारलेवे और अपने आप ठंढा होनेपर पात्रसे गोलेको निकाललेना इस प्रकार शुद्ध भस्म तयार होजाती है। इसको एक चावल या आधा चावल प्रमाण नागरपानके साथ खानेसे बडे भयंकर रोग तथा अठारह प्रकारके कुष्ठ-रोग, आठ प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं इसके ऊपर मोथी-मोठ चना पथ्य है, और तेल, गुड नमक यह पथ्य नहीं है ॥ २६-३२ ॥

तृतीयप्रकारः ।

तालं विचूर्णयेत्सूक्ष्मं मर्द्यं नागार्जुनीद्रवैः ।
सहदेव्या च बलया मर्दयेद्दिवसद्वयम् ॥ ३३ ॥
तत्तालरोटकं कृत्वा छायायां च विशोषयेत् ।
हंडिकायन्त्रमध्यस्थं पलाशभस्मकोपरि ॥ ३४ ॥

पाच्यं च वालुकायन्त्रे विहितं चंडवह्निना ।
स्वांगशीतं समुद्धृत्य सर्वरोगेषु योजयेत् ॥ ३५ ॥

अब हरितालके मारणकी तीसरी रीति कहते हैं। पहले हरितालको खूब बारीक पीस लेवे तत्पश्चात् नागार्जुनी (दुद्धी) सहदेई और बला (खरैटी) इन तीनोंके रसमें दो दिन पर्यन्त घोटकर रोटीकी तरह बनावे और उसे छायामें सुखालेवे पुनः एक नये मिट्टीके पात्रमें ढाककी भस्म भरकर उसीके ऊपर उस रोटीको रखदेवे और ऊपरसे भस्म भरकर पहलेकी तरह उस हंडीका मुख बंद करके वालुकायन्त्रमें तेज आँचसे पकावे जब अपने आप शीतल होजावे तब हरितालकी रोटीको निकाल लेवे और सब रोगोंमें देवे ॥ ३३-३५ ॥

चतुर्थप्रकारः ।

पलमेकं शुद्धतालं कुमारीरसमर्दितम् ।
शरावसंपुटे क्षिप्त्वा यामान् द्वादश संपचेत् ॥ ३६ ॥
स्वांगशीतं समादाय तालकं च मृतं भवेत् ।
गलत्कुष्ठं हरेच्चैव तालकं च न संशयः ॥ ३७ ॥

अब हरितालके मारणकी चौथी रीति कहते हैं । घीकुवारके रसमें एक पल शुद्ध हरितालको खूब खरल कर उसकी टिकिया बना लेवे फिर उनको दो शरावों (परई) कें बीचमें रखकर १२ बारह प्रहर तक पकावे पीछे स्वयं शीतल होजानेपर शरावसंपुटसे निकाललेवे तो उत्तम भस्म सिद्ध होजाती है इसकें सेवनसे गलत्कुष्ठ रोग नष्ट होता है॥ ३६ ॥ ३७ ॥

पंचमप्रकारः ।

वंदालीतालमादाय निर्मलं खल्वमध्यगम् ।
दिनसप्तकपर्य्यन्तं कुमारीद्रवमर्दितम् ॥ ३८ ॥
काचकुप्यां विनिःक्षिप्य मुखमुद्घाटयेत्ततः ।
विरच्य वालुकायंत्रं वह्निं दद्याच्छनैः शनैः ॥ ३९ ॥
ततो धूमोऽस्य नीलाभः पीतवर्णस्तु सर्वथा ।
मुखमार्गे ततः प्राज्ञो न्यसेल्लोहशलाकिकाम् ॥ ४० ॥
तस्य तालस्य मध्ये सा भ्राम्यते च क्षणंक्षणम् ।
आकृष्य नीयते सान्द्रा सा शलाका विलोक्यते ॥ ४१ ॥

नीलं पीतं यदा किंचित्स्वेदरूपं जलं भवेत् ।
दिनैकमपरं स्वेद्यं दद्याद्वापि दिनद्वयम् ॥ ४२ ॥
जलरूपो यदा स्वेदो दृश्यते तालकस्य वै ।
शीतलं क्रियते तत्र स्वांगशीतं यथा भवेत् ॥ ४३ ॥
खर्जूरखोटिकाकारं तालसत्त्वं महोज्ज्वलम् ।
गुरुरूपं दृढं प्राप्य करस्पर्शे च सौख्यदम् ॥ ४४ ॥

अब हरितालके मारणका पाँचवां प्रकार कहते हैं । पहले कही हुई रीतिसे शुद्ध किये हुए वकदाली हरितालको सात दिन पर्यंत घीकुवारके रसमें खरल करे, और उसको सुखाकर एक आतशी शीशीमें भरदेवे शीशीका मुख खुला ही रक्खे पुनः वालुकायंत्रमें मंद २ आँचसे पकावे जब शीशीसे नीले वा पीले रंगका धूम निकलने लगे तब बुद्धिमान् वैद्य एक साफ लोहेकी सलाई लेकर शीशीमें छोड सब ओर घुमाय बाहर निकाल लेवे यदि सलाई गीली, नीली वा पीली तथा कुछ सफेदी लिये हुए रंगसे युक्त हो तो एक या दो दिन और स्वेदन करना चाहिये। विशेषता यह है कि, नीला पीला धुवाँ निकलनेके बाद बार बार लोहशलाकासे परीक्षा करतारहे जब हरितालका स्वेद, निर्मल जलके समान स्वच्छ हो जाय तब ठण्डा करके उतार लेवे यह तालका सत्त्व छुहारेके गुठलीके तुल्य उज्ज्वल होता है यह भारी तथा दृढ और हाथसे स्पर्श करनेमें सुखका देनेवाला है ॥ ३८–४४ ॥

तत्सेवनगुणाः तद्विधिश्च ।

टंकमात्रं विचूर्ण्याथ प्रदद्यात्कुष्ठिने खलु ।
शुद्धोऽधो जायतेऽत्यर्थमत्यर्थं सुभगं वपुः ॥ ४५ ॥
अत्यर्थं पच्यते भुक्तमत्यर्थं सुखमाप्नुयात् ।
अरुणौदुंबरं कुष्ठमृक्षजिह्वं कपालकम् ॥ ४६ ॥
काकणं पुंडरीकं च दद्रुकुष्ठं सुदुस्तरम् ।
तथा चर्मदलं हन्याद्विसर्पं चापि कर्कशम् ॥ ४७ ॥
सिध्मं विचर्चिकां पामां श्वेतकुष्ठं च नाशयेत् ।
गरं दूषीविषं हन्यान्मासमात्रोपसेवनात् ॥ ४८ ॥

अब पूर्वोक्त मारण किये हुए हरितालके सेवनकी विधि और गुणोंको कहते हैं। उक्त रीतिसे मारण किये हुए बकदाली हरितालको एक टंक अर्थात् चार मासे

बारीक पीसकर कुष्ठरोगीके लिये देवे तो उसे बहुत भूँख लगे और उसका शरीर सुन्दर दर्शनीय हो। इसके सेवनसे क्षुधाकी वृद्धि और सुखकी प्राप्ति होती है। यदि एक मास पर्यन्त विधिपूर्वक इसका सेवन किया जाय तो अरुण, उदुंबर, ऋक्षजिह्व, कपाल, काकण, पुंडरीक, दद्रु, चर्मदल, कर्कश, विसर्प, सिध्म, विचर्चिका, पामा (खाज) सफेद कुष्ठ इन सब कुष्ठों तथा विष और दूषीविषको नाश करता है। मात्रा इसकी ४ मासे हैं इससे अधिक खानेसे हानि करेगा ॥ ४९-४८ ॥

षष्ठप्रकारः ।

सूक्ष्मं विचूर्ण शुचितालकस्य संभावयेद्विंशतिवासरांश्च ।
अश्वत्थतोयैः शुचिखल्वमध्ये घृष्ट्वा विदध्याद्दृढगोलकं च ॥ ४९ ॥
अश्वत्थभूत्यार्धभृते च भांडे न्यसेत्ततो गोलकमेव मन्दम् ।
संपूर्णभूत्या परिपूर्य पात्रं निरुध्य मुंचेच्च गजाह्वये च ॥ ५० ॥
सहस्रवन्योपलसंयुते वै मृतिं व्रजेद्यामचतुष्टयेन ।
निर्धूममेतद्यदि लोहतप्तं मुञ्चेत्सुशुद्धं शुभशुक्लवर्णम् ॥ ५१ ॥

अब मारणका छठा प्रकार कहते हैं। पहले कही हुई रीतिसे शुद्ध किये हुए हरितालको बारीक पीसकर स्वच्छ खरलमें पीपलके रसके साथ बीश दिन तक घोटे तत्पश्चात् गोला बनाकर सुखालेवे फिर किसी बडी हंडीके आधे भागमें पीपलवृक्षकी राख भरदेवे और उस राखके ऊपर गोलेको रखकर फिर भी पीपरकी राखसों हंडीके मुखतक पूर्ण भरदेवे तदनन्तर परईसे मुख बन्दकर सात कपरमिट्टी करे और गजपुटमें हजार आरने उपलोंसे चार प्रहरतक आंच देनेसे हरितालका मारण होजाता है। इस शुद्ध हरितालको गरम लोहेके ऊपर छोडे यदि धुआँ न दे और रंग सफेद हो तो उत्तम शुद्ध हुआ जाने ॥४९-५१॥

सप्तमप्रकारः ।

एको विभागः शुचितालकस्य भागद्वयं सुन्दरधूमकस्य ।
अन्तर्विभूतिं शुभतालचूर्णं क्षिपेत्तदूर्ध्वं बहुधूमसारम् ॥
प्रपूरयेद्भूतिकयाथ भांडं शरावकेणैव ततो निरुंध्यात् ॥ ५२ ॥
विमुच्य चुल्ल्यां च हिरण्यरेतसं दहेत्तु वै यामचतुष्टयं च ।
एतैः प्रकारैर्मृतिमेति तालं निर्धूममेवं किल शुक्लवर्णम् ॥ ५३ ॥

अब मारणका सातवां प्रकार कहते हैं। एक हिस्सा शुद्ध हारताल और दो हिस्सा धूमसा मिलाकर एक मिट्टीके बडे पात्रमें पीपल वा इमलीकी राख आधे

भागतक भरकर उसीके ऊपर रक्खे और ऊपरसे धूमसार रखकर राखसे पूरा पात्र भरदेवे फिर एक परईसे पात्रका मुख बन्द करके कपरमिट्टी करे तत्पश्चात् चूल्हेपर चढाय चार प्रहरकी आँच देनेसे धूमसे रहित सफेद रंगकी भस्म सिद्ध हो जाती है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

अष्टमप्रकारः।

शुद्धं तालं चूर्णयित्वा कन्याकूष्मांडजैर्द्रवैः।
दध्ना त्रिभावितं शुष्कं गोलं कृत्वा निधापयेत् ॥ ५४ ॥
हंडिकायां पटुक्षारैः पूर्णयेच्च षडंगुलम्।
क्षारेणाच्छाद्य च पुनर्लोहपात्रे निधापयेत् ॥ ५५ ॥
पुनः क्षारं तु चाकंठं पूरयित्वा क्रमाग्निना।
द्वात्रिंशत्प्रहरान् पाच्यं भस्म स्याच्चूर्णसन्निभम् ॥
ससितं तंदुलोन्मानं वातरक्तज्वरप्रणुत् ॥ ५६ ॥

अब मारणका आठवाँ प्रकार कहते हैं। शुद्ध किये हुए हरितालको बारीक पीसकर घीकुवार और कुम्हडेके रसमें खरल करके दहीकी तीन भावना देकर गोला बना 'धूपमें सुखालेवे तत्पश्चात् एक स्वच्छ हंडीमें छः अंगुल ऊँचा नोन और खार' बिछाकर गोलेको रखदेवे और फिर गोलेको ऊपरसे खार भरकर हंडीके मुखको पूर्वकी तरह बन्द करके चूल्हेपर चढाय बत्तीस प्रहर तक क्रमसे मंद, मध्य और तेज आंच देवे तो कलीचूनेके समान सफेद भस्म सिद्ध होजाती है इसको शक्करके साथ एक चावलकी बराबर नित्य सेवन करे तो वातरक्तज्वर नष्ट होजाता है ॥ ५४-५६ ॥

नवमप्रकारः।

जंबीरद्रवमध्ये तु प्रक्षाल्य नटमंडनम्।
दशांशं टंकणं दत्त्वा खंडशः परिमेलयेत् ॥ ५७ ॥
चतुर्गुणे गाढपटे निबध्य प्रहरद्वयम्।
दोलायन्त्रेण सुस्वेद्य प्रदीपप्रमितेऽनले ॥ ५८ ॥
चूर्णतोये कांजिके च कूष्मांडे निंबतैलके।
त्रिफलाम्बुनि तत्पश्चात्क्षालयित्वाम्लवारिणा ॥ ५९ ॥

ततः पलाशमूलत्वक्परिपिष्टं प्रशोषयेत् ।
महिषीमूत्रसंपिष्टं पुनस्तत्परिशोषयेत् ॥ ६० ॥
तद्गोलकं शरावाभ्यां संपुटीकृत्य यत्नतः ।
खाते गजपुटे कृत्वा स्वांगशीतं समुद्धरेत् ॥ ६१ ॥
अजादुग्धैः पुनः पिष्ट्वा शोषयेद्गोलकीकृतम् ।
आकंठं भस्म पालाशं हंडिकायां विनिःक्षिपेत् ॥ ६२ ॥
सम्यक् चर्णस्य कुडवं दत्त्वा तत्र विचक्षणः ।
स्थापयेद्गोलकं तत्र पुनश्चूर्णस्य भस्म च ॥ ६३ ॥
यथा धूमो न निर्याति तथा तां च विमुद्रयेत् ।
द्वात्रिंशत्प्रहराग्निं च चुल्ल्यां भक्तवदर्पयेत् ॥ ६४ ॥
स्वांगशीतं समुद्धृत्य सचूर्णं नटमंडनम् ।
हिमकुन्देन्दुसंकाशं निर्धूमं कृष्णवर्त्मना ॥ ६५ ॥

अब मारणका नवम प्रकार कहते हैं । जंबीरी नींबूके रससे हरिताल या मनसिलको धोवे तदनन्तर हरितालके छोटे २ टुकडे करे और उनमें हरितालका दशवाँ हिस्सा सुहागा मिलाकर एक स्वच्छ चार तहके वस्त्रमें बाँध दोलायन्त्रके द्वारा कलीचूनेके पानी कांजी, पेठेके रस, नींबके तेल और त्रिफलाके काढेमें मध्यम आँचसे अलग २ दो दो प्रहर औटाकर नींबूके रससे प्रक्षालन करे और फिर ढाककी जडकी छालके रसमें घोटकर सुखा लेवे फिर भैंसके मूत्रमें खरल करके गोला बना सुखावे तत्पश्चात् उस गोलेको शरावसंपुट अर्थात् दो परइयोंके बीचमें रख कपरमिट्टीसे बंद कर गजपुटमें पकावे जब अपने आप ठंढा होजावे तब उसे निकाल बकरीके दुग्धमें खरल करके गोला बना सुखालेवे तत्पश्चात् एक बडे मिट्टीके पात्रमें आधे भाग तक ढाककी राख भरदेवे और राखके ऊपर गोलेको रख ऊपरसे पात्रके मुखपर्यन्त राख भरकर परईसे हंडीका मुख ढाँककर गुड और चूनेसे सन्धियोंको भी बंद करे । अथवा ढाककी राख और चूना इन दोनोंके मध्यमें उस गोलेको रखकर पात्रका मुख इस प्रकार बंद करे कि जिससे उसका धूम बाहर न निकले तत्पश्चात् सावधानीसे चूल्हेपर चढाय कर बत्तीस प्रहर पर्यन्त आँच देवे और जहांसे धुआँ निकलता हुआ दीखपडे वहीं ढाककी भस्म और चूना मिलाकर उसकी संधि बंद करे फिर स्वयं शीतल होजानेपर हरितालको

निकाल लेवे । यह भस्म हिम, चन्द्रमा और कुन्दके पुष्पके समान सफेद तथा निर्धूम होती है ॥ ५७-६५ ॥

तत्सेवनगुणविधिश्च ।

रक्तिकास्य प्रदातव्या पुराणगुडयोगतः ।
पथ्यं च चणकस्योक्तं रोटिका षष्टिकोदनम् ॥ ६६ ॥
निर्लोणकं च निष्पन्नं खादेच्चैवैकविंशतिम् ।
दिनानि निर्वातगतः सर्वव्यापारवर्जितः ॥ ६७ ॥
गलत्कुष्ठं पुंडरीकं श्वित्रं कापालिकं तथा ।
औदुंबर रक्तजिह्वं काकणं स्फोटमेव च ॥ ६८ ॥
वातं तु पाण्डुरोगं च दद्रुं पामां विचर्चिकाम् ।
विसर्पमर्द्धशीर्षं च विपादिं च भगंदरम् ॥ ६९ ॥
सर्वं यथाक्रमं हन्ति सेवितं हरितालकम् ।
अन्यानपि व्रणान्सर्वानंधकारमिवांशुमान् ॥ ७० ॥

अब पूर्व मारण किये हुए हरितालके सेवनकी विधि और गुणोंको कहते हैं । इस सिद्ध किये हुए हरितालको पुराने गुडके साथ तथा एक रत्ती प्रमाण खाय । इसमें चनाकी रोटी तथा साठीके चावल पथ्य हैं, पर वे नमकसे रहित हों क्योंकि इसमें नमक अपथ्य है । यदि रोगी सब कार्योंको त्यागकर जहाँ वायु न हो ऐसे स्थानमें इक्कीस दिन पर्यन्त इसका सेवन करे और पथ्यसे रहे तो गलत्कुष्ठ, पुंडरीक, श्वेतकुष्ठ, कापालिक, औदुम्बर, रक्तजिह्व, काकण, स्फोट, वातरोग, पांडुरोग, दद्रु, पामा, विचर्चिका, विसर्प, अर्द्धशीर्ष, विपादिका, भगंदर आदि रोग तथा अन्य सब प्रकारके व्रण नष्ट होजाते हैं जैसे सूर्यसे अन्धकार छिन्नभिन्न होकर नष्ट होता है ऐसे ही इस औषधको विधिपूर्वक सेवन करनेसे अनेक रोग दूर होजाते हैं ॥ ६६-७० ॥

दशमप्रकारः ।

एतच्च तालकं शुद्धं कर्षैकं मृतलोहकम् ।
किंचिद्धेम तथा रूप्यं सर्वमेकत्र रोधयेत् ॥ ७१ ॥
काचकूप्यां मृदा लिप्त्वा सप्तवारान्मुहुर्मुहुः ।
तालकं काचकूप्यांतः प्रदद्याच्च प्रयत्नतः ॥ ७२ ॥

वज्रमुद्रां मुखे कृत्वा किंवा मधुरवह्निना ।
संस्थाप्य वालुकायन्त्रे पचेद्यामचतुष्टयम् ॥ ७३ ॥
स्वांगशीतलमुद्धृत्य पूजयेच्चेष्टदैवतम् ।
खल्वे विचूर्णयेत्पूतं रसभांडे निधापयेत् ॥ ७४ ॥

अब मारणका दशवाँ प्रकार कहते हैं । शुद्ध किया हुआ हरिताल और मारण किया हुआ लोहा दोनों एक २ तोला लेवे तथा थोडा सोना और थोडी चाँदी लेकर सबको एकमें मिलाकर काचकी शीशीमें भरकर सात कपरमिट्टी करे और शीशीके मुखपर वज्रमुद्रा करके बालुकायंत्रमें रखकर मधुर आंचसे चार प्रहर पर्यन्त पकावे जब स्वयं शीतल होजावे तब हरितालको निकाल लेवे और अपने इष्टदेव परमात्माका पूजन करे तत्पश्चात् हरितालको खरलमें डालकर घोटे जब खूब बारीक होजावे तब उत्तम शीशीमें रखदेवे ॥ ७१--७४ ॥

एकादशप्रकारः तत्रादौ शोधनम् ।

विमलपत्रकतालसुखंडशः कृततदोत्तरवस्त्रविवेष्टयेत् ।
घृतमथोत्तरपात्रघटोदरे जलरसे स्थिरदोलकया शुभैः ॥ ७५ ॥
प्रहरयुग्मकृशानुक्रमादिभिः स्वतनुशीतलस्वेद्य पुनस्ततः ।
महिषिमूत्रक्रमेण कुमारिकासघनचूर्णरसे शरपुंखिका ॥ ७६ ॥
सजलनिंबुसुपक्करसे पुनः सुहृढकोकिलपक्करसे ततः ।
इदमिहाहृतस्वेद्य प्रयत्नतो भवति शुद्धमिदं नटमंडनम् ॥ ७७ ॥

अब पहले हरितालके शोधनकी विधि लिखकर पीछे मारण लिखेंगे तबकिया हरितालके पत्रोंको लेकर छोटे २ टुकडे करके किसी स्वच्छ वस्त्रमें रखकर पोटली बनालेवे और उस पोटलीको नेत्रवालाके रसमें दोलायन्त्रके द्वारा दो प्रहरकी मंद, मध्य, तेज आँचसे पकावे फिर स्वांगशीतल होनेपर हरितालको निकालकर भैंसके मूत्र, घीकुवारके रस, नागरमोथाके काढे, शरफोंकाके रस और नींबूके रसमें अलग २ दोलायन्त्रके द्वारा औटावे तो हरिताल शुद्ध होजाताहै ॥७५--७७ ॥

अथ मारणविधिः ।

कूष्मांडतोयेन दिनं विमर्द्य निंबूरसे गोभिरसे तथैव ।
सनाकछिक्कादिकुलत्थतोयैर्धत्तूरजे चार्द्रकभृंगराजम् ॥ ७८ ॥

नागार्जुनी वा सह देविका च सब्रह्मदंडीद्रवकिंशुकानाम् ।
एरंडमूलं लशुनं पलांडुसुवर्णवल्लीरसकाकमाची ॥ ७९ ॥
गोपालिकां वज्रिपयोर्कदुग्धं खल्वे विमर्द्यं दिनमेकविंशत् ।
पृथक्पृथङ्मासचतुर्दशान्ते चक्राकृतिं वर्तुलरोटिकाभम् ॥ ८० ॥
अश्वत्थभूत्या मृदुहंडिकायामधोर्ध्वमध्यास्थितताल्कं च ।
सुपूर्णपात्रं दृढभस्मसंस्थं मुखे शरावं मृतकर्पटं च ॥ ८१ ॥
दद्याच्च चुल्ल्यां परिरक्षणीयमग्निं क्रमेणापि दिनानि चाष्टौ ।
शिवस्य पूजां द्विजभोजनं च निष्कासयेच्छुभ्ररुचिं हि तालम् ॥ ८२ ॥
कुन्देन्दुशंखस्फटिकावभासं तालं भवेद्वामृततुल्यसिद्धम् ।
सुवर्णरौप्यादिकरंडमध्ये रक्षेत्ततो तालकभस्म युक्त्या ॥ ८३ ॥

अब शुद्ध किये हुए हरितालके मारणकी ग्यारहवीं विधि कहते हैं । पहले हरितालको एक दिन पेठेके रसमें खरल करे तत्पश्चात् नींबू, गोभी, नकछिकनी, कुलथी, धतूरा, अदरख, भाँगरा, दुद्धी, सहदेई, ब्रह्मदंडी, ढाक, अरंडकी जड, लहसन, प्याज, मालकांगनी, काकमाची, कचरिया, थूहर, आक, इन सबके रस और दूधमें अलग २ इक्कीस दिन घोटे इस रीतिसे चौदह मास व्यतीत होनेके पश्चात् उस हरितालकी चक्रके समान गोल और चिपटी रोटी बनावे तत्पश्चात् मिट्टीके किसी बडे पात्रमें पीपल वृक्षकी राख आधे भाग तक भरकर उस रोटीको राखके ऊपर रखदेवे और ऊपरसे फिर भी पीपलकी राखसे पात्रको पूर्ण भरकर परईसे बंद करके कपरमिट्टी करे और चूल्हेपर चढाय आठ दिन पर्यन्त मंद, मध्य और तेज आँचसे पकावे । नवें दिन श्रीशिवजीका पूजन करके ब्राह्मणोंको उत्तम भोजन करावे और सावधानीके साथ कान्तियुक्त श्वेतरंगवाले उस हरितालको पात्रसे बाहर निकाले । इस हरितालकी प्रभा कुन्दपुष्प, चन्द्रमा, शंख और स्फटिकके तुल्य होती है । और सेवन करनेसे अमृतके समान लाभ देनेवाला है इस सुवर्ण या चाँदीके किसी उत्तम पात्रमें बडे प्रयतनसे रक्खे ॥ ७८–८३ ॥

तद्गुणाः ।

मात्रा ततस्तंदुलकप्रमाणा रोगानुसारैरनुपानकं च ।
द्विकालपथ्यं लवणामृतीक्ष्णं वर्ज्यं ततो वातलतैलपक्वम् ॥ ८४ ॥
त्रिः सप्तवारं ह्यथ मंडलं वा गुणैर्भृतं तालकधूम्रहीनम् ।
कुष्ठानि चाष्टादश वातरक्तं ससान्निपातं च भगंदराणि ॥ ८५ ॥

अपस्मृतिं वातव्रणांश्च सर्वान् फिरंगरोगादिकश्लीपदानि ।
सर्वोपदंशप्रभृतींश्च शाफान् सूतेर्गदाञ्श्वासमनेकवातम् ॥ ८६ ॥
कासादिदोषानपि पीनसानामर्शांस्यथोग्रं ग्रहणीविकारम् ।
मेदोऽर्बुदं गृध्रसिगंडमाले कट्यामवातादिकमग्निमान्द्यम् ॥ ८७ ॥
मूत्रादिकृच्छ्रादिकमेहजालं शोषं च सर्वं क्षयराजरोगम् ।
सर्वान्कफाँश्चापि च पित्तरोगं वातं तथा व्याधिज्वरादिकाँश्च ॥ ८८ ॥
स बालसूर्यो ह्यमन्धकारं यथा तथा सेविततालभस्म ।
सुवर्णवत्कान्तिमुपैति कामं रामाशतैः संविलसेन्मनुष्यः ॥ ८९ ॥

अब पूर्व मारण किये हुए हरितालके सेवन करनेकी विधि और गुणोंको कहते हैं । जिस रोगमें अनुपान लिखा है उस रोगमें उसी अनुपानके साथ पूर्वोक्त हरितालको एक चावल प्रमाण मात्रासे प्रातःकाल और सायंकाल विधिपूर्वक सेवन करे और नमकीन, खट्टा, चर्परा, बादी तथा तेलमें पके हुए पदार्थोंको न खावे, क्योंकि यह सब इसमें अपथ्य हैं । धुआँसे रहित श्वेत रंगवाले इस हरितालको इक्कीस वा चालीस दिन पर्यन्त सेवन करे तो अष्टादश प्रकारके कुष्ठरोग, वातरक्त, सन्निपात, भगंदर, अपस्मृति (स्मरण न रहना), मृगी, सम्पूर्ण वातज व्रणरोग, फिरंगरोग, श्लीपद, सब प्रकारके उपदंशरोग, सूजन, प्रसूतिके रोग, श्वास, वादीके सब रोग, खाँसी, पीनस, बवासिर, संग्रहणीके विकार, मेदरोग, अर्बुदरोग, गृध्रसी, गंडमाला, कटि (कमर) के रोग, आमवात, मन्दाग्नि, मूत्रकृच्छ्र, सब प्रकारके प्रमेह, शोषरोग, राजयक्ष्मा (क्षयी), कफसे उत्पन्न सब प्रकारके रोग, वातरोग, पित्तरोग तथा ज्वरसे उत्पन्न अनेक प्रकारकी व्याधियाँ सूर्यके उदय होतेही अन्धकारकी तरह नाशको प्राप्त होती है । अर्थात् इस हरितालकी भस्मके सेवनसे सब प्रकारके रोग नष्ट होकर शरीरमें सुवर्णकी समान कान्ति और सैकडों स्त्रियोंके साथ भोग विलास करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है ॥ ८४-८९ ॥

त्रयोदशप्रकारः ।

शुद्धं तालं समादाय द्रोणपुष्पीरसैर्भिषक् ।
दिनानि सप्त संमर्द्य यन्त्रे विद्याधरे क्षिपेत् ॥ ९० ॥
यामानष्टौ पचेदग्नौ स्वांगशीतलमुद्धरेत् ।
ऊर्ध्वपात्रगतं सत्त्वं गृहीत्वा मर्दयेत्पुनः ॥ ९१ ॥

त्रिदिनं तद्रसैरेव ततो यन्त्रे पुनः पचेत् ।
तदधो ज्वालयेदग्निमष्टयाममतन्द्रितः ॥ ९२ ॥
एवं पुनः पुनः कुर्याद्यावत्सत्त्वं स्थिरं भवेत् ।
स्थैर्यं सत्त्वस्य नियतं जायते सप्तमेऽहनि ॥ ९३ ॥
अष्टमेऽर्कस्य दुग्धेन मर्दयेदेकवासरम् ।
यामानष्टौ पचेदग्नौ कुर्यादेवं त्रिवारकम् ॥ ९४ ॥
गलत्कुष्ठं तथा शोथं वातरक्तसमुद्भवम् ।
वातरक्तेषु सर्वेषु योज्यं गुंजाद्वयोन्मितम् ॥ ९५ ॥
चोबचीनीभवं चूर्णं गृहीत्वा टंकमात्रकम् ।
गुंजामात्रेण तालेन मिश्रितं मधुना भवेत् ॥ ९६ ॥
तस्य नश्यति मूलेन फिरंगाख्यो महागदः ।
व्रणाः शुष्यन्ति सर्वे वै फिरंगोत्था न संशयः ।
शीघ्रं श्लेष्मामयं हन्यादनलं च विवर्द्धयेत् ॥ ९७ ॥

अब शुद्ध हरितालके मारणकी तेरहवीं विधि कहते हैं शुद्ध हरितालको लेकर द्रोणपुष्पी (गूमा, गोमा) के रसमें सात दिन पर्यन्त खरल करे गाढा होनेपर छोटी २ पतली टिकिया बनाकर सुखालेवे और उनको आठ प्रहर तक डमरूयंत्रमें पकावे । जब स्वांगशीतल होजावे तब ऊपरके पात्रमें जो सत्त्व लगा हुआ हो उसको छुरीसे खुरच ले और फिर उस सत्त्वको गोमाके रसमें तीन दिन तक घोटकर धूपमें सुखालेवे तत्पश्चात् डमरूयंत्रमें पहिलकी तरह आठ प्रहरकी आँच देवे स्वांगशीतल होनेपर ऊपरके पात्रमें उडकर लगे हुए हरितालको निकाल लेवे "गोमाके रसमें घोटना, टिकिया बनाकर सुखाना, डमरूयंत्रमें आठ प्रहरकी आंच देना, उडेहुए हरितालको खुरचना" यह एक बारकी क्रिया है इसी प्रकार जब तक सत्त्व स्थिर न होजावे तब तक बारबार करता रहे । सत्त्वकी स्थिरता सातवें दिन अवश्य होजाती है इसमें सन्देह नहीं सारांश यह है कि, सात आँच देनेसे हरिताल अग्निस्थायी होजाता है फिर आठवें दिन आकके दूधमें एक दिवस खरल करके टिकिया बना सुखालेवे तदनंतर डमरूयंत्रमें आठ प्रहरकी आँच दे इस प्रकार तीन आँच देनेसे हरिताल तैयार होजाता है । इससे मात्रा दो रत्तीकी है । इसको विधिपूर्वक नित्य सेवन करनेसे गलत्कुष्ठ वातरक्तसे उत्पन्न शोथ और चकत्ते आदि नष्ट

होते हैं, गाँठ, वातरक्तकी वायु और नासिकाकी पपडी दूर होती है यदि सहत और चार मासे चोबचीनीके चूर्णके साथ १ एक रत्ती प्रमाण इसका सेवन करे तो महान् फिरंग रोग और उससे उत्पन्न घाव समूल नष्ट होजाता है । तथा कफसे पैदा होनेवाले रोगोंको नष्ट करता है अग्निको प्रदीप्त करता है ॥ ९०-९७ ॥

चतुर्दशप्रकारः ।

शुद्धं वै तालकं गृह्य निंबुनीरेण मर्दयेत् ।
कुमारिकारसेनैवं द्रोणपुष्पीरसेन वा ॥ ९८ ॥
गंगतिरियाख्यरसैः सप्ताहं मर्दयेद्भृशम् ।
कर्षकर्षप्रमाणेन वटीं कृत्वा तु शोषयेत् ॥ ९९ ॥
डमरूयन्त्रके पाच्यं ह्यष्टयामाग्निना बुधः ।
शीते ह्युत्पतितं सत्वं युक्त्या वै कर्षयेत्ततः ॥ १०० ॥
अर्कदुग्धेन संपेष्य डमरूयन्त्रेण पूर्ववत् ।
अष्टयामाग्निना तद्वद्द्वाविंशत्या पुनः पुनः ॥ १०१ ॥
ततो गृहीत्वा तत्सत्त्वं वटी कार्या प्रयत्नतः ।
ततस्तु मृण्मये पात्रे पलाशभस्मसंयुते ॥ १०२ ॥
विधिवद्भस्ममध्ये वै पुटीकृत्याग्निना पचेत् ।
चतुर्विंशतियामाग्निं दत्त्वा कृष्णं भविष्यति ॥ १०३ ॥
अर्कदुग्धेन संमर्द्य सूर्ययामाग्निना पचेत् ।
शरावसंपुटे दत्त्वा द्विप्रस्थे शुष्कगोमये ॥ १०४ ॥
दत्त्वाग्निं स्वांगशीते च द्विगुंजाभक्षणेन वै ।
नश्यन्त्यसृग्भवा दोषा धातुपुष्टिर्भवेद्ध्रुवम् ॥ १०५ ॥
कल्याणभट्टानुभूतं निर्दोषं भस्म गीयते ॥ १०६ ॥

अब हरितालके मारणकी चौदहवीं विधि कहते हैं । शुद्ध किये हुए हरितालको कागजी नींबू, घीकुवार, गोमा, गंगतिरिया इन प्रत्येक औषधोंके रसमें सात सात दिन खूब घोटे और अनुमान एक एक तोले वजनकी टिकिया बनाकर धूपमें सुखालेवे तत्पश्चात् उन टिकियाओंको डमरूयंत्रमें आठ प्रहरकी आँच देकर पकावे जब स्वांगशीतल हो तब ऊपरके पात्रमें उडकर लगे हुए हरितालका सत्त्व

छुरी आदिसे खुरचले और फिर आकके दूधमें खरल करके धूपमें सुखाकर डमरूयंत्रमें आठ प्रहरकी आँच देकर पकावे इसी प्रकार (आकके दूधमें घोटना, टिकिया बना धूपमें सुखाना, डमरूयंत्रमें आठ प्रहरकी आँचसे पकाना) की क्रियासे बाईस आँच देकर हरितालका अग्निस्थायी सत्त्व निकाल प्रयत्नसे टिकिया बनावे तदनन्तर एक मिट्टीके बर्तनमें आधे भागतक ढाककी भस्म भरे और भस्मके ऊपर टिकियाको रखकर पात्रका शेष भाग भस्मसे पूर्ण भरकर पात्रका मुख उचित रीतिसे बंद करके २४ प्रहरकी आँच देवे तो हरितालका रंग काला होजायगा। तत्पश्चात् एक दिन आकके दूधमें घोट टिकिया बना सुखालेवे और फिर किसी हांडीमें नीचे ऊपर ढाककी भस्म बीचमें हरितालकी टिकिया रख पात्रका मुख बंद कर बारह प्रहरकी आँच दे और फिर उस टिकियाको शरावसंपुटमें रखकर दो प्रस्थ जङ्गली उपलाका आँच देवे, स्वांगशीतल होनेपर हरितालको निकाललेवे इसको दो रत्ती प्रमाण सेवन करे तो सब प्रकारके रक्तविकार दूर होवें और धातुकी पुष्टि हो यह भस्म कल्याणभट्टकी अनुभूत तथा दोषोंसे रहित है ॥ ९९-१०६ ॥

पञ्चदशप्रकारः ।

कर्षैकं हरितालं वै गजपिप्पलिके रसे ।
संमर्द्य गुटिका कार्या ह्यातपे शोषयेत्ततः ॥ १०७ ॥
विधाय डमरूयंत्रे सूर्ययामाग्निना पचेत् ।
शीते जाते ततो विद्वान्ह्यर्धगुंजाप्रमाणतः ॥ १०८ ॥
टंकचूर्णं चोबचीन्या मधुयुक्तं प्रदापयेत् ।
फिरंगघ्नं व्रणघ्नं च ग्रंथीशोथं तथैव च ॥ १०९ ॥
वातरक्तोद्भवा पीडा नाशयेन्नात्र संशयः ।
लवणं नैव दातव्यं कुपथ्यं परिवर्जयेत् ॥
दुग्धाज्यतंदुलादीनि पथ्यं देयं प्रयत्नतः ॥ ११० ॥

अब हरितालके मारणकी पन्द्रहवीं विधि कहते हैं। शुद्ध तबकिया हरितालको आधा तोला लेकर गजपीपलके रसमें घोटे तदनन्तर उसकी टिकिया बना धूपमें सुखालेवे और डमरूयन्त्रमें बारह प्रहरकी तेज आँच देवे जब स्वांगशीतल होजावे तब ऊपरकी हाँडीमें उडकर लगे हुए हरितालको चाकू आदिसे खुरचकर किसी उत्तम शीशीमें रक्खे। और शहत तथा ३ तीन मासे चोबचीनीके साथ आधी रत्ती हरिताल सेवन करे तो फिरंगवात, व्रण, गांठ, सूजन और वातरक्तसे

उत्पन्न पीडा निःसन्देह नष्ट होवे । घी, दूध, चावलोंके सिवाय अन्य पदार्थ नमक आदि इसमें अपथ्य हैं ॥ १०७-११० ॥

षोडशप्रकारः ।

गोमूत्रे भावयेत्तालं दिनैकं प्रस्थमात्रकम् ।
स्फोटयित्वा प्रमाणेन तंदुलस्य न चाधिकम् ॥ १११ ॥
चुल्लिकायां निवेश्याथ कांजिकं प्रक्षिपेत्ततः ।
वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नेन पटश्चूर्णेन लिप्यते ॥ ११२ ॥
तस्योर्द्ध दीयते तालं चूर्ण तालोपरि क्षिपेत् ।
उपरिष्टात्पुनर्लिप्त्वा तेन चूर्णेन तालकम् ॥ ११३ ॥
तालिकां तूपरि प्राज्ञः पुनर्दत्त्वा मृदार्पिताम् ।
रुद्ध्वा याममधोवह्निं कुर्याच्चुल्ल्या समन्ततः ॥ ११४ ॥
पुनस्तेन प्रकारेण द्विवेलं तालकं तथा ।
कदलीफलदण्डस्य द्रवेण परिमर्दयेत् ॥ ११५ ॥
याममेकं पुनस्तालं शोषयित्वा च तत्तथा ।
पुनर्यामं पुनर्याममेवं वेलात्रयं बुधः ॥ ११६
कुर्यान्मर्दनशोषं च तंदुलीमरसेन वै ।
गण्डदूर्वारसैस्तद्वत्तथा पुष्पफलद्रवैः ॥ ११७ ॥
सर्व तिक्ता काकमाचीरसैस्तद्वत्प्रमर्दयेत् ।
सेहुण्डपयसा दद्याद्गुडसौभाग्यपीतिकाः ॥ ११८ ॥
पादं कृत्वा काचकुम्भे क्षिपेद्यन्त्रेऽथ सैकते ।
यामद्वादशपर्यन्तमग्निं कुर्यादहर्निशम् ॥ ११९ ॥
कदलीफलादिकं कर्म यत्कृतं विद्यते पुरा ।
तथैव च पुनः कुर्यात्षड्यामं वह्निदीपनम् ॥ १२० ॥
पुनस्तदेव तत्कर्म द्वियामं वह्निदीपनम् ।
एवं तालकसत्त्वं स्यादधस्तिष्ठति निश्चितम् ॥ १२१ ॥
खोटिकामं गुरुतरं सोज्ज्वलं तारसन्निभम् ।
वह्निसंयोगतो नैव समुड्डीय प्रयाति तत् ॥ १२२ ॥

अब हरितालके मारणका सोलहवाँ प्रकार लिखते हैं । एक सेर शुद्ध तबकिया हरिताल लेकर गौके मूत्रमें एक दिन भावना देवे और दूसरे दिन चावलके समान हरितालके छोटे २ टुकडे करलेवे तदनन्तर किसी बडे वस्त्रपर चूनेका लेप करके उसमें उसी हरितालको रखदेवे और हरितालके ऊपर चूनेको बिछायकर पोटली बनालेवे और एक उत्तम मिट्टीके पात्रमें कांजी भरकर दोलायन्त्रकी विधिसे उसमें पोटली लटकावे पात्रका मुख शराव (परई) से बंद कर कपरमिट्टी करे पुनः चूल्हेपर चढायकर बराबरकी आँचसे एक प्रहर पर्यन्त पकावे और जब कांजी सूख जावे तब चूल्हेपरसे उतार लेवे । इसी रीतिसे सब क्रिया करके दो वार और दोलायन्त्रके द्वारा कांजीमें स्वेदन करे तत्पश्चात् केलेकी जडके रसमें एक प्रहर तक खरल करके धूपमें सुखालेवे इसी प्रकार दो बार और करे अर्थात् केलेकी जडके रसमें एक प्रहर तक घोटना तथा धूपमें सुखालेना इस एक बारकी क्रियाको और करे तत्पश्चात् चौलाई, कडवी तूंबी और पुष्पफलके रसमें तीन २ वार पृथक् २ घोटकर सुखालेवे । इसके पीछे कुटकी और मकोयके रसोंमें खरल करके सुखालेवे फिर सुहागा और हलदी डालकर सेंहुडके दूधके साथ खरल करके किसी आतशी शीशीमें भर बारह प्रहर तक वालुकायन्त्रके द्वारा पकावे जब ठण्ढा होजावे तो हरितालको निकालकर पहले कहे हुए केलेकी जड आदिके रसोंमें फिर उसी प्रकार खरल करे और छः प्रहर पर्यन्त धीमी आँचसे पकावे, तदनन्तर पुनः केलेकी जड आदिके रसोंमें घोटकर दो प्रहरकी आँच देवे और स्वांगशीतल होनेपर हरितालको निकाले तो निःसन्देह उस हरितालका सत्त्व अग्निस्थायी होवे यह सत्त्व खर्जूरकी खोटिकाके तथा चांदीके तुल्य प्रभासे युक्त उज्ज्वलता लिये हुए भारी होताहै । अब इसमें चाहे जितना अग्निका संयोग किया जाय पर यह उडेगा नहीं ॥ १११-१२२ ॥

प्रस्थैकं तालमादाय कुमारीरसभावितम् ।
संशोष्य च क्षिपेद्भाण्डे पलाशक्षारसंभृते ॥ १२३ ॥
क्षारोपर्यभ्रखण्डानि तदुपर्यालरोटिकाम् ।
तदूर्ध्वं तु पुनः कार्या अभ्रकाणां च विस्तृतिः ॥ १२४ ॥
ततस्तु पात्रमाकंठं पूरयेद्भस्माभिः पुनः ।
आच्छाद्य तन्मुखं सम्यक् शरावमृत्स्नकर्पटैः ॥ १२५ ॥
ततो चुल्ल्यां समारोप्य सूर्ययामाग्निना पचेत् ।
स्वाङ्गशीतं समुद्धृत्य तत्सत्त्वं मतिमान्नरः ॥ १२६ ॥

द्रोणपुष्प्या रसे शंखपुष्प्या वज्रार्कदुग्धके ।
गन्धपुष्प्याश्च न्यग्रोधरसे दुग्धे च माहिषे ॥ १२७ ॥
धात्रीद्रुमस्य पर्णे च तथा नागद्रमेऽपि च ।
पश्चान्मोरशिखाख्यायां ततो कुकुरभृङ्गके ॥ १२८ ॥
ततस्तु जलपिप्पल्यां खर्पराख्ये विषे तथा ।
कृष्णधत्तूरके तद्वत्तथा चामरवल्लिके ॥ १२९ ॥
गुंजापामार्गच्छिक्कन्या रसे शोभाञ्जने तथा ।
सहदेवीरसे चैव विषे वै राजसर्षपे ॥ १३० ॥
गोजिह्वायां च पाषाणशाके चैव पलाण्डुके ।
निम्बुनीरे च कूष्माण्डे हुल्हुले शरपुंखके ॥ १३१ ॥
दुग्धिकार्द्रकयोश्चैव भावयेन्मतिमान्भिषक् ।
बलाद्वये च लशुने पीतपुष्प्यां च नागरे ॥ १३२ ॥
श्वेतार्के चित्रके चैव क्वाथे दुग्धे रसे तथा ।
भावयित्वा तु प्रत्येकं दिनैकं तु यथातथम् ॥ १३३ ॥
यन्त्रे विद्याधरे चैव पाचनीयन्तु पूर्ववत् ।
एवं वै हरितालस्य तत्सत्त्वं भवति स्थिरम् ॥ १३४ ॥
पीयूषवच्च विज्ञेयं किम्बहूक्तेन वैद्यराट् ।
राजसर्षपमानेन सेवनस्य फलं शृणु ॥ १३५ ॥
महाकुष्ठादिरोगाश्च लीयन्ते मासमात्रतः ।
जाठराग्निर्भवेद्दीप्तो बहुरामा रमेन्नरः ॥ १३६ ॥
सप्ताहसेवनन्नैव शुक्रदोषात्प्रमुच्यते ।
रक्तश्वेतौ च प्रदरौ नश्यतः स्त्रीजनस्य च ॥ १३७ ॥
राजरोगक्षयार्शांसि ह्युपदंशभगन्दरौ ।
नश्यन्ति दुष्टरोगाश्च तपनेन यथा तमः ॥ १३८ ॥

यथा पवनवेगेन मेघा नश्यन्ति सर्वतः ।
तथास्य सेवनाच्चापि रोगा नश्यन्ति मूलतः ॥ १३९ ॥
वमनादिक्रियाभिश्च पञ्चभिर्मतिमान्भिषक् ।
संशोध्य रोगिणे देयं तदा नीरोगतामियात् ॥ १४० ॥
सर्वदोषहरो ज्ञेयो न करोति ह्युपद्रवान् ।
अनुभूतप्रयोगोऽयं रक्षणीयो भिषग्वरैः ॥ १४१ ॥

अब हरितालके मारणकी सत्रहवीं विधि कहते हैं । एक सेर शुद्ध किये हुए हरितालको लेकर चार प्रहर पर्यन्त ग्वारपाठेके रसमें घोटे जब घोटते २ गाढा होजाय तब उसको रोटीके तुल्य चिपटी और गोल बनाकर धूपमें सुखालेवे, तत्पश्चात् एक मिट्टीके पात्रमें पलाशकी राख आधे भागतक भरे और उस राखके ऊपर अभ्रकके छोटे २ टुकडे बिछाकर ऊपरसे हरितालकी रोटीको रखकर फिर भी अभ्रकके टुकडोंसे उस रोटीको ढाँक देवे और फिर पलाशकी राखसे पात्रको पूर्ण भर परईसे मुख आच्छादित कर कपरमिट्टी करे । तदनन्तर चूल्हेपर चढाय बारह प्रहर तक आँच देकर उतार लेवे, स्वांगशीतल होनेपर हरितालको पात्रसे अलग निकाल गोमा, शंखाहुली, थूहर, आक, गेंदाकी पत्ती, वट, भैंसका दूध, आमलेके पत्ते, नागदौन, मोरशिखा, कुकुरभाँगरा, जलपिप्पली, खर्परविष, काला धतूरा, अमरबेल, घुँघची, लटजीरा, नकछिकनी, सहिंजना, सहदेवी, सिंगिया विषका काढा, राई, गोभी, पथरसगा, प्याज, नींबूका रस, कुम्हडा, हुलहुल, शरफोंका, दुद्धी, अदरक, दोनों बरियारी, लहसुन, हेमपुष्पी (पीले फूलवाली यूथिका) सोंठ, सफेद आक, चीता, यथासंभव इन प्रत्येक वस्तुओंका काढा, दूध और रसोंमें एक २ दिन खरल करके टिकिया बनालेवे और पूर्वके तुल्य डमरूयन्त्रके द्वारा पकावे तो हरितालका सत्त्व स्थिर और अमृतके समान गुणकारी सिद्ध होता है फिर उस सत्त्वको किसी उत्तम शीशीमें रखदेवे और नित्य एक राई प्रमाण मात्रासे एक मास पर्यन्त सेवन करे तो असाध्य भी महाकुष्ठ आदि रोग नष्ट होते हैं । जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा अनेक स्त्रियोंके साथ भोगविलास करनेमें समर्थ होताहै और सात दिन सेवन करनेसे समस्त शुक्रसम्बन्धी रोग दूर होजाते हैं । स्त्रियाँ सेवन करें तो उनके रक्त और श्वेत प्रदर आदि रोग नष्ट होवें । राजरोगक्षयी, बवासीर, उपदंश और भगन्दर आदि रोग सूर्यसे अन्धकारके तुल्य तथा वायुसे मेघोंको समान शीघ्र ही समूल नष्ट होवें । बुद्धिमान् वैद्यको चाहिये कि, वमन, विरेचन आदि पाँच कर्मोंसे रोगीको शुद्ध करके उसके

लिये इस हरितालके सत्त्वको उक्त रीतिसे देवे तो निस्सन्देह वह रोगोंसे मुक्त होवे । यह सब दोषोंका नाश करनेवाला है, इसके खानेसे किसी प्रकारके उपद्रव नहीं होते । यह अनुभव किया हुआ प्रयोग है, वैद्योंको चाहिये कि इसकी रक्षा करें ॥ १२३–१४१ ॥

अथाष्टादशप्रकारे धातुविद्धभस्मविधिः ।

रुदंत्या हरितालं च रसेन सह मर्दयेत् ।
ताम्रपत्रप्रलेपेन दिव्यं भवति कांचनम् ॥ १४२ ॥

अब अठारहवीं विधिमें धातुसे विद्ध हरितालके भस्म करनेकी रीति कहते हैं । रुद्रवंती (एक प्रकारका क्षुपवृक्ष) के रसमें शुद्ध किये हुए हरितालको घोटे और जब घोटते २ खूब बारीक हो जावे तब ताँबेके पत्रोंपर उसका लेप करके अग्निको प्रदीप्त करके फूँक देवे तो सुन्दर सुवर्ण बनजाता है ॥ १४२ ॥

एकोनविंशतिप्रकारः ।

तालं ताप्यं दरदकुनटी सूतकं सार्द्धभागं
खल्वे कृत्वा त्रिदिनमथितं काकमाचीद्रवेण ।
तेनालेप्यं रविशशिदलं खर्परे वह्नितुल्यं
शुल्बातीतं भवति कनकं संबलं पांथिकानाम् ॥ १४३ ॥

अब उन्नीसवें प्रकारमें धातुविद्ध भस्म करनेकी दूसरी रीति कहते हैं । पहले एक भाग ताँबा या रांगा लेकर उसके पतले २ पत्र बनवालेवे तत्पश्चात् ताँबेसे डयौढा हरिताल, रूपामक्खी, हिंगुल, मनसिल, पारा इनको लेकर तीन दिवस पर्यन्त मकोयके रसमें खरल करे बारीक होनेपर उन पत्रोंपर लेप करके किसी खपडेमें रख आँच देवे तो सुन्दर सोना सिद्ध होजाताहै । यह मार्गस्थ मनुष्यों (सफर करनेवालों) के लिये उपयोगी है ॥ १४३ ॥

विंशत्प्रकारः ।

तालतुल्यां शिलां पिष्ट्वा देवदाल्याद्रवैर्दिनम् ।
द्रावैरीश्वरलिंग्याश्च दिनमेकं विमर्दयेत् ॥ १४४ ॥
नागं वंगं रसं तुल्यं चूर्णितं पलपंचकम् ।
पूर्वकल्केन संयुक्तं समालोड्य घृतं पुटेत् ॥ १४५ ॥
एवं पुनः पुनः पाच्यं पूर्वकल्केन संयुतम् ।

भवेत्षष्टिपुटे शीघ्रवंगस्तम्भकरं परम् ।
शतभागेन दातव्यं वेधं तारे करोत्ययम् ॥ १४६ ॥

अब मारणकी बीसवीं विधि कहते हैं । शुद्ध किया हुआ हरिताल और मनसिल इन दोनोंको समान भाग लेकर देवदालीके रसमें एक दिन पर्यन्त घोटे और शिवलिंगीके रसमें एक दिन खरल करे, तत्पश्चात् नाग, वंग और पारा इनको एकमें मिलाकर खरल करके पाँच पल अर्थात् २० तोले चूर्णको सिद्ध करे, अब इस चूर्ण तथा पूर्व सिद्ध किये हरिताल और मनसिलके कल्कको एकत्र मिलाकर खरल करके अग्निमें फूँक देवे इसी विधिसे पूर्वकल्कसे युक्त उस चूर्णको वारंवार पकावे ६० पुट देनेसे यह उत्तम भस्म वंगका स्तंभन करने योग्य होता है । यह शतभाग देनेसे तारमें वेध करताहै ॥ १४४--१४६ ॥

अथ भस्मपरीक्षा ।

तालं मृतं तदा ज्ञेयं वह्निस्थं धूमवर्जितम् ।
सधूमं न मृतं प्राहुर्वृद्धवैद्या इति स्थितिः ॥ १४७ ॥

अब हरितालकी बनीहुई भस्मकी परीक्षा कहते हैं । सिद्ध की हुई भस्मको अग्निमें छोडनेसे यदि धूम न निकले तो उस भस्मको उत्तम शुद्ध समझना चाहिये नहीं तो नहीं । यह अनुभवी वृद्ध वैद्योंका कथन है । ॥ १४७ ॥

अथ तालभस्मगुणाः ।

अशीतिवातान्कफपित्तरोगान्कुष्ठं च मेहं च गुदामयांश्च ।
निहन्ति गुंजार्द्धमितं तु तालं षड्वल्लखंडेन समं च युक्तम् ॥ १४८ ॥

अब हरितालभस्मके गुणोंको कहते हैं । यदि छः वल्ल अर्थात् अठारह मिश्रीके साथ आध रत्ती उत्तम हरितालकी भस्मका विधिपूर्वक सेवन करे तो ८० अस्सी प्रकारके वायुरोग, कफ और पित्तसे उत्पन्न सब रोग कुष्ठ, प्रमेह, तथा गुदामें पैदा होनेवाले सब प्रकारके बवासीर आदि रोग नष्ट होजाते हैं ॥ १४८ ॥

अथानुपानानि ।

एवं गुणं तु तत्तालं देयं गुंजैकमानतः ।
अनुपानान्यनेकानि यथायोग्यं प्रयोजयेत् ॥ १४९ ॥
गुडूच्यादिकषायेण गदानेतान्व्यपोहति ।
सोपद्रवं वातरक्तं कुष्ठान्यष्टादशापि च ॥ १५० ॥

सर्वरक्तविकारेषु देयमाम्रहरिद्रया ।
सुहालाहलजीराभ्यामपस्मारहरं परम् ॥ १५१ ॥
समुद्रफलयोगेन जलोदरविनाशनम् ।
देवदालीरसैर्युक्तं भगंदरहरं परम् ॥ १५२ ॥
फिरंगदोषजं रोगं जातं हन्ति सदुस्तरम् ।
मंजिष्ठादिकषायेण कुष्ठान्यष्टादशाञ्जयेत् ॥ १५३ ॥
त्रिफलाशर्करायुक्तं पाण्डुरोगं जयत्यसौ ।
शुण्ठीचूर्णयुतं हन्यादामवातं सुदुर्जयम् ॥ १५४ ॥
सौवर्णभस्मयोगेन रक्तपित्तविकारनुत् ।
तंदुलीयरसैः साकं ज्वरमष्टविधं जयेत् ॥
एवं सर्वेषु रोगेषु स्वबुद्ध्या कल्पयेद्भिषक् ॥ १५५ ॥

इस प्रकार उत्तम गुणोंसे युक्त हरितालके भस्मकी एक रत्ती प्रमाण मात्रा रोगीके लिये देवे । अनुपान अनेक हैं इस हेतु वैद्यको चाहिये कि वह रोगके अनुकूल अनुपानका प्रयोग करे । यदि वातरक्त रोग या अठारह प्रकारके कुष्ठोंमेंसे कोई कुष्ठ हो तो गिलोयके क्वाथके साथ सेवन करनेसे वे उपद्रवयुक्त वातरक्त रोग तथा समस्त कुष्ठरोग नष्ट होते हैं सब प्रकारके रक्तविकारोंमें आमा-हल्दीके साथ, मृगीरोगमें विष और जीराके, जलंधर रोगमें समुद्रफलके, भगंदर और फिरंगवातमें देवदालीके रसके, अष्टादश कुष्ठोंमें मंजिष्ठादि क्वाथके, पाण्डुरोगमें त्रिफला और मिश्रीके, आमवातमें सोंठके चूर्णके, रक्तपित्तमें सुवर्णकी भस्मके, आठ प्रकारके ज्वरोंमें चौलाईके रसके साथ हरितालभस्मका सेवन करे तो सब रोगोंसे मुक्त होजावे । वैद्यको चाहिये कि, इसी प्रकार अन्य सब अनुक्त रोगोंमें भी अपनी बुद्धिसे अनुपानोंकी कल्पना करके रोगीको भस्मको देवे॥१४९--१५५॥

अथ तालसत्त्वनिर्माणविधिः ।

जयपालबीजवातारिबीजमिश्रं च तालकम् ।
कूपीस्थं वालुकायन्त्रे सत्त्वं मुञ्चति यामतः ॥ १५६ ॥

अब हरितालके सत्त्व निकालनेकी विधि कहते हैं । आधसेर शुद्ध किया हुआ हरिताल वा हरितालकी भस्म, दो छटाँक जमालगोटेकी जड और दो छटाँक अरंडके बीज इन तीनोंको एकमें मिलाकर एक प्रहर पर्यन्त खरल करके किसी उत्तम आतशी शीशीमें भरकर बालुयंत्रके द्वारा एक प्रहर आँच देवे तो हरिता-

लका सत्त्व उडकर शीशीके मुखमें आलगेगा स्वांगशीतल होने पर उसको निकाल लेवे ॥ १५६ ॥

द्वितीयप्रकारः ।

शुद्धचूर्णस्य पादांशं मर्दयेन्नवसादरम् ।
चूर्णाद्विगुणतोयेन तत्तोये निर्मलं पचेत् ॥ १५७ ॥
शनैर्लवणपाकेन यावत्तु लवणं भवेत् ।
अथ तत्तालकं शुद्धं पारदं टंकणैर्युतम् ॥ १५८ ॥
टंकणार्द्धेन तच्चूर्णं मर्दयेत्कन्यकाद्रवैः ।
शरपुंखाद्रवैरेव शुद्धं तत्कूपिकोदरे ॥
पचेद्यामाष्टकं यावत्सत्त्वरूपेण तिष्ठति ॥ १५९ ॥

हरितालके सत्त्व निकालनेका दूसरा प्रकार कहते हैं नोसादर पावभर और विना बुझा चूना एक सेर लेकर दो सेर पानीमें पकावे पकते २ जब गाढा होकर खारके समान होजावे तब निकालकर आधसेर हरिताल, शुद्ध पारा, एक छटाँक सुहागा और पैसे भर खार इनको घीकुवार और शरफोंकेके रसमें दो प्रहरतक खरल करे तत्पश्चात् किसी आतशी शीशीमें भरकर बालुकायंत्रके द्वारा आठ प्रहर तक आँच देवे तो हरितालका सत्त्व उडकर शीशीके मुखमें आलगेगा पीछे स्वांगशीतल होनेपर उसको निकाल लेवे ॥ १५७--१५९ ॥

तृतीयप्रकारः ।

लाक्षाराजतिलाञ्छिग्रु टंकणं लवणं गुडम् ।
तालकार्द्धेन संमिश्र्य छिद्रमूषां निरोधयेत् ॥
पुटेत्पातालयन्त्रेण सत्त्वं पतति निश्चितम् ॥ १६० ॥

अब सत्त्व निकालनेका तीसरा प्रकार कहते हैं । शुद्ध किया हुआ हरिताल एक भाग और हरितालका आधा भाग लाख, राई, तिल, सहिंजनेकी छाल, सुहागा, नमक और गुड इनको एकमें मिलाकर खूब बारीक खरल करे तत्पश्चात् छिद्र सहित मूषामें रख और मूषाका मुख बंद करके पातालयंत्रमें पुट देवे तो अवश्य सत्त्व निकले ॥ १६० ॥

चतुर्थप्रकारः ।

पलैकं तालकं शुद्धं तत्समं टंकणं भवेत् ।
मर्दयेन्मोषिकाक्षारैः कूष्माण्डद्रवजैः पुनः ॥ १६१ ॥

कन्यानिंबुकनारेण वज्रार्कपयसा तथा ।
वातारितैलसंयुक्तं मर्दयेत्सकृदेव तु ॥ १६२ ॥
वटकान्कारयेत्पश्चात्मध्वाज्येन समन्वितान् ।
काचकुप्यां विनिक्षिप्य लेपयेन्मृत्स्नकर्पटैः ॥ १६३ ॥
बालुकायन्त्रगं कुर्यात्पचेद्दिनचतुष्टयम् ।
सत्त्वं कुलिशसंकाशमूर्ध्वं तिष्ठति नान्यथा ॥ १६४ ॥

अब सत्त्व निकालनेका चौथा प्रकार कहते हैं। शुद्ध किया हुआ हरिताल चार तोले और सुहागा चार तोले इन दोनोंको भेडीके दूध, कुम्हडेके रस, घीकुवारके रस, निंबूके रस, थूहरके रस, आकके रस और अंडीके तेल इन प्रत्येकमें एक एक दिन खरल करके शहद और घी मिलाकर गोला बनालेवे और उसको किसी आतशी शीशीमें छोडकर कपरामिट्टीसे मुख बंद करदेवे तदनन्तर बालुकायंत्रमें चार दिन पर्यन्त आँच देवे तो हीरेके तुल्य कान्तियुक्त सत्त्व उडकर शीशीके मुखपर आ लगेगा स्वांगशीतल होने पर उस सत्त्वको खुरचलेवे ॥ १६१-१६४ ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

पञ्चमप्रकारः ।

शुद्धं तालं टङ्कणेन माहिषेण घृतेन च ।
कुलत्थक्काथकेनाथ मधुना वै पृथक्पृथक् ॥ १६५ ॥
भावयित्वा हण्डिकायां क्षिप्त्वोर्ध्वं छिद्रसंयुताम् ।
पालिकां न्यस्य तत्सन्धौ लेपं सम्यग्विधाय च ॥ १६६ ॥
वेदयामेषु क्रमतो वह्निं दद्याद्विचक्षणः ।
नलीकातस्ततो धूमे बहिर्याते विचक्षणः ॥ १६७ ॥
धूमं पाण्डुरमालोक्य वह्निं निर्वाप्य यत्नतः ।
उत्तार्य हण्डिकां स्वाङ्गशीतलं भेषजं हरेत् ॥ १६८ ॥

अब सत्त्व निकालनेकी पाँचवीं विधि कहते हैं। शुद्ध हरितालको सुहागे, भैंसके घृत, शहत और कुलथीके काढेमें अलग २ भावना देकर एक मिट्टीके पात्रमें रखकर ऊपरसे छिद्रयुक्त ढँकना बंद करके संधियोंकोभी लेपसे बंद करदेवे तत्पश्चात् उस छिद्रमें एक लंबी नली लगाकर पात्रको चूल्हेपर चढाय क्रमसे

चार प्रहरकी आँच देवे । जब नलीसे पीले रंगका धूम निकलने लगे तब अग्निको शांत करदेवे और हंडीको चूल्हेपरसे उतार लेवे जब स्वांगशीतल होजावे तब सत्त्वको निकालकर किसी शीशीमें रख देवे ॥ १६५--१६८ ॥

अथ सत्त्वसेवनगुणा अनुपानानि च ।

वातरक्तेऽतिदुःसाध्ये सततं तंदुलोन्मितम् ।
दद्याच्चणकवद्भक्ष्यं पथ्यार्थं घृतसेवितम् ॥
द्विसप्तदिवसैः कान्तिर्जायते रोगवर्जिता ॥ १६९ ॥

अब हरितालके सत्त्व सेवन करनेके गुण और अनुपान कहते हैं । वैद्यको चाहिये कि, वह अति दुःसाध्य वातरक्तरोगमें एक प्रमाण मात्रासे सत्त्वका सेवन करावे और पथ्यके लिये घृतसहित चनेकी रोटी देवे तो चौदह दिनमेंही रोगमुक्त होकर कान्तियुक्त शरीरवाला होता है ॥ १६९ ॥

अथ तालयोजना ।

श्वासे कासे क्षये कुष्ठे पित्ते च वातशोणिते ।
दद्रुपामाव्रणे वाते तालकं च प्रदापयेत् ॥ १७० ॥

अब किन २ रोगोंमें हरितालकी योजना करनी चाहिये सो कहते हैं श्वास, कास, क्षयी, कुष्ठ, पित्त, वातरक्त, दाद, खुजली, व्रण और वादी इन रोगोंमें हरितालका सेवन करना चाहिये ॥ १७० ॥

अथाशुद्धतालसेवनोपद्रवाः ।

अशुद्धतालं खलु पीतवर्णं सधूमकं वातचयं च पित्तम् ।
पंगुत्वकुष्ठं तनुते च तेन देहस्य नाशं प्रकरोति सद्यः ॥ १७१ ॥

विना शुद्ध वा न्यून शुद्ध हरितालके सेवनसे होनेवाले उपद्रवोंको कहते हैं । पीले रंगसे युक्त तथा अग्निमें छोडनेसे धुआँ देनेवाले इस कच्चे हरितालको यदि सेवन करे तो वातापित्तके रोग, पँगुलापन और कुष्ठ आदि रोग उत्पन्न होकर शरीरका नाश होवे ॥ १७१ ॥

अथ तदुपद्रवशान्त्यर्थमुपायः ।

अजाजीं शर्करायुक्तां सेवते यो दिनत्रयम् ।
विकृतिं तालजां हन्याद्यथा दारिद्र्यमुद्यमः ॥ १७२ ॥

अब अशुद्ध हरितालके सेवनसे उत्पन्न हुए उपद्रवोंकी शान्तिके लिये उपाय कहते हैं । जिस प्रकार उद्यम या व्यापारसे दरिद्रता नष्ट होजाती है इसी

प्रकार मिश्री और जीरा मिलाकर तीन दिन सेवन करनेसे सब उपद्रव नष्ट होजाते हैं ॥ १७२ ॥

अन्यच्च ।

यवासकरसैश्चैव कूष्माण्डस्वरसैस्तथा ।
राजहंसरसेनापि विकृतिं तालजां जयेत् ॥ १७३ ॥

उपद्रवोंके शमन करनेके लिये औरभी उपाय कहते हैं । यदि जवासा वा कुम्हडेका रस पीवे तो अशुद्ध हारितालके सेवनसे पैदा हुए उपद्रव शान्त होवें और राजहंस रूखडीके रससेभी सब विकार दूर होते हैं ॥ १७३ ॥

अथ तालसेवने वर्जनीयानि ।

एतद्भेषजसंसेवी लवणाम्लौ विवर्जयेत् ।
तथाकटुरसं वह्निमातपं दुस्तरं त्यजेत् ॥ १७४ ॥
लवणं यः परित्यक्तुं न शक्नोति कथंचन ।
स तु सैन्धवमश्नीयान्मधुरोऽपि रसो हितः ॥ १७५ ॥

अब हरिताल सेवन करनेवालेके लिये अपथ्य पदार्थोंका वर्णन करते हैं । हरितालसेवी मनुष्य नमक, अम्ल (खट्टे) पदार्थ, कटुरससे युक्त कोईभी पदार्थ, अग्निका तापना, धूपमें रहना इत्यादिको त्याग करे अर्थात् यह हितकारी नहीं है । यदि नमकका परहेज किसी प्रकार न करसके तो फिर कुछ सैन्धव नमकसे काम चलावे और मधुर रसका सेवन इसमें हित है ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

एवं ते हरितालस्य शोधनादिविधिक्रमात् ।
भक्षणादिक्रियाश्चापि ह्यध्यायेऽस्मिन्निवेदिता॥ १७६ ॥

हे पुत्र ! इस प्रकार हरितालके शोधनकी रीति तथा भक्षणादिक्रिया अर्थात् सेवन करनेकी मात्रा और पथ्यापथ्यका वर्णन आदि इस अष्टमाध्यायमें तुमको समझा दिया है ॥ १७६ ॥

इति श्रीपण्डितरामप्रसादवैद्योपाध्यायप्रणीते रसेन्द्रपुराणे
हरितालप्रकरणं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातोऽञ्जनकासीसगैरिकवर्णनं नाम नवमाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

वत्स ते संप्रवक्ष्यामि ह्यञ्जनस्याथ सत्क्रियाः ।
कासीसगैरिकस्यापि क्रमात्तत्त्वं हि श्रूयताम् ॥ १ ॥

हे वत्स ! अब मैं तुम्हारे बोधार्थ इस नवम अध्यायमें अञ्जन, कासीस, गैरिक (गेरू) इनके भेद तथा शोधन आदिका वर्णन करूंगा ॥ १ ॥

अञ्जनभेदाः ।

प्रथमं चाञ्जनस्यैव भेदादीन्कथयामि ते ।
अञ्जनं यामुनं वापि कापोताञ्जनमित्यपि ॥ २ ॥

हे वत्स ! पहले अञ्जनके ही भेद तथा गुण आदिका वर्णन करताहूं । अंजनके दो भेद हैं एक यामुन दूसरा कापोत ॥ २ ॥

स्रोतोञ्जनभेदौ ।

स्रोतोञ्जनं तु द्विविधं श्वेतकृष्णाविभेदतः ।
तत्र स्रोतोञ्जनं रूक्षं सौवीरं श्वेतमीरितम् ॥ ३ ॥

स्रोतोंजनके दो भेद हैं एक सफेद, दूसरा काला, जो काला है उसका नाम स्रोतोंजन है और वह रूक्ष है । जिसका रंग सफेद है वह सौवीरांजन नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

अथान्यमतम् ।

सौवीरमंजनं प्रोक्तं रसांजनमतः परम् ।
स्रोतोञ्जनं तदन्यच्च पुष्पाञ्जनमतः परम् ॥
नीलाञ्जनं तथा प्रोक्तं स्वरूपमिह वर्ण्यते ॥ ४ ॥

किसीका मत है कि, अंजनके दोही भेद नहीं हैं किन्तु पाँच भेद हैं जैसे सौवीरांजन, रसांजन, स्रोतोंजन, पुष्पांजन और नीलांजन ॥ ४ ॥

तत्रादौ सौवीरांजनलक्षणम् ।

सौवीरमंजनं धम्रं रक्तपित्तहरं हिमम् ।
विषनेत्रामयहरं व्रणशोधनरोपणम् ॥ ५ ॥

सौवीरांजनका रंग धूमके समान होताहै और वह शीतल है रक्तपित्त, विषरोग, नेत्ररोगका नाश करनेवाला तथा व्रणको शोधन और रोपण करता है ॥ ५ ॥

रसाञ्जनलक्षणम् ।

पीतचन्दननिर्यासं रसाञ्जनमितीरितम् ।
तत्क्वाथजं वा भवति पीताभं वक्त्ररोगनुत् ॥ ६ ॥
श्वासहिक्काहरं वर्ण्यं वातपित्तास्रनाशनम् ।
नेत्र्यं सिध्मविषच्छर्दिकफपित्तास्रकोपनुत् ॥ ७ ॥

रसांजन जिसको रसौत भी कहते हैं वह पीले चन्दनका गोंद या काढा है इसका रंग पीला होता है । इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे मुखके सब रोग, श्वास, तथा वातपित्तज रक्तविकार, नेत्ररोग, सिध्म, विष, वमन तथा कफपित्तज, रक्त विकार दूर होते हैं और शरीरका वर्ण उत्तम कान्तियुक्त होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥

स्रोतोञ्जनलक्षणम् ।

वल्मीकशिखराकारं भिन्नमञ्जनसन्निभम् ।
घृष्टं तु गैरिकाकारमेतत्स्रोतोऽञ्जनं स्मृतम् ॥
रसाञ्जनं तरुभवं स्रोतोञ्जननदीभवम् ॥ ८ ॥

यह स्रोतोंजन नदीसे पैदा होता है और रसांजन (जो कि पहले लिख चुके हैं) वृक्षसे पैदा होता है । स्रोतोंजनका रंग देखनेमें तो काला होता है पर घिसनेसे उसका रंग गेरूके तुल्य होता है और उसका आकार सर्पकी बाँबीके सदृश होता है ॥ ८ ॥

पुष्पाञ्जनलक्षणम् ।

पुष्पाञ्जनं सितं स्निग्धं हिमं नेत्रामयापहम् ॥ ९ ॥

पुष्पांजनका रंग श्वेत होता है स्पर्शमें चिक्कण है ठण्डा है और नेत्रके रोगोंका दूर करनेवाला है ॥ ९ ॥

नीलाञ्जनलक्षणम् ।

नीलाञ्जनं परं नेत्र्यं छर्दिहिक्कानिवारणम् ।
रसायनं सुवर्णघ्नं लोहमार्दवकारकम् ॥
नीलाञ्जनं नीलवर्णं स्निग्धं गुरुतरं स्मृतम् ॥ १० ॥

यह नीलांजन नेत्रके रोगोंमें बडा फायदा देनेवाला है । इसको विधिपूर्वक सेवन करे तो वमन और हिचकीका नाश होता है । यह लोहेको नरम तथा सुवर्णको भस्म करनेवाला रसायन है इसका रंग नीला होताहै और अत्यन्त भारी तथा स्पर्शमें चिकना होता है ॥ १० ॥

अथाञ्जनशोधनम् ।

अञ्जनान्याशु शुध्यन्ति भृङ्गराजनिजद्रवैः ॥ ११ ॥

अब सब अंजनोंका शोधनका सामान्य नियम कहते हैं। भांगरेके स्वरसमें खरल करनेसे सब अंजन शीघ्र शुद्ध होजाते हैं ॥ ११ ॥

द्वितीयप्रकारः ।

त्रिफलावारिणा शोध्यं तद्वय शुद्धिमृच्छति ।
भृङ्गराजरसे वापि स्रोतः सौवीरकं शुचि ॥ १२ ॥

अब शुद्ध करनेका दूसरा विशेष नियम कहते हैं। भांगरेके रसमें वा त्रिफलाके काथमें स्रोतोञ्जन या सौवीरांजनको औटावे तो शुद्ध हो जाते हैं ॥ १२ ॥

तृतीयप्रकारः ।

गोशकृद्रसमूत्रेषु घृतक्षौद्रवसासु च ।
भावितं बहुशस्तं च शुद्धिमायाति ह्यञ्जनम् ॥ १३ ॥

अब फिर भी शुद्ध करनेके सामान्य प्रकारको कहते हैं । गौके गोबरका रस, गौका मूत्र, घृत, शहत और वसा अर्थात् चर्बी इन सबोंकी अनेक वार भावना देवे तो अंजन शुद्ध हो जाता है ॥ १३ ॥

Indira Gandhi National Centre for the Arts

चतुर्थप्रकारः ।

सर्वाञ्जनं चूर्णयित्वा जंबीरद्रवभावितम् ।
दिनैकमातपे शुष्कं भवेत्कार्येषु योजयेत् ॥ १४ ॥

चाहे जो अंजन हो, एक दिन जंबीरी नींबूके रसमें भावना देकर धूपमें सुखालेवे तो शुद्ध हो जाता है। और इसका सब कार्योंमें उपयोग करे ॥ १४ ॥

पञ्चमप्रकारः ।

सूर्यावर्तादियोगेषु शुध्यत्याशु रसांजनम् ।
सर्वाणि चाञ्जनानीह तूर्णं बध्नन्ति सूतकम् ॥ १५ ॥

यदि काले भांगरा वा हुलहुलके रसमें अंजनको खरल करे तो शुद्ध होजाता है। सब अंजन पारेके बंधन करनेवाले हैं ॥ १५ ॥

रसांजनोत्पत्तिः ।

दार्वीक्वाथमजाक्षीरे पादपक्वं यथा घनम् ।
तदा रसांजनं ख्यातं नेत्रयोः परमं हितम् ॥ १६ ॥

अब रसांजन (रसौत) की उत्पत्ति कहते हैं । दारुहल्दीका क्वाथ बनाकर बकरीके दूधमें पकावे जब चौथाई भाग शेष रहे और गाढा होजावे तब उतार लेवे इसीका नाम रसांजन है यह नेत्रोंके लिये अत्यन्त लाभदायक है ॥ १६ ॥

कुलत्थाञ्जनगुणाः ।

कुलत्थिका तु चक्षुष्या कषाया कटुका हिमा ।
विषविस्फोटकंडूनां व्रणानांश्च निबर्हणा ॥ १७ ॥

कुलत्थिकांजन स्वादमें कसैला और कडवा है । इसको विधिपूर्वक सेवन करनेसे नेत्ररोग, विष, विस्फोटक, खुजली और व्रणका नाश होताहै ॥ १७ ॥

अन्यच्च ।

कुलत्थो दृक्प्रसादश्च चक्षुष्यश्च कुलत्थकः ।
कुंकुणालिनिहंता च कुंभकारिमलापहः ॥ १८ ॥

कुलित्थांजनको नेत्रमें लगानेसे दृष्टि स्वच्छ होती है । और नेत्रोंके लिये हित करताहै कुंकुण एक प्रकारका रोग विशेष जो बालकोंके होताहै उसको तथा कुंभक और मलका नाश करनेवाला है ॥ १८ ॥

अथ नीलाञ्जनशोधनम् ।

नीलाञ्जनं चूर्णयित्वा जंबीरद्रवभावितम् ।
दिनैकमातपे शुद्धं भवेत्कार्येषु योजयेत् ॥ १९ ॥

अब नीलांजनका शोधन कहते हैं । जंबीरी नींबूके रसमें एक दिन सुरमेके चूर्णको खरल करके धूपमें सुखालेवे तो शुद्ध होजाता है । इस शुद्ध किये नीलांजनको विधिपूर्वक रोगोंमें उपयोग करे तो अवश्य लाभ होताहै ॥ १९ ॥

एवं गैरिककासीसटंकणानि वराटिका ।
शंखस्तोरी च कंकुष्ठं शुद्धिमायान्ति निश्चितम् ॥ २० ॥

इसी प्रकार गेरू, कसीस, सुहागा, कौडी, शंख, मनसिल और मुरदासंगको भी शोधन करना चाहिये ॥ २० ॥

अथाञ्जनसत्त्वविधिः ।

पिञ्जरसत्त्ववत्सत्त्वमञ्जनानां समाहरेत् ।
राजा वर्तकवत्सत्त्वं ग्राह्यं स्रोतोंजनादिकम् ॥ २१ ॥

अब अंजनके सत्त्व निकालनेकी विधि कहते हैं हरितालके सत्त्व निकालनेके समान अंजनका भी सत्त्व निकालना चाहिये अर्थात् जो बिधि हरितालके सत्त्व

निकालनेकी आठवें अध्यायमें कहचुके हैं वही विधि इसकी भी है। आगे कहे हुए राजावर्तके सत्त्वके तुल्य सब अंजनोंका सत्त्व निकालना चाहिये ॥ २१ ॥

व्याख्यातं चाञ्जनस्यैवं कासीसस्याथ श्रूयताम् ।
कासीसं त्रिविधं प्रोक्तं सितं श्यामं च पीतकम् ॥ २२ ॥
पीतं च पुष्पकासीसं न गरीयो भवेन्मृदु ।
तैजिकं कालमेघाभं नीलं स्यान्मुक्तकालिकम् ॥ २३ ॥
श्यामं पीतं भवेच्चान्यदुत्तमाधममध्यमम् ॥ २४ ॥

हे वत्स्य ! अंजनके भेद तथा गुण आदिका वर्णन करचुके अब कासीसके भेद गुण तथा शोधन आदिका वर्णन करते हैं सो सावधान होकर सुनो। कासीस तीन प्रकारका होताहै सफेद, श्याम, पीला, इनमेंसे जो पीला है उसका नाम पुष्पकासीस है यह हलका और नरम होताहै। जो काले रंगवाला हो वह तैजिक कहाताहै और जो बादलके समान नीले रंगका हो वह मुक्तिकालिक कहाता है। इन उक्त तीन प्रकारोंसे भिन्न कुछ कालापन और कुछ पीलापन लिये हुए एक औरभी कासीस होता है। इनमेंसे सफेद रंगका उत्तम, श्यामरंगका मध्यम और पीले रंगका अधम होता है ॥ २२-२४ ॥

अथान्यमतम् ।

कासीसं बालुका ह्येकं पुष्पपूर्वमथापरम् ।
क्षाराभं गुरुधूमं च सोष्णं वीर्यविषापहम् ॥ २५ ॥
बालुकापुष्पकासीसं श्वित्रघ्नं केशरंजनम् ॥ २६ ॥

किसीके मतमें हीराकसीसके दो भेद हैं एक बालुक दूसरा पुष्प बालुक यह स्वादमें खारके समान है भारी है, धुआँके तुल्य रंगवाला है, वीर्य, विष, सफेद कुष्ठ इनको नाश करता है और बालोंमें उत्तम रंग लानेवाला है ॥ २५ ॥ २६ ॥

अथकासीसशोधनम् ।

सकृद्भृङ्गाम्बुना स्विन्नं कासीसं निर्मलं भवेत् ।
अथवा भावयेद्धर्मे दिनं जंबीरवारिणा ॥ २७ ॥

अब हीराकसीसके शोधनकी विधि कहते हैं। हीराकसीसको एक वार भांगरेके रसमें पकावे अथवा जंबीरी नींबूके रसमें एक दिन भावना देकर सुखालेवे तो शुद्ध होजाता है ॥ २७ ॥

द्वितीयप्रकारः ।

कासीसं चूर्णयित्वाथ जंबीरद्रवभावितम् ।
दिनैकमातपे शुष्कं सर्वकार्येषु योजयेत् ॥ २८ ॥

अब कसीसके शोधनेकी दूसरी विधि कहते हैं । जंभीरी नींबूके रसमें एक दिन हीराकसीसको खरल करके सुखालेवे तो शुद्ध होजाता है । इसको यथाविधि सब कार्योंमें देना चाहिये ॥ २८ ॥

तृतीयप्रकारः ।

कासीसं शुद्धिमाप्नोति पित्तैश्च रजसा स्त्रियाः ।
अथवा निंबुनीरेण शुद्धिर्भवति निश्चितम् ॥ २९ ॥

अब हीराकसीसके शुद्ध करनेकी तीसरी विधि कहते हैं कसीसको स्त्रियोंके रजके रक्त या बकरे आदि किसी पशुके पित्ते या नींबूके रसमें भावना देवे तो शुद्ध होजाता है ॥ २९ ॥

अथ कसीससेवनविधिः ।

बलिनाहतकासीसं कांतकासीसमीरितम् ।
उभयं समभागं हि त्रिफलावेल्लसंयुतम् ॥ ३० ॥
निष्कमात्रे घृते क्षौद्रे प्लुतं शाणमितं ददेत् ।
सेवितं हन्ति वेगेन श्वित्रपांडुक्षयामयान् ॥ ३१ ॥
गुल्मप्लीहं गदं शूलं मूत्ररोगमशेषतः ।
नाशयेन्नात्र सन्देहो योगोऽयं परिकीर्तितः ॥ ३२ ॥
रसायनविधानेन सेवितं वत्सरावधि ।
आमसंशोषणे श्रेष्ठं मंदाग्निपरिदीपनम् ॥ ३३ ॥
वलितं पलिभिः सार्द्धं विनाशयति निश्चितम् ।
जयते सर्वरोगांश्च तृणं वह्निर्द्रुतं यथा ॥ ३४ ॥

अब कसीसके सेवनकी विधि कहते हैं । गंधकसे मरे हुए कसीस और कांत कसीस इन दोनोंको बराबर लेवे और इनमें त्रिफला तथा काली मिर्चका चूर्ण मिलादेवे तत्पश्चात् चार २ मासे घृत और शहद मिलाकर एक वर्ष पर्यंत रसायनविधिसे नित्य चार मासे सेवन करे तो सफेद कुष्ठ, पांडुरोग, क्षयी, गुल्मरोग, प्लीहा, शूल और मूत्रके सब रोग नष्ट होते हैं आमवातके सुखानेमें श्रेष्ठ है मंदाग्निको

प्रदीप्त करता है, वलीपलित रोगको दूर करता है । जिस प्रकार अग्नि तृणको शीघ्र ही जला देता है इसी प्रकार इसके सेवनसे सब प्रकारके रोग शीघ्र ही नष्ट होजाते हैं यह निश्चय है ॥ ३०–३४ ॥

अथ कासीसगुणाः ।

पुष्पादिकासीसमतिप्रशस्तं सोष्णं कषायाम्लमतीवनेत्र्यम् ।
विषानिलश्लेष्महरं व्रणघ्नं श्वित्रक्षयघ्नं कचरंजनं च ॥ ३५ ॥
पित्तापस्मारशमनं रसवद्गुणकारकम् ।
वातश्लेष्महरं केश्यं नेत्रकंडूविषप्रणुत् ॥
मूत्रकृच्छ्राश्मरीश्वित्रनाशनं परिकीर्तितम् ॥ ३६ ॥

अब शुद्ध किये हुए हीराकसीसके गुणोंको कहते हैं । यह हीराकसीस अत्यन्त श्रेष्ठ है । उष्ण है, स्वादमें कसैला और खट्टा है, नेत्रोंके लिये हितकारी है । विष, बादी, कफ, व्रण, श्वेत कुष्ठ, क्षयी रोग, पित्त, मृगीरोग, खुजली, मूत्रकृच्छ्र और पथरीरोगको नाश करता है । बालोंमें उत्तम रंगका लानेवाला है । इसका गुण पारेके समान है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

अथ कासीससत्त्वपातनम् ।

क्षाराम्लाभ्यां विमर्द्याथ यन्त्रे निक्षिप्य ध्मापयेत् ।
सत्त्वं मुञ्चति कासीसो विधिरेष सुनिश्चितः ॥ ३७ ॥

अब हीराकसीसके सत्त्व निकालनेकी विधि कहते हैं । हीराकसीसको क्षारवर्ग और अम्लवर्गमें कही हुई औषधियोंसे खरल करके कोष्ठीयन्त्रमें रख आध्मापित करनेसे सत्त्वपतन होताहै । यह निश्चित विधि है ॥ ३८ ॥

श्रूयतां गैरिकस्यापि शोधनादीनि वच्म्यहम् ॥ ३८ ॥

हे वत्स ! अब मैं गेरूके शोधन आदिको कहताहूँ तुम सुनो ॥ ३८ ॥

तत्रादौ गैरिकभेदौ ।

गैरिकं द्विविधं प्रोक्तं पाषाणं स्वर्णगैरिकम् ।
पाषाणगैरिकं प्रोक्तं कठिनं ताम्रवर्णकम् ॥ ३९ ॥
अत्यन्तशोणितं स्निग्धं मसृणं स्वर्णगैरिकम् ।
पैरैस्त्रितयमप्युक्तं पाषाणाख्यं तु गैरिकम् ॥ ४० ॥

गेरूके दो भेद हैं एक पाषाण गैरिक, दूसरा स्वर्ण गैरिक, जिसका रंग ताँबेके समान हो और कठिन हो वह पाषाण गैरिक कहाताहै। जिसका रंग बहुत सुर्ख हो स्पर्शमें चिक्कण तथा निर्मल हो उसका नाम स्वर्णगैरिक है । कोई २ इसको स्वर्णगैरिक, रक्तगैरिक और पाषाणगैरिक भेदोंसे तीन प्रकारका कहते हैं ॥ ३९ ॥ ४० ॥

अथ गैरिकशोधनम् ।

गैरिकं तु गवां दुग्धैर्घर्षितं शुद्धिमृच्छति ।
अथवा किंचिदाज्येन भ्रष्टं शुद्धं प्रजायते ।
गैरिकं सत्त्वरूपं हि नन्दिना परिकीर्तितम् ॥ ४१ ॥

अब गेरूके शोधनकी विधि कहते हैं । गौके दूधमें गेरूको खरल करे तो शुद्ध होजाता है । अथवा थोडासा घृत मिलाकर यदि इसको भूँने तो भी शुद्ध होजाता है । गेरू स्वयं सत्त्वरूप है इसी कारणसे इसके सत्त्व निकालनेकी विधि नहीं कही गई यह नन्दी आचार्यका मत है ॥ ४१ ॥

अथ गैरिकगुणाः ।

स्वादु स्निग्धं हिमं नेत्र्यं कषायं रक्तपित्तनुत् ।
हिक्कावमिविषघ्नं च रक्तघ्नं स्वर्णगैरिकम्॥
पाषाणगैरिकं चान्यत्पूर्वस्मादल्पकं गुणैः ॥ ४२ ॥

अब शुद्ध किये हुए गेरूके गुणोंको कहते हैं । स्वादमें उत्तम है, चिक्कण है, शीतल है, नेत्रोंके लिये अत्यन्त हितकारी है, कसैला है, रक्तपित्त, हिचकी, वमन, विष, तथा रक्तके विकारोंको दूर करता है यह सब गुण स्वर्णगैरिकके हैं पाषाणगैरिकमें स्वर्णगैरिकसे न्यून गुण हैं ॥ ४२ ॥

अथान्योक्तपारदगैरिकमेलनम् ।

कैरप्युक्तं पचेत्पंचक्षाराम्लैः स्निग्धगैरिकम् ।
उपतिष्ठति सूतेन्द्रं एकत्वं गुणवत्तरम् ॥ ४३ ॥

स्वर्णगैरिकको पंचक्षार और अम्लवर्गमें पकाकर पारेमें मिलावे तो दोनों मिलकर एकरूप हो जाते हैं उसका गुण उत्तम होताहै यह किसीका मत है॥४३॥

कासीसाञ्जनयोः प्रोक्तं गैरिकस्यापि सत्क्रियाः ।
मया ते नवमे वत्स ग्राह्यं तत्तु सुखैषिणा ॥ ४४ ॥